



उद्गीत

ऋषि ज्ञान परंपरा

साहित्य, समाज और संस्कृति की संवाहक त्रैमासिक पत्रिका

वर्ष - 2

संयुक्तांक - 5, 6, 7, 8

जुलाई 2025- जून 2026





शिवाजी कॉलेज

दिल्ली विश्वविद्यालय

उदगीत संस्था एवं शिवाजी कॉलेज के संयुक्त तत्वाधान में आयोजित

उदगीत कॉन्क्लेव



प्रथम सत्र: 'भारतीय ज्ञान परंपरा'



माननीय बाल मुकुंद पांडेय जी



प्रो. यामिनी गौतम



श्री निलय राय



डॉ रामजी बाली



श्री कमलेश के. मिश्रा



श्री जे पी सिंह (जयवर्धन)

तृतीय सत्र: 'महिलाओं के बढ़ते कदम'



प्रो. पायल मागो



सुश्री विमला मेहरा



सुश्री वंदना राव



सुश्री गुनीत सेठी



प्रो. बी. डब्ल्यू. पांडेय



प्रो. अजय अरोड़ा



प्रो. उमेश कुलश्रेष्ठ

चतुर्थ सत्र: 'विज्ञान और प्रकृति'



उद्गीत

ऋषि ज्ञान परंपरा

साहित्य, समाज और संस्कृति की संवाहक त्रैमासिक पत्रिका

वर्ष - 2

संयुक्तांक - 5, 6, 7, 8

जुलाई 2025 - जून 2026

संस्थापक

प्रो. रमेश गौतम
(पूर्व विभागाध्यक्ष)
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

संरक्षक

डॉ. यामिनी गौतम
(पूर्व उपप्राचार्य)
मैत्रेयी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

संपादक

प्रो. वीरेन्द्र भारद्वाज
(प्राचार्य)
शिवाजी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

कार्यकारी संपादक

प्रो. राज भारद्वाज
(पूर्व प्राचार्य)
भगिनी निवेदिता महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

संपादक मंडल

प्रो. आशा
(आचार्य)
अदिति महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. अनीता देवी
(सहायक आचार्य)
मैत्रेयी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. मीनू कुमारी
(सहायक आचार्य)
मैत्रेयी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. धर्मेन्द्र प्रताप सिंह
(सहायक आचार्य)
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. आशुतोष
(सहायक आचार्य)
रामजस कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय



अक्षर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स
दिल्ली-110090



विद्वत् परामर्श मंडल

डॉ. माधुरी सुबोध

(पूर्व सह-आचार्य)

लेडी श्रीराम कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रो. सविता मुद्गल

(पूर्व आचार्य)

हिंदी विभाग, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय

प्रो. जयविनोद कुमार

(आचार्य)

वेकटेश्वर महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रो. मंजू शर्मा

(आचार्य)

कालिंदी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. अमितेश कुमार

(सहायक आचार्य)

हिंदी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

प्रकाशक	:	अक्षर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स
संपादकीय संपर्क	:	प्लॉट नंबर 75, चतुर्थ तल, पॉकेट 8, सेक्टर 21, रोहिणी, दिल्ली-110086
ई-मेल	:	udgeet8@gmail.com
वेबसाइट	:	https://udgeet.in/
प्रति मूल्य	:	40/-
मुद्रक	:	आशा रानी
		CB-384/46, इंदिरा मार्केट, रिंग रोड, नारायणा, नयी दिल्ली-110028
आवरण पृष्ठ	:	अदिति सिंह (छात्रा, मैत्रेयी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय)

संपादन : अवैतनिक

लेखकों के व्यक्त विचारों से संपादक या प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।
पत्रिका से संबंधित समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अंतर्गत विचाराधीन होंगे।

अनुक्रम

संपादकीय

संपादक की कलम से...	प्रो. वीरेन्द्र भारद्वाज	7
---------------------	--------------------------	---

ज्ञान परंपरा

ज्ञान परंपरा	डॉ. यामिनी गौतम	10
--------------	-----------------	----

सृजन लोक

• कविता

रेलगाड़ी, आंखों के दरिया को सूख जाना था	डॉ. सत्येन्द्र प्रताप सिंह	12
उनकी आंखें कैसी होंगी?, दूर जाते लड़के, दादी-दादा जी की झिलमिल यादें, माएं कभी नहीं मरती	ममता कुमारी 'मंटू'	13
प्रकृति के शाख पर संवाद, निर्णय	आंचल झा	15

• कहानी

उत्तर मिल गया	डॉ. पीयूष कुमार	17
नालंदा के शेष साक्षी	डॉ. प्रांशु समदर्शी	23

• व्यंग्य

इंटरनेशनल स्कूल	दिलीप कुमार	31
-----------------	-------------	----

शोध आलेख

भारतीय ज्ञान परंपरा : वर्तमान परिदृश्य	नेहा श्रीवास्तव	34
कृत्रिम बौद्धिकता और ब्रह्म का अंतर्संबंध	प्रो. अर्चना गौड़, राजेश गौतम	38
भक्ति आंदोलन का अखिल भारतीय स्वरूप	सीमा सिंह	42
भारतीय ज्ञान परंपरा और सत्यार्थ प्रकाश	प्रो. दीपमाला	46
गुरु शिष्य परंपरा और शिक्षण की पद्धतियां	रीना	50
सुधा मूर्ति के साहित्य में पौराणिकता, आधुनिकता और सामाजिक मूल्य का समंवय	शिखा राय	56
लोक कवि पंडित लखमीचंद एवं भारतीय ज्ञान परंपरा	डॉ. प्रवीण भारद्वाज	62
भारतीय ज्ञान परंपरा के विकास में भारतीय भाषाओं का महत्व	राम भुआल	66
राम भक्ति काव्य में भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल्य (विशेष संदर्भ रामचरितमानस)	राहुल गर्ग	70
इक्कीसवीं सदी के हिंदी नाटक एवं स्त्री संघर्ष	पूजा कुमारी	74
समाज सुधार आंदोलन और स्त्री संघर्ष के विभिन्न पहलू	डॉ. मधु	78
साहित्य एवं कला से भेंट	अंकित उपाध्याय	82
जीवनीपरक उपन्यासकार रांगेय राघव	दीक्षा गुप्ता	84

रहस्यवाद और अज्ञेय का काव्य	डॉ. रश्मि मिश्रा	87
विवेकी राय के गद्य में आंचलिकता का स्वरूप	डॉ. दलचंद गुप्ता	90
कविवर नीरज के काव्य में मानवतावादी चेतना की अभिव्यंजना	डॉ. सौरभ उपाध्याय	94
बीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में किसान विमर्श : बेदखल, फांस एवं गोदान की त्रिवेणी	आशुतोष मिश्र	98
प्रेमचंद संबंधी विमर्श और दलित आलोचना	भगवान साहु	104
डिंगल की कवयित्रियां : स्त्री चेतना और अभिव्यक्ति का पुनर्पाठ	प्रो. पूनम कुमारी	108
मुक्तिबोध की कहानियों की पात्र-प्रविधि	डॉ. अरविंद तिवारी	114
नारी का आधुनिक रूप	शुभ्रा त्रिवेदी	117

हिंदी से बाहर की दुनिया

मनोज दास के साहित्य में बाल विज्ञान	डॉ. एनी राय	120
बाली की प्रदर्शन कलाएं : परंपरा, धर्म और समाज का जीवंत संगम	डॉ. आशुतोष	124

समीक्षा

फंदा नाच : रंगमंच पर फंतासी का मारक प्रयोग	प्रो. आशा	125
लापता लेडीज	डॉ. मीनू कुमारी	126

साहित्यिक गतिविधियां

साहित्योत्सव 2026 : साहित्यिक विविधता का भव्य उत्सव	चंदन चौधरी	128
उद्गीत कॉन्क्लेव 2026 : एक रचनात्मक प्रयोग	प्रो. राज भारद्वाज	129
कोलकाता के हिंदी रंगकर्म पर दिल्ली विश्वविद्यालय में संगोष्ठी	प्रभाकर सिंह	131

मिश्रक

भारतीय ज्ञान परंपरा में सप्तऋषि	डॉ. कुसुम लता	133
---------------------------------	---------------	-----

समकाल

युद्ध में शर्मसार मानवता	रुबी	137
--------------------------	------	-----

गुरु वंदन श्लोक

श्रीगुरु पद नख मनि गन जोति । सुमिरत दिव्य दृष्टि हियं होती ॥
दलन मोह तम सो सप्रकासू । बड़े भाग उर आवइ जासू ॥

- गोस्वामी तुलसीदास (रामचरितमानस, बालकांड)

संपादक की कलम से...

भारतीय ज्ञान-परंपरा विश्व की प्राचीनतम, समृद्धतम तथा सर्वाधिक व्यापक ज्ञान-धाराओं में से एक है। यह केवल पुस्तकीय ज्ञान या बौद्धिक चिंतन तक सीमित नहीं है, बल्कि मानव जीवन के समग्र विकास की ऐसी जीवन-पद्धति है जिसमें आध्यात्मिकता, नैतिकता, विज्ञान, चिकित्सा, पर्यावरण, समाज, संस्कृति तथा मानवीय मूल्यों का अद्भुत समंन्य दिखाई देता है। वेद, उपनिषद्, पुराण, आयुर्वेद, योग, न्याय-दर्शन, खगोलशास्त्र, वास्तुशास्त्र, अर्थशास्त्र तथा विभिन्न शास्त्रीय परंपराएं भारतीय ज्ञान-संपदा के ऐसे स्रोत हैं, जिन्होंने न केवल भारत को बल्कि सम्पूर्ण विश्व को दिशा प्रदान की है। यह ज्ञान-परंपरा मानव जीवन को सुखी, समृद्ध, संतुलित और सार्थक बनाने का मार्ग प्रशस्त करती है।

भारतीय ज्ञान-परंपरा का मूल आधार वेद हैं। वेदों को मानव जाति की सबसे प्राचीन ज्ञान-निधि माना जाता है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में जीवन के विविध पक्षों का वर्णन मिलता है। वेद केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं हैं, बल्कि उनमें प्रकृति, समाज, विज्ञान, चिकित्सा, दर्शन और नैतिक जीवन के अनेक सूत्र निहित हैं। वेद मनुष्य को यह शिक्षा देते हैं कि वह संसार में रहते हुए अपने कर्तव्यों का पालन करे और त्यागपूर्वक भोग का जीवन अपनाए। ईशावास्योपनिषद् का प्रसिद्ध मंत्र— 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' अर्थात् त्यागपूर्वक उपभोग करो—मनुष्य को संयमित जीवन की प्रेरणा देता है। यह विचार आज के उपभोक्तावादी युग में भी उतना ही प्रासंगिक है जितना प्राचीन काल में था।

पुराण भारतीय संस्कृति और इतिहास के अमूल्य भंडार हैं। इनमें धार्मिक कथाओं, ऐतिहासिक प्रसंगों, नैतिक शिक्षाओं तथा सामाजिक मूल्यों का सुंदर समंन्य मिलता है। पुराणों का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि लोकमंगल और चरित्र निर्माण है। इनके माध्यम से समाज में सत्य, धर्म, करुणा, सेवा, त्याग तथा परोपकार जैसे मूल्यों का प्रसार हुआ। रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्य भारतीय जनमानस के नैतिक और सांस्कृतिक जीवन के आधार स्तम्भ हैं। इन ग्रंथों ने सदियों से भारतीय समाज को आदर्श जीवन जीने की प्रेरणा प्रदान की है।

भारतीय ज्ञान-परंपरा में योग का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। महर्षि पतंजलि द्वारा प्रतिपादित योगदर्शन मानव जीवन को शारीरिक,

मानसिक और आध्यात्मिक रूप से स्वस्थ बनाने की एक वैज्ञानिक प्रणाली है। योग केवल शारीरिक व्यायाम नहीं, बल्कि जीवन जीने की एक समग्र कला है। पतंजलि ने योग को 'चित्तवृत्ति निरोध' अर्थात् मन की चंचल वृत्तियों के नियंत्रण का साधन बताया है। योग मनुष्य को आत्मानुशासन, एकाग्रता, संयम तथा आंतरिक शांति प्रदान करता है। 'स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का निवास होता है'—यह संदेश योग के माध्यम से स्पष्ट रूप से प्रतिपादित होता है। आज जब तनाव, अवसाद, अनिद्रा और जीवनशैली संबंधी रोग तेजी से बढ़ रहे हैं, तब योग सम्पूर्ण विश्व के लिए स्वास्थ्य और संतुलन का प्रभावी उपाय बनकर उभरा है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा 21 जून को अंतरराष्ट्रीय योग दिवस घोषित किया जाना भारतीय ज्ञान-परंपरा की वैश्विक स्वीकृति का प्रमाण है।

आयुर्वेद भारतीय चिकित्सा विज्ञान की गौरवशाली परंपरा है। आयुर्वेद का उद्देश्य केवल रोगों का उपचार करना नहीं, बल्कि स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना भी है। चरक और सुश्रुत जैसे महान आचार्यों ने चिकित्सा विज्ञान को नयी ऊंचाइयों तक पहुंचाया। सुश्रुत को विश्व का प्रथम शल्य चिकित्सक माना जाता है। उन्होंने शल्य चिकित्सा की अनेक विधियों का विकास किया और जटिल शल्य क्रियाओं का सफल संचालन किया। आधुनिक प्लास्टिक सर्जरी के मूल सिद्धांत भी सुश्रुत की चिकित्सा पद्धति में दिखाई देते हैं। आयुर्वेद शरीर, मन और आत्मा के संतुलन को स्वास्थ्य का आधार मानता है। प्राकृतिक चिकित्सा, संतुलित आहार, दिनचर्या और ऋतुचर्या के माध्यम से आयुर्वेद मानव जीवन को स्वस्थ और दीर्घायु बनाने का मार्ग दिखाता है।

भारतीय दर्शन में न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदांत जैसे दर्शन मानव जीवन और ब्रह्मांड के गहन रहस्यों की व्याख्या करते हैं। न्याय दर्शन तर्क, प्रमाण और विवेक पर बल देता है। यह मनुष्य को सही और गलत के बीच अंतर करने की क्षमता प्रदान करता है। भारतीय दार्शनिक परंपरा का उद्देश्य केवल ज्ञान अर्जन नहीं, बल्कि जीवन के अंतिम सत्य की प्राप्ति है। उपनिषदों में आत्मा और परमात्मा के संबंध पर गंभीर चिंतन मिलता है। 'अहं ब्रह्मास्मि', 'तत्त्वमसि' और 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' जैसे महावाक्य मानव को आत्मबोध और सार्वभौमिक एकता का संदेश देते हैं।

भगवद्गीता भारतीय ज्ञान-परंपरा का एक अद्वितीय ग्रंथ है। महाभारत के भीषण युद्धक्षेत्र में भगवान श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिया गया उपदेश आज भी मानव जीवन के लिए मार्गदर्शक है। गीता कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग का समन्वित दर्शन प्रस्तुत करती है। यह मनुष्य को निष्काम कर्म का संदेश देती है और धर्म तथा अधर्म के बीच स्पष्ट विभेद स्थापित करती है। गीता सिखाती है कि मनुष्य को फल की चिंता किए बिना अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। यह शिक्षा आज के प्रतिस्पर्धी और तनावपूर्ण जीवन में भी अत्यंत प्रासंगिक है।

भारतीय ज्ञान-परंपरा केवल आध्यात्मिक और दार्शनिक क्षेत्र तक सीमित नहीं रही, बल्कि विज्ञान और गणित के क्षेत्र में भी उसने विश्व को महत्वपूर्ण योगदान दिया। शून्य की खोज भारतीय गणितज्ञों की अद्भुत देन है। शून्य के बिना आधुनिक गणित, विज्ञान और कंप्यूटर तकनीक की कल्पना भी संभव नहीं है। आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य जैसे विद्वानों ने गणित और खगोल विज्ञान को नयी दिशा प्रदान की। आर्यभट्ट ने पृथ्वी की गोलाकार आकृति तथा उसके घूर्णन का सिद्धांत प्रस्तुत किया। भारतीय खगोलशास्त्रियों ने ग्रहों, नक्षत्रों और खगोलीय घटनाओं का सूक्ष्म अध्ययन किया, जो उस समय विश्व के अन्य भागों की तुलना में अत्यंत उन्नत था।

भारद्वाज ऋषि से संबंधित वैमानिक विचारों का उल्लेख भारतीय परंपरा में मिलता है, जो यह दर्शाता है कि प्राचीन भारत में यांत्रिकी और उड़डयन संबंधी कल्पनाओं पर भी चिंतन किया गया था। यद्यपि आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि से इन अवधारणाओं का स्वतंत्र परीक्षण आवश्यक है, फिर भी यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि भारतीय मनीषा सदैव नवीन आविष्कारों और वैज्ञानिक चिंतन के प्रति उत्सुक रही है। भारतीय ज्ञान-परंपरा का यही वैज्ञानिक दृष्टिकोण उसे अन्य सभ्यताओं से विशिष्ट बनाता है।

भारतीय ज्ञान-परंपरा का एक महत्वपूर्ण पक्ष पर्यावरणीय चेतना है। भारतीय संस्कृति में प्रकृति को माता के समान पूजनीय माना गया है। नदियों, पर्वतों, वृक्षों, पशु-पक्षियों तथा समस्त जीव-जगत के प्रति सम्मान का भाव भारतीय जीवन-दर्शन का अभिन्न अंग है। अथर्ववेद में पृथ्वी को माता और मनुष्य को उसका पुत्र कहा गया है— ‘माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।’ यह दृष्टिकोण पर्यावरण संरक्षण की सर्वोच्च भावना को व्यक्त करता है। भारतीय परंपरा में पीपल, वट, तुलसी और अन्य वृक्षों की पूजा के पीछे पर्यावरणीय संरक्षण की भावना निहित है। आज जब विश्व जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण और जैव-विविधता के संकट से जूझ रहा है, तब भारतीय ज्ञान-परंपरा का पर्यावरणीय दृष्टिकोण मानवता को एक स्थायी समाधान प्रदान कर सकता है।

महात्मा गांधी भारतीय ज्ञान-परंपरा के आधुनिक प्रतिनिधि थे। उन्होंने भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों को आधुनिक जीवन में पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया। गांधीजी का स्वदेशी आंदोलन केवल आर्थिक कार्यक्रम नहीं था, बल्कि आत्मसम्मान, आत्मनिर्भरता और राष्ट्रीय चेतना का प्रतीक था। उन्होंने ‘स्व’ की अवधारणा को व्यक्ति और राष्ट्र दोनों के आत्मगौरव से जोड़ा। गांधीजी का मानना था कि किसी भी कार्य की सफलता केवल उसके परिणाम पर निर्भर नहीं करती, बल्कि उसके साधनों की शुद्धता भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। इसलिए उन्होंने राजनीति और सामाजिक जीवन में सत्य, अहिंसा और नैतिकता को सर्वोच्च स्थान दिया।

गांधी जी का चरखा भारतीय आत्मनिर्भरता का प्रतीक बन गया। चरखा केवल सूत कातने का उपकरण नहीं था, बल्कि श्रम, स्वावलंबन और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण का माध्यम था। इसके माध्यम से गांधीजी ने हस्तकौशल और कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहित किया तथा आत्मनिर्भर समाज की परिकल्पना प्रस्तुत की। आज ‘आत्मनिर्भर भारत’ की अवधारणा में भी गांधीजी के स्वदेशी चिंतन की स्पष्ट झलक दिखाई देती है।

भारतीय ज्ञान-परंपरा की सबसे बड़ी विशेषता इसकी गुरु-शिष्य परंपरा है। प्राचीन काल में शिक्षा केवल ज्ञानार्जन का माध्यम नहीं थी, बल्कि व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया थी। गुरु अपने शिष्यों को केवल विषय-ज्ञान ही नहीं देते थे, बल्कि जीवन-मूल्य, अनुशासन, नैतिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व की शिक्षा भी प्रदान करते थे। तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला और वल्लभी जैसे प्राचीन विश्वविद्यालय इस गौरवशाली परंपरा के प्रमाण हैं। इन शिक्षा केंद्रों में विश्व के विभिन्न देशों से विद्यार्थी अध्ययन हेतु आते थे। यह परंपरा भारत को ‘विश्वगुरु’ के रूप में प्रतिष्ठित करने में सहायक रही।

वर्तमान समय में भारत पुनः विश्वगुरु बनने की दिशा में अग्रसर है। किंतु यह लक्ष्य केवल आधुनिक तकनीक, आर्थिक विकास या पुस्तकीय ज्ञान के आधार पर प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसके लिए भारतीय ज्ञान-परंपरा में निहित मूल्यों, आदर्शों और जीवन-दृष्टि को आत्मसात करना आवश्यक है। भारतीय ज्ञान-परंपरा दैहिक और दैविक, भौतिक और आध्यात्मिक, विज्ञान और अध्यात्म, व्यक्ति और समाज तथा मानव और प्रकृति के बीच संतुलन स्थापित करने का संदेश देती है। यही संतुलन मानवता के समग्र विकास का आधार है।

‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ भारतीय संस्कृति का ऐसा महान आदर्श है जो सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार के रूप में देखने की प्रेरणा देता है। यह भावना संकीर्णता, भेदभाव और संघर्ष से ऊपर उठकर वैश्विक भाईचारे, शांति और सहयोग का मार्ग प्रशस्त करती है।

भारतीय ज्ञान-परंपरा का अंतिम लक्ष्य केवल व्यक्तिगत कल्याण नहीं, बल्कि समस्त प्राणियों का मंगल है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः' का मंत्र इसी सार्वभौमिक कल्याण की भावना को अभिव्यक्त करता है।

अतः कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान-परंपरा वेदों की दिव्य चेतना, उपनिषदों के आध्यात्मिक चिंतन, योग की साधना, आयुर्वेद की चिकित्सा, गीता के कर्मयोग, विज्ञान की तार्किकता, गांधी के स्वदेशी दर्शन तथा पर्यावरणीय संतुलन की समग्र जीवन-दृष्टि का अद्भुत संगम है। यह परंपरा केवल अतीत की धरोहर नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य की दिशा निर्धारित करने वाली जीवंत शक्ति है। यदि भारत इस ज्ञान-संपदा को आधुनिक संदर्भों में पुनर्स्थापित कर सके, तो वह न केवल स्वयं समृद्ध होगा, बल्कि

सम्पूर्ण विश्व को शांति, संतुलन, स्वास्थ्य और मानवता का मार्ग भी दिखा सकेगा। यही भारतीय ज्ञान-परंपरा की वास्तविक महत्ता और वैश्विक प्रासंगिकता है।

लंबे समय से उद्गीत परिवार पत्रिका के लिए RNI नंबर प्राप्त करने हेतु प्रयासरत रहा। जो वर्तमान अंक के विलंब का कारण बना। मैं डॉ. धर्मेन्द्र प्रताप सिंह, डॉ. आशुतोष, नरेंद्र और इनके सहयोगियों के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करता हूं, जिनके अथक प्रयास से यह कार्य संपन्न हुआ।

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।

न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः ॥ (हितोपदेश)

- प्रो. वीरेन्द्र भारद्वाज

ज्ञान परंपरा

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।

महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥ 3-37 ॥

भगवद्गीता के तृतीय अध्याय में भगवान श्री कृष्ण ने मानव जीवन के 'नित्य वैरी' के रूप में 'काम' को माना है। काम ही वह मुख्य प्रबल वेग है जो जीव को पाप कर्म करने के लिए मजबूर करता है। अर्जुन के द्वारा पूछे गए प्रश्न का उत्तर श्री कृष्ण ने अपनी गहराई और सूक्ष्मता से किया है जो कि हम मानवों को सुशिक्षित करने का मार्ग इससे बढ़कर नहीं हो सकता। कोई भी मानव हो, किसी भी देश, धर्म, जाति या वर्ण का भी हो उन सभी के जीवन की बेहद ही महत्वपूर्ण धुरी है 'काम'। श्री कृष्ण ने अर्जुन के प्रति जिस आत्मज्ञान की अमृत धारा का निर्बाध कथन किया है, उसका प्रभाव वर्तमान के साथ-साथ कालातीत है या कहें सर्वदा शाश्वत सत्य है।

भारतीय ऋषि ज्ञान परंपरा से जो ऋतम्भरा प्रज्ञा निःसृत हुई है, यदि श्रद्धा और समर्पण भाव से उसे हम मानव अपने जीवन में अपना लेते हैं तो श्रेयस पथ के हम पथिक बनने की दिशा में बढ़ने के अधिकारी बन सकते हैं। आधुनिक युग में ज्ञान-विज्ञान से संपन्न मानव मेधा ने इतने सारे भौतिक उपहार से विश्व को अचंभित करने वाले अगणित संसाधनों की भरमार एकत्रित करती है जिसकी कोई सीमा नहीं है। पूरे विश्व का संपूर्ण नक्शा ही आज बदल गया है अकल्पनीय सुख एवं सुविधाएं हमारे पास एक उंगली या बटन के माध्यम से सहज उपलब्ध हैं। वैज्ञानिक आविष्कारों की अपार संपदा ने हमारे जीवन पर उपकार भी किया है और अब वस्तु स्थिति यह है कि इन सभी अनिवार्य सुख सुविधाओं के बिना हमारे जीवन की यात्रा अब अधूरी हो गई है। इन्हें मान सम्मान देना उनके प्रति कृतज्ञता का भाव रखना हमारी प्राथमिकता में होना चाहिए। भौतिक जीवन उन सभी सुविधाओं के बिना अधूरा है सारा विकास और गति अवरुद्ध हो सकती है यदि उनमें थोड़ी सी भी शिथिलता या न्यूनता आ जाए। पूरे विश्व को जोड़ने में मानव की कुशाग्र वृद्धि का ऐसा योगदान है कि जिसके बिना सारा जीवन जड़वत है। कोई भी प्रबुद्ध समाज उन अनिवार्य वैज्ञानिक उपकरणों के बिना एक सेकंड भी गतिशील नहीं बन सकता। मानव जीवन पर इतना उपकार करने वाली वैज्ञानिक सोच एवं आविष्कारों के हम ऋणी हैं और ऋणी रहेंगे। यह जीवन का, वर्तमान जीवन का एक प्रबल पक्ष है। किंतु इसके साथ ही जीवन में बाढ़ की तरह आई हुई शारीरिक एवं मानसिक विकृतियों का भी अहम रोल है।

आज का मानव जितना अशांत है उतना इससे पहले कभी भी नहीं रहा। जीवन में जितनी अशांति आज है उतनी शायद पहले नहीं रही, दिन पर दिन जीवन में वह परिवर्तन हमें सोने के लिए विवश भी करते हैं कि अब हमारी स्थिति क्या और कैसी है? इस पर गहन विचार मंथन अति आवश्यक है।

वर्तमान जीवन की इन उलझी हुई समस्याओं ने आज विश्व को अपनी जकड़न में ले रखा है। अपने बुद्धि कौशल पर इतराने वाले समाज में जितनी तीव्र गति से अनाचार एवं अनैतिक पतन की पराकाष्ठा फैल रही है, वह सोचने के लिए, चिंतन के लिए विवश करती है। आखिर क्यों संपूर्ण विश्व का ताना-बाना इतना कैसे विकृत हो गया? क्या कारण है कि पढ़ा लिखा संसाधनों से संपन्न मानव समाज क्यों इतना क्रूर हो गया है? क्यों आज पापाचार चरम पर है? यह प्रश्न सत्त्व प्रधान हृदय को आंदोलित करते हैं कि इस तमोराज्य के मानव सभ्यता और संस्कृति कैसे सुरक्षित की जाए? मुझे भगवद्गीता की ज्ञान गंगा से बढ़कर मानव के लिए अन्य कुछ भी कल्याणकारी नहीं लगता। भगवद्गीता कहें या भारतीय ऋषि चिंतन का मंथन कहीं एक ही बात है। भटके हुए दिशाहीन समाज को जरा इन प्रबोधित करने वाले प्रसंग पर अपना ध्यान केंद्रित करना होगा।

भगवद्गीता के तृतीय अध्याय में प्रश्नाकुल अर्जुन ने एक ऐसी समस्या श्री कृष्ण के सम्मुख रखी है जिसे वह स्वयं तो भुगत रहा है साथ ही सभी व्यथित और पीड़ित हृदय की आवाज को दूसरे माध्यम से मुखरित किया है अर्जुन कहता है—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पुरुषः ।

अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥

कि मनुष्य किस से प्रेरित होकर न चाहता दुःख भी पापाचरण में प्रेरित होता है? अर्थात् सारे पापों की भी जड़ क्या है? कौन है जो मानव को बलात् पाप कर्म में नियोजित करता है? इस दिखाई देने वाले छोटे-छोटे प्रश्नों का जो उत्तर श्री कृष्ण ने दिया है यदि इसे अपने को बड़ा प्रभु समझने का दंभ भरने वाला यह मानव समाज समझ ले तो भयंकर तबाही के गर्त में गिरने से बच जाएगा।

सारी विकृतियों का मूल श्री कृष्ण जी ने 'काम' को बताया है। इसी पिटारे से अज्ञान का सारा पदार्थ 'सुरसा के मुख' की तरह

निरंतर फैलता ही जाता है। प्रश्न दिखाई देने में छोटा है पर उसकी जड़ें बहुत ही गहरी और जटिल हैं। भगवान श्री कृष्ण ने प्रश्नाकुल अर्जुन को क्रम से 'काम' के फैले जाल को स्पष्ट किया है। अर्जुन के प्रश्न का समाधान करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं—

**काम एष क्रोध एष रजोगुणसमद्भवः
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥**

बलपूर्वक नियोजित करने में पाप को विस्तारित करने में अहम भूमिका रजोगुण से उत्पन्न 'काम' की है। यह काम (अधूरी इच्छा जो अज्ञान से उत्पन्न होती है) ही अपने आप में सारे नकारात्मक तत्वों को अपने में समाये बैठा है। इसके फैलाव के ही रूप में क्रोध है अर्थात् काम और क्रोध सहोदर हैं। यह विकृत काम 'महाशनः' है अर्थात् जो भोगों से कभी तृप्त नहीं होता जो बहुत खाने वाला है, यही बड़ा पापी है, किसी को तू 'वैरी' ज्ञान ऐसा की श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हैं। इतना समाधान देकर श्रीकृष्ण ने अपने ज्ञान विस्तार को विराम नहीं दिया। वह क्रम से वैरी को गिनाते जाते हैं, दृष्टान्तों की छड़ी लगाकर श्रीकृष्ण इस पापी काम को और अधिक स्पष्ट करते हैं। अपने ज्ञान की अविरल धारा को प्रवाहित करते हुए श्रीकृष्ण पुनः कहते हैं—

**धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥**

काम की भीषणता को और अधिक समझाते हुए वे कहते हैं जैसे धुएं से अग्नि और मैल से दर्पण ढक जाता है एवं जिस प्रकार जेर से गर्म ढका रहता है वैसे ही इस काम के द्वारा ज्ञान ढका रहता

है। अर्थात् ज्ञान का वैरी यह 'काम' ही है, उसे श्रीकृष्ण ने 'नित्य वैरी' की संज्ञा प्रदान की है।

अब यह 'काम' कहां-कहां अपने अड्डे जमा कर पसरा बैठा है, यह भी श्रीकृष्ण सूक्ष्मता से व्याख्यायित करते हुए कहते हैं—

**इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥**

काम ने अपने छुपने के गहरे वासस्थानों को चुन-चुन कर ओढ़ रखा है। ये सभी स्थान मानव के अपने ही अंतर में हैं। ज्ञान को आच्छादित करने के लिए काम इंद्रियों का मन और बुद्धि का आश्रय अपनाता है, इन्हें अपना वासस्थान बनाता है। जब जीवात्मा का मन और बुद्धि सहित सारा इंद्रिय व्यापार काम के नियंत्रण में आ जाता है तब यह है जीव छटपटा कर रह जाता है। काम की इतनी शक्ति है कि मानव की बुद्धि, विवेक एवं निर्णय करने की सामर्थ्य भी इससे हर ली जाती है। अज्ञात की गहन कारा से मुक्त होने का मार्ग निर्देशित करते हुए श्रीकृष्ण अर्जुन को अचूक उपाय भी समझाते हैं। वे कहते हैं — कि हे! अर्जुन तू सर्वप्रथम इन इंद्रियों को अपने वश में कर। जब इंद्रियों पर मानव विवेक सहित नियंत्रण कर लेता है तब यह 'पापमानं प्रजाहि' हो जाता है अर्थात् पापी काम अवश्य ही बलपूर्वक मर जाता है।

अर्जुन को युद्ध भूमि में दिया हुआ यह प्रबोध इतना मूल्यवान और अर्थवान है कि मानव जीवन में छाए हुए काम के सारे दुष्प्रभावों को निर्मल करने की, जड़ से विनष्ट करने की अद्भुत क्षमता रखता है।

- डॉ. यामिनी गौतम

कविता

रेलगाड़ी

रेलगाड़ी की आवाज से,
पहचान लेते थे।
दूर से आती हुई रेल को,
उसकी रफ्तार से हो जाता था मालूम,
कि मेल है या पैसेन्जर
अब बदल गई है रेल
अब पहले से पहचानी नहीं जाती,
अपनी रफ्तार से।
बल्कि डिब्बे पर लिखे छह अंक बताते हैं,
ट्रेन का नाम और मुकाम,
अब पैसेन्जर और मेल का फर्क मिट गया है
अब सब लगभग मेल है।
उसी तरह से जैसे गरीबी रेखा के नीचे और ऊपर का
अब मिट गया है भेद
अब सब राशन कार्ड के नंबर से
पहचाने जाते हैं।
आप देख कर नहीं बता सकते,
कौन अमीर हैं कौन गरीब,
जब तक आप रजिस्टर्ड न हो,
तब तक आप गरीब होंगे,
लेकिन माने नहीं जाएंगे।

आंखों के दरिया को सूख जाना था

आंखों के दरिया को सूख जाना था
जब डूबे थे तो फिर डूब जाना था।
अब ये दर्द ताउम्र साथ रहेगा
उसे जाना था तो चले जाना था।
चंद लम्हों की जिंदगी के लिए
एक सदी तक उसे भूल जाना था।
हसीन उल्फ़तों के नीमेकश संग
सूखे दरिया के पार जाना था।
हम अब मानुसे सैयाद हो गए
जहां पर तीर वही निशाना था।

- डॉ. सत्येंद्र प्रताप सिंह

(सहायक आचार्य)

हिंदी विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय

कविता

उनकी आंखें कैसी होंगी?

बैठे-बैठे एक ख्याल आया..
ये जो देश की सेवा में देश की जान बचाने के लिए
जान लुटाने को तैयार रहते हैं
उनकी आंखें कैसी होती होंगी?
शायद उनकी आंखों में चमक होगी,
जीवन को जीवन देने की खुशी होगी,
लेकिन किसी कोने में नमी होगी...
मां की रक्षा के लिए मां से दूर रहने की कमी..
कभी-कभी आंखों में कहीं न कहीं उतरती होगी!
बोलो न उनकी आंखें कैसी होंगी?
शायद उनकी आंखें मुस्कुराती होंगी,
अपनी नेकी पर इतराती होंगी.....,
तिरंगे को लहराते देख न जाने कितना हर्ष मनाती होंगी...!
कभी एकांत में बैठे...
बीते अल्हड़पन के दिनों को याद कर खिलखिलाती होंगी....
और बीते सुख से होने वाले दर्द को..
जल्दी-जल्दी समेट युद्ध की ओर बढ़ जाती होंगी!
देश पहले... वाली बात न जाने कितनी बार दोहराती होंगी...।
इन आंखों को युद्ध देखना जरूरी हैं क्या?
अंतिम बार बताना उनकी आंखें कैसी होंगी?

दूर जाते लड़के

घर से दूर जाते लड़के,
रोते नहीं,
ज्यादा से ज्यादा,
उनकी आंखों में समंदर उमड़ता है

लेकिन उनकी आंखों से आंसू नहीं टपकते,
मैंने कई बार एक लड़के को,
सब कुछ छोड़कर जाते हुए देखा है,
आश्चर्य कि
जाते हुए भी मुस्कुराते हुए देखा है!
शायद ये जाते हुए लड़के...,
रोते होंगे...
लेकिन दूर जाकर,
क्योंकि उनके जहन में भर दिया गया है कि
चाहे जितना भी भर जाना अंदर से पर
रोना सिर्फ अकेले में,
मर्द नहीं रोते दुकेले में!

दादी-दादा जी की झिलमिल यादें

दादी हाथ पकड़कर दुकान तक ले गयी
और दादाजी के पद चिह्नों पर
अपने छोटे-छोटे कदम रखते हुए,
स्वयं चली गयी
उनके पीछे-पीछे बाजार तक,
उनकी परछाईं को देखते-देखते;
जैसे-जैसे उसका आकार बदलता रहता
मेरे चेहरे पर
हल्की-हल्की हंसी फैल जाती।
जैसे फैलती है रोशनी
सूर्य और बादल की लुका-छिपी में;
सूर्य द्वारा बादल को धप्पा बोलने के उपरांत।
इसके बाद ही तो मैंने जाना था कि-
"दुकान मतलब जहां मीठी-तीखी खाने की चीजें मिलती हैं

और बाज़ार मतलब जहां भात-रोटी के साथ खाने हेतु मिलती है दाल
और पांव में पहनने के लिए चप्पल।"
आठवीं कक्षा उत्तीर्ण करने के बाद,
दादी द्वारा अपनी इच्छाओं का मेरी प्रति समर्पण...,
मेरे लिए उस हृदयस्पर्शी घटना को भूलना और
उस समर्पण का मूल्य निष्प्राण होकर चुकाना संभव नहीं।
दादाजी सदैव मेरा साहस बन
अनेक आंधियों से मुझे बचाते रहे;
वह जीवित रहेंगे मेरे अंतःकरण में
सदैव एक रोशन-रोशन देवालय-सम।

माएं कभी नहीं मरती

मां ने कभी नहीं की राजनीति,
लेकिन मां जानती थी कि-
घर को घर बनाने में अपनी उम्र का क्षण-क्षण
घर के कोने-कोने खपाना है
और अपने ही हाथों से चूल्हे में
सेकनी है रोटियां;
क्योंकि उसी आग में पकी रोटियां
फैलाएंगी एक दिन प्रकाश

फिर तब निश्चय है कि याद आएगी 'मां'
और उसके धुएं से मां के आंखों में आए आंसू
बदल जाएंगे आपके आंखों में आते-आते
खुशी के आंसू में।
और इस तरह जब एक दिन 'मां'!
छोड़ जाएगी इस धरती की गोद में आपको,
फिर नहीं मिलेगी 'मां'!
यह कहना नितांत झूठ है!
क्योंकि मां बची है आपमें
एक अंश के रूप में।
भले कितने भी युग बीत जाए
फिर भी सारी माएं बची रहेंगे पृथ्वी पर जीवित।
और बची रहनी चाहिए!
बचाना होगा!
आत्महत्या से नहीं!
आत्मरक्षा से।
आत्मसम्मान से।
या फिर आत्मनिर्भरता से...!

– ममता कुमारी 'मंटू'

(पूर्व छात्रा)

मैत्रेयी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

कविता

प्रकृति के शाख पर संवाद

धीरे-धीरे शाम उतर रही थी।
हवा हल्की थी,
और पेड़ पर लाल फूल
मानो मौसम की चिट्ठियां बनकर खिल रहे थे।

एक तोते ने आसमान की ओर देखकर कहा-
“देखो, मौसम फिर बदल रहा है।
पेड़ हर साल ऐसे ही नंगे होते हैं,
फिर फूलों से भर जाते हैं,
शायद प्रकृति को इंतजार करना आता है।”

दूसरा तोता मुस्कराया-
“हां, और इंसानों को शायद
सब कुछ जल्दी चाहिए।
फूल भी अभी,
फल भी अभी,
और छाया भी अभी।”

पहला तोता थोड़ी देर चुप रहा,
फिर बोला-
“पर देखो, यह पेड़ कुछ नहीं कहता।
बस चुपचाप खड़ा रहता है,
धूप भी सहता है,
और बारिश भी।”

दूसरा बोला-
“शायद इसी को समझदारी कहते हैं।
जो जितना गहरा होता है,
वह उतना ही शांत रहता है।”

हवा थोड़ी तेज हुई,
फूल हल्के-हल्के हिले।

पहला तोता बोला-
“कभी-कभी सोचता हूं,
इंसान इतने घर बनाते हैं,
इतनी बातें करते हैं
फिर भी उन्हें सुकून क्यों नहीं मिलता?”

दूसरा तोता आसमान की ओर देखते हुए बोला-
“क्योंकि उन्होंने पेड़ों से सीखना छोड़ दिया है,
जो जड़ से जुड़ा रहता है
उसे मौसम बदलने से डर नहीं लगता।”

दोनों फिर चुप हो गए
शाम थोड़ी और गहरी हो गई

और पेड़ पर खिले लाल फूलों के बीच
दो तोते ऐसे बैठे थे
मानो दुनिया को समझाने के लिए
बस शांति ही काफी हो।

निर्णय

निर्णय

कोई तात्कालिक उत्तर नहीं,

यह भीतर चलती

लंबी चुप्पी का परिणाम है-

जहां तर्क, अनुभव

और भय

एक ही मेज पर

आमने-सामने बैठे होते हैं।

यह सही-गलत की

सरल रेखा नहीं,

बल्कि

अधूरे तथ्यों के बीच

खिंची हुई

एक साहसी लकीर है,

जिसे हाथ कांपते हुए भी

खींचना पड़ता है।

निर्णय लेना

अक्सर चुनना नहीं,

छोड़ना होता है-

कुछ संभावनाएं,

कुछ इच्छाएं,

और वह “क्या होता अगर”

जिसका बोझ सबसे भारी होता है।

हर निर्णय

कुछ दरवाजे बंद करता है,

और उन्हीं बंद दरवाजों की

चरमराहट

हमें देर तक सुनाई देती है,

पर जीवन

खुले दरवाजों से नहीं,

आगे बढ़े कदमों से

चलता है।

और अंत में

जीवन हमें

निर्णयों से नहीं,

उनके बाद निभाई गई

ईमानदारी से परखता है-

कि हमने चुने हुए रास्ते को

कितनी पूरी तरह जिया।

- आंचल झा

(छात्रा)

मैत्रेयी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

उत्तर मिल गया

तुम भी चलो न!" दीपू ने अनुनय किया।

"क्या यार दीपू अपना सामान लाने में भी शर्म आ रही है।" विक्की ने जवाब दिया। फिर दीपू से कहा – "अच्छा प्यारे को ले जाओ" प्यारे की ओर देखते हुए विक्की ने कहा – "चले जाओ दीपू के साथ, थोड़ी मदद नहीं कर सकते उसकी?"

"म...मैं नहीं जाऊंगा" प्यारे ने मना किया और दीपू को हिदायत भी दे डाली – "जब अभी अकेले नहीं जा सकते तो आगे अकेले क्या कर पाओगे!"

"ठीक है, ठीक है मैं ही अकेले जा रहा हूँ। तुममें से कोई नहीं जाएगा, मुझे पता है।" यह कहते हुए दीपू उठा और चला गया।

थोड़ी देर बाद दीपू हांफते-कांपते आया और "विक्की विक्की" कहकर लगभग चिल्लाने-सा लगा। विक्की ऊंघते हुए बोला – "क्या हुआ, आज मुझे सोने नहीं दोगे?"

"विक्की वो, वो..." दीपू की घिग्घी बंध गयी।

"कौन वो?" विक्की ने पूछा।

"वो, वो सुलेखा उस कमरे में है।" दीपू ने सहमते हुए कहा जैसे उसकी कोई चोरी पकड़ी गयी हो।

दरअसल दीपू, प्यारे और विक्की एक ही कंपनी में साथ-साथ काम करते थे। कंपनी के काम के सिलसिले में वो तीन दिनों के लिए मुंबई आए थे और कंपनी के ही 'गेस्ट हाउस' में रुके हुए थे। देश के अलग-अलग हिस्सों से कंपनी से जुड़े लोगों को इस तीन दिवसीय कार्यक्रम में आना था। कंपनी के डायरेक्टर मिस्टर मित्तल ने कुछ अभिनेताओं को भी कार्यक्रम में आमंत्रित कर रखा था। इसलिए सभी को 'गेस्ट हाउस' में रुकवाने का इंतजाम किया गया था। दीपू, प्यारे और विक्की एक दिन पहले ही आ गए थे, इसलिए पूरे 'गेस्ट हाउस' में उन तीनों के अलावा और कोई नहीं था। कार्यक्रम के आयोजकों ने उन तीनों को चार मंजिला 'गेस्ट हाउस' के 'थर्ड फ्लोर' के कमरों में 'शिफ्ट' कर दिया था। हर मंजिल में छः बड़े-बड़े कमरे थे। लिफ्ट और सीढ़ी अगल-बगल ही थे। तीनों लोग लिफ्ट से 'थर्ड फ्लोर' पर आ गए। लिफ्ट से थोड़ा आगे चलने पर चैनल वाला दरवाजा था और फिर आगे तकरीबन पांच-छः मीटर लंबी और डेढ़-दो मीटर

चौड़ी गैलरी थी। चैनल वाले दरवाजे से तीन मीटर आगे चलने पर बायीं ओर हॉलनुमा एक कमरा था। जहां गैलरी समाप्त होती थी, वहां फिर चैनल वाला दरवाजा था। फिर आगे एक बड़ी-सी लॉबी और बायीं ओर तीन बड़े कमरे थे, जिनमें से दो कमरों के दरवाजे आमने-सामने खुलते थे और एक कमरे का दरवाजा लॉबी की ओर खुलता था। लॉबी से थोड़ा आगे, दाहिनी तरफ बढ़ने पर फिर एक पतली गैलरी थी और बायीं ओर मुड़ने पर तीन कमरे थे।

आयोजकों ने उन तीनों से कहा था कि आज आप लोग चाहे जिस कमरे में सो जाएं, कल से जब 'डेलीगेट्स' आने लगेंगे तो फिर सबको अपना-अपना 'रूम' आबंटित कर दिया जाएगा। इस लिहाज से उस दिन से लिए वह पूरा गेस्ट हाउस ही उनके लिए हो गया था। रात भर और लगभग आधे दिन की यात्रा के बाद तीनों आराम करना चाहते थे। अपना-अपना बैग लिये तीनों थर्ड फ्लोर के सभी कमरों का मुआयना कर आये। एक कमरे को छोड़कर बाक़ी सभी खुले थे। तीनों ने लॉबी से सटे हुए कमरे में अपना सामान रख दिया और नहाने-धोने के बाद आराम करने लगे। "अरे, आराम ही करोगे या पेट-पूजा भी करोगे? क्यों प्यारे?" दीपू ने अपने पेट पर हाथ फेरते हुए कहा। दीपू बाक़ी दोनों से लंबा और तगड़ा भी था। उसका पेट भी कुछ बाहर निकला था।

"हां, हां क्यों नहीं, चलो चलते हैं। इसी बहाने परिसर भी घूम लेंगे।" प्यारे ने सहमति जताई।

"चलो अब खा-पीकर ही आएंगे। कौन बार-बार जाएगा। वैसे भी मैं बहुत थक गया हूँ।" यह कहकर विक्की भी साथ हो लिया। रूम से निकलते-निकलते शाम हो गयी थी। थोड़ी दूर पर कैंटीन थी। सभी ने चाय पी। फिर खाना खाया। विक्की तो नॉन वेज थाली लेना चाहता था लेकिन प्यारे के अनुरोध के कारण सभी ने वेज थाली ही ली।

खाना खाने के बाद तीनों परिसर में टहलने लगे। "चलो कहीं घूमने चलते हैं।" विक्की ने प्रस्ताव रखा। "अब तो लेट हो गए हैं" प्यारे ने कहा।

"क्या यार, अभी सात ही तो बजे हैं। मुंबई में घूमने का मज़ा रात में ही आता है।" विक्की ने कहा।

"लेकिन चलेंगे कहाँ?" दीपू ने सवाल किया।

"गेटवे ऑफ इंडिया चलते हैं। चर्चगेट के आगे है। पास में ही ताज होटल है। शिप में भी बैठना हो तो बैठ लेना। मैं वहीं से अपने चाचा के यहां चला जाऊंगा।" विक्की ने इच्छा जाहिर की।

"ये क्या बात हुई? कहां चले जाओगे तुम? साथ आये हो तो साथ रहो। वैसे भी कल सुबह कार्यक्रम का पहला दिन है। सभी को उपस्थित रहना जरूरी है।" दीपू ने पहले तो नाराज़ होकर और फिर समझाते हुए कहा।

"अच्छा, ये बताओ तुम्हारे चाचा को पता कैसे चला कि तुम मुंबई आ रहे हो। तुमने ही पहले डिंडोरा पीट दिया होगा।" प्यारे ने कहा।

आपसी सहमति से तीनों ने जाना स्वीकार किया। लोकल ट्रेन पकड़कर तीनों चर्चगेट तक तो पहुंचे पर विक्की ने दोनों से विदा मांगी और चला गया। "इसकी यही आदत मुझे अच्छी नहीं लगा करती है।" प्यारे ने झुंझलाते हुए कहा।

"और क्या, मेरा भी दिमाग खराब हो रहा है। इस शहर में हम लोग पहली बार आये हैं। कहां जाना है, कैसे जाना है, ठीक से पता नहीं। विक्की को इसीलिए साथ लेकर आये थे कि वो हम लोगों को हर जगह अच्छी तरह से घुमा देगा। वो पहले भी आ चुका है। वैसे भी उसके चाचा रहते ही हैं यहां।" दीपू ने भी रोष जताया। खैर पृच्छते-पाछते और गूगल मैप के सहारे दोनों गेटवे ऑफ इंडिया पहुंच गए।

मार्च का महीना था। न ठंडी न गर्मी। सामने विशाल समुद्र। ताज होटल विविधरंगी लाइट्स से जगमगा रहा था। समुद्र के पानी में पड़ता उसका प्रतिबिम्ब बहुत सुंदर लग रहा था। दीपू और प्यारे ने होटल के सामने खड़े होकर धड़ाधड़ कई सेल्फी लीं। थोड़ी देर दोनों होटल को निहारते रहे। इसी बीच दीपू ने प्यारे को बताया कि कभी गोविन्दा को भी यहां वेटर की नौकरी नहीं मिली थी। चहलकदमी करते हुए वो दोनों गेटवे ऑफ इंडिया के सामने आ गये। वहां तमाम फोटोग्राफर उन दोनों से फोटो खिंचवाने के लिए कहने लगे। वो आगे बढ़े और दूर तक फैले समुद्र को निहारने लगे। ताज होटल की लाइट्स से समुद्र और भी रंगीन लग रहा था। समुद्र के किनारे कई नावें, पानी वाली जहाजें और स्टीमर्स खड़ी थीं। जब वे सवारी से भर जातीं तो एक राउण्ड घुमाकर ले आतीं।

"यार दीपू, हवाई जहाज में तो अभी बैठे नहीं हैं। चलो पानी वाले जहाज में ही बैठ लेते हैं।" प्यारे ने आशाभरी नज़रों से दीपू का मन पढ़ने की कोशिश की।

"लेट हो जाएंगे प्यारे।" दीपू ने बुझे मन से कहा। हालांकि उसके मन में भी समुद्र पर सैर करने की लालसा जग गयी थी।

"अरे नहीं लेट होंगे। अब आये हैं तो घूमते चलें। तीन दिन बाद फिर वही डेस्कटॉप और फ़ाइलों में उलझे दिन।

"चलो अच्छा चलते हैं।" दीपू ने सहमति जताई तो प्यारे की बांछे खिल गयीं।

वे दोनों शिप पर बैठ गए। पन्द्रह मिनट बाद शिप चल पड़ा। शिप में ज्यादा भीड़ नहीं थी। दोनों शिप के दूसरे माले में बैठ गए। शिप की स्पीड धीरे-धीरे बढ़ती जा रही थी। ताज होटल दूर होता जा रहा था। लेकिन दूर से वह और भी खूबसूरत लग रहा था। शिप में बैठे बच्चे रोमांचित होकर चीख रहे थे। उनकी हरकतों से लग रहा था कि वे भी हमारी तरह ही पहली बार शिप की यात्रा कर रहे थे। सामने की कुर्सियों पर बैठी सुन्दर-सुन्दर लड़कियां सेल्फी लेने के अलावा और कुछ नहीं कर रहीं थी। दीपू उनके सौन्दर्य पर मुग्ध था। "मुझे 'टाइटेनिक' की याद आ रही है।" प्यारे ने बताया और किनारे खड़े होकर 'टाइटेनिक' के जैम की तरह अपने दोनों हाथों को फैलाते हुए चिल्लाया – "आय एम द किंग ऑफ वर्ल्ड।" उसे देखकर पास खड़े लोग मुस्कराए। झंपकर वह दीपू की बगल वाली चेयर पर आकर बैठ गया।

• • • • •

सुबह-सुबह दीपू के मोबाइल की रिंगटोन बजी, जिससे प्यारे की भी नॉद खुल गयी। "कौन है इतनी सुबह?" प्यारे ने पूछा। "अरे यार, ये विक्की भी परेशान कर लेता है। ठीक से सोने भी नहीं देता।" दीपू ने जवाब देते हुए कॉल रिसीव की।

"हैलो, हां विक्की बोलो" दीपू ने ऊंधकर जम्हाई लेते हुए कहा।

"यार दीपू मैं आ रहा हूं। बड़ी देर बाद तो नंबर आया है। यहां फ्रेश होने के लिए लाइन लगानी पड़ती है। वहीं आकर नहाऊंगा। यहां नहाने के चक्कर में लेट हो जाऊंगा।" विक्की की आवाज़ थोड़ा तेज़ थी, जिससे पास वाले बेड पर लेटे प्यारे को सुनाई पड़ गया। "इसी के लिए फोन किया था तुमने! आओ अच्छा।" कहकर दीपू ने मोबाइल रख दिया। थोड़ी देर बाद विक्की आया और तीनों तैयार होकर 'ऑडिटोरियम' की ओर चल दिए। तीनों 'ऑडिटोरियम' में प्रवेश ही करने वाले थे कि विक्की ने प्यारे की ओर मुखातिब होते हुए कहा, "सुनो प्यारे, कार्यक्रम में लेक्चर ही न सुनते रह जाना, मुंबई भी घूमना है। पीछे वाली सीट पर सभी बैठेंगे और चेहरा दिखाकर धीरे-से खिसक लेंगे।" प्यारे ने दीपू की ओर आंख मारते हुए अपनी सहमति दे दी।

विक्की अपने जीवन में कभी सीरियस नहीं रहा। वह अस्थिर चित्त वाला व्यक्ति था। वह अपने जीवन में सफल तो था, लेकिन कुछ-कुछ लापरवाह भी था। दिए गए काम को वह पूरा तो करता था, पर इस बात की कोई गारण्टी नहीं कि वह उसे समय पर पूरा करेगा या नहीं। एक बार बॉस ने प्रजेंटेशन देने के लिए एक हफ्ता

पहले ही बता रहा था, लेकिन उसने छः दिन कुछ नहीं किया और अंतिम दिन देर रात जागकर उसने प्रजेंटेशन तैयार किया था। किसी बात की उसने टेंशन ही नहीं ली थी। 'जो होगा देखा जाएगा' वाली बात थी उसके साथ। किसी की बात का वह बुरा नहीं मानता था। हमेशा हंसता-मुस्कुराता रहता था। वह जब हंसता था तो उसके सामने वाला डबल दांत दिख जाता था। कुछ भी हो वह दिल का साफ़ था। किसी के प्रति उसके मन में कोई विद्वेष का भाव नहीं था।

विक्की के बरक्स प्यारे थोड़ा संजीदा था। वह सुलझा कम उलझा हुआ ज़्यादा था। छोटी-छोटी बातों को लेकर उसे टेंशन हो जाती थी। वह भावुक था। जिससे जुड़ता था, भावनात्मक रूप से जुड़ता था। वह अतीत की स्मृतियों और भविष्य की चिन्ताओं की दोनों रस्सियां पकड़े वर्तमान के पटरे पर बैठकर हिंडोला झूलता रहता था। वह सबको प्रसन्न रखने की कोशिश करता था। वह किसी का दिल नहीं दुखाना चाहता था।

दीपू इन दोनों से कद काठी और उम्र में भी बड़ा था। वह शादीशुदा और दो बेटियों का पिता था। उसने जीवन में बहुत संघर्ष किया था। कोचिंग पढ़ाकर उसने अपनी पढ़ाई पूरी की थी उसने। साथ ही, अपने भाई-बहनों को भी पढ़ा रहा था। वह बहुत ही सुलझा हुआ धीर-गंभीर और स्पष्टवादी व्यक्ति था। वह अपनी बात को बहुत ही शालीन तरीके से रखता था। उसे ऊंची आवाज़ में बात करते या उत्तेजित होते हुए बहुत कम या न के बराबर देखा गया था।

बहरहाल कार्यक्रम का शुभारंभ दीप प्रज्वलन से हो चुका था। कंपनी ने डायरेक्ट मिस्टर मित्तल और नवोदित अभिनेता आदि तमाम लोग मंचासीन थे। दोपहर हो गयी थी। विक्की को घूमने जाने की चुल्ल मची थी। लेकिन दीपू और प्यारे चाहते थे कि लंच करके चला जाए। लंच के बाद तीनों 'मरियम ड्राइव' के लिए निकल पड़े। समुद्र और हाइवे के बीच बनी दीवार किसी चाप की तरह लगती थी। दूर-दूर तक जहां भी नज़र जाती थी, पानी-ही-पानी दिखाई देता था। रेत से थोड़ी दूर ही रोड की दीवार से सटे कुछ छोटे-छोटे पत्थर रखे थे। लोग उन्हीं के बीच बैठकर खा-पी रहे थे, बोल-बतिया रहे थे और प्रेमी युगल एक-दूसरे का अधरपान कर रहे थे। प्यारे और विक्की अपने-अपने जूते और जुराबें उतारकर वहीं रेत में ही समुद्र के पानी का स्पर्श महसूस करते रहे। लहरें आतीं और पांव को भिगोकर लौट जातीं थी। लेकिन दीपू ने जूते उतारने के आलस्य में नीचे उतरने की जेहमत नहीं उठाई और रोड के किनारे बनी दीवार पर बैठ मोबाइल चलाता रहा। हालांकि प्यारे ने दीपू को बुलाया तो दीपू नीचे आया और फिर सबने अपने-अपने मोबाइल में कुछ फोटोज लीं। "ये मरियम ड्राइव है या मरीना बीच?" प्यारे ने संशय व्यक्त किया।

"मरीना बीच चेन्नई में है प्यारे, तुम्हारा जी.के. कुछ कमज़ोर है।" विक्की ने हाथ उठाकर मुस्कुराते हुए कहा।

"मरीना बीच के विषय में मैंने कहीं पढ़ा है" प्यारे ने आंखों को लगभग बंद करते हुए माथे पर बल देकर अपनी दायीं तर्जनी को कनपटी पर रखते हुए दिमाग पर तनिक ज़ोर दिया और अचानक खुशी से उछल पड़ा, "हां याद आया! चेतन भगत के उपन्यास 'टू स्टेट्स' में मैंने पढ़ा था। अनन्या से मिलने क्रिश चेन्नई जाता है और उसके साथ मरीना बीच घूमने जाता है।"

शाम होते-होते तीनों लौट आए। तब तक कार्यक्रम समाप्त हो चुका था। अतएव वे सीधे गेस्ट हाउस ही गए। वहां पहुंचकर उन्हें पता चला कि आज लगभग सभी डेलीगेट्स आ चुके हैं। आयोजन समिति के एक सदस्य ने उन तीनों से लॉबी के पीछे वाले रूम में शिफ्ट होने के लिए कहा, क्योंकि थोड़ी देर बाद इस कुछ लेडीज़ इस रूम में आने वाली थीं। इस पर विक्की बिगड़ा भी, लेकिन उस सदस्य ने कहा कि वहां उस रूम में भी कोई दिक्कत नहीं है। अगर उन्हें किसी प्रकार की कोई दिक्कत होगी तो वह उन लोगों को अपने साथ अपने घर नालासोपारा ले जाएगा। बुझे मन ने तीनों ने अपने-अपने बैग्स उठाए और अंतिम वाले कमरे में चले गए। उस कमरे में तीन बेड तो खाली थे, लेकिन किनारे वाले बेड पर किसी का सामान रखा था। इसी बेड के नीचे एक कृत्रिम हाथ रखा था, जिसे देखकर प्यारे ने कयास लगाया कि हो न हो कोई हैंडिकैप आया है। प्यारे का कयास सही था। थोड़ी देर बाद एक दुबला-पतला मरियल-सा काला-कलूटा एक लड़का आया। उसका बायां हाथ सिर से गायब था। शक्ल-सूरत से लग रहा था कि वह कोई दक्षिण भारतीय है। उसने अपना परिचय दिया। वह केरल से था। उसके कपड़ों से बू आ रही थी। उसे देखकर ही प्यारे को उबाई आने लगी। कै करने का मन हो रहा था। केरला वाले उस लड़के ने दीपू और प्यारे को अपनी दुःखभरी कहानी सुनायी। विक्की कमरे से बाहर जाकर किसी से फ़ोन में बात करने करने लगा था। उस लड़के ने उन्हें बताया कि वह अपने मम्मी-पापा के साथ कार से कहीं जा रहा था। तभी कार अचानक अनियंत्रित हो गयी और एक ट्रक से जा टकरायी। उसके मां की तत्क्षण मृत्यु हो गई और उसने अपना एक हाथ गंवा दिया। कुछ देर बाद जब उसके पापा को होश आया तो उन्होंने अपने आपको अस्पताल में पाया। बातचीत के दौरान उस लड़के ने यह भी बताया कि उसके पापा ने दूसरी शादी कर ली और उसे रोता-बिलखता छोड़ दिया। उसने जैसे-तैसे न्यूज़पेपर बेंचकर आजीविका चलाई और अपनी पढ़ाई पूरी की। इसी बीच वह अपने पापा के पास भी गया था लेकिन वो उस दिन घर में नहीं थे। उसकी सौतेली मां ने उसके साथ बहुत बुरा बर्ताव किया था और कभी दोबारा न आने के

लिए कहकर उसे घर से निकाल दिया था। उसने बताया कि न जाने कितनी रातें उसने भूखे रहकर बिताई हैं। उसके पापा ने कभी उसकी सुधि नहीं ली। इसलिए वह अपने पापा से नफ़रत करता था। वह यह मान चुका था कि उसका अब इस दुनिया में कोई नहीं था। उसकी मां के साथ-साथ उसका बाप भी मर गया। उसकी बातें सुनते-सुनते प्यारे ने देखा कि उसके साथ-साथ दीपू की भी आंखें नम हो गयीं थी। थोड़ी देर बाद विक्की भी आ गया तो तीनों डिनर के लिए कैंटीन की ओर जाने लगे खाना खाने के लिए उस लड़के से भी पूछा तो उसने बताया कि उसने बड़ा पाव खा लिया था और उसे भूख नहीं। शायद इसीलिए दीपू का मानना था कि मुंबई की आधी आबादी बड़ा पाव पर ही ज़िन्दा है।

खाना खाने के बाद परिसर में टहलते हुए प्यारे ने विक्की को उस लड़के के बारे में बताया। वापस कमरे में आकर दीपू अपने बेड पर लेट गया। थोड़ी देर बाद वह अपने बैग में कुछ ढूँढने लगा। फिर उठकर आलमारी और बेड के नीचे ढूँढने लगा। "क्या खोज रहे हो दीपू?" दीपू के चिन्ताकुल चेहरे को देखकर प्यारे ने पूछा।

"मोबाइल का चार्जर नहीं मिल रहा है।" दीपू ने उत्तर दिया।

"लगता है उसी कमरे में छूट गया है।" विक्की ने अनुमान लगाया।

"हो सकता है। चलो चलकर देखते हैं।" दीपू ने विक्की से कहा।

चूंकि उस कमरे में अब लेडीज़ आ चुकी थीं, इसलिए दीपू को अकेले जाने में संकोच हो रहा था। और इसीलिए वह विक्की को भी साथ ले जाना चाहता था। लेकिन न तो विक्की गया और न ही प्यारे। "ग्यारह बजे रहे हैं। इस समय अब उस कमरे में जाना ठीक भी नहीं होगा। कोई नहीं, मोबाइल में अभी 37 परसेंट बैटरी है। चार्जर सुबह ले लेंगे।" यह कहते हुए दीपू के चेहरे पर 'अंगूर खट्टे हैं' वाला भाव देखा जा सकता था।

• • • • •

अगले दिन सुबह जब दीपू ने उस कमरे का दरवाज़ा खटखटाया तो जैसे ही दरवाज़ा खुला, उसकी घिघी बंध गयी। सामने सुलेखा थी। दोनों क्षण भर आश्चर्यचकित होकर एक-दूसरे को देखते रहे। दीपू को विश्वास ही नहीं हो रहा था कि उसके सामने उसकी सुलेखा खड़ी है। उसका दिल जोरों से धड़कने लगा। उसने अटकते-अटकते कहा – "ह...हम कल, यानी मैं इस रूम में ठहरा था। मेरा चार्जर यहां छूट गया है क्या?"

"हां है तो एक चार्जर। उस बोर्ड में लगा है। शायद वही हो। रुको मैं निकालकर देती हूं।" यह कहती हुई सुलेखा अंदर गयी और चार्जर ले आयी और दीपू को दे दिया।

"मैं फ़ेश होने जा रही हूं। अभी थोड़ी देर बाद लॉबी में मिलते हैं।" यह कहकर सुलेखा रूम में दाखिल हो गयी और चार्जर लेकर दीपू भी अपने रूम में आ गया। इसीलिए जब विक्की ने पूछा था, "कौन वो?" तो उसके मुंह से निकला था, "वो, वो सुलेखा उस कमरे में है।"

सुलेखा, हां सुलेखा! दीपू की अतीत की डायरी के वरक एक-एक करके खुलने लगे। वह दीपू से ट्यूशन पढ़ती थी। वह रोज़ स्कूटी से आती थी। दीपू ने शुरू से ही उसकी आंखों में एक आमंत्रण का भाव देखा था। क्लास में उसकी नज़र व्हाइटबोर्ड पर न रहकर दीपू के चेहरे की ओर होती थी। एक बार तो दीपू ने टोंक भी दिया था, "मेरी तरफ क्या देख रही हो? बोर्ड में देखो।" वह कुछ सहम-सी गयी थी। एक दिन तो सबके चले जाने के बाद सुलेखा ने उसे गले भी लगाया था। पहल दोनों ओर से थी। सारी वार्तालाप नज़रों से होने लगी थी। दोनों क्या चाहते थे, एक-दूसरे को पता चल जाता था। उस दिन ट्यूशन के बाद दीपू को मां की दवाई लेने जाना था। तब तक उसके पास बाइक नहीं थी। वह पैदल ही चला जा रहा था। सुलेखा ने उसे अपनी स्कूटी पर बैठने के लिए कहा, लेकिन चाहते हुए भी उसने मना कर दिया। जब सुलेखा ने दोबारा कहा तो वह बैठ गया। सुलेखा के स्कूटी चलाने के लहजे से लग रहा था कि उसने अभी-अभी चलाना सीखा था। शाम हो गयी थी। हल्की-हल्की ठंडक थी। सुलेखा धीरे-धीरे स्कूटी चला रही थी। उसके खुले बाल हवा में लहरा रहे थे। दीपू जब कुछ कहने के लिए मुंह खोलता तो सुलेखा के उड़ते बाल उसके मुंह में फंस जाते। वह जहां अचानक ब्रेक लगाती, दीपू थोड़ा और आगे खिसक आता। वह उससे एकदम सट गया। उसके तन के स्पर्श की अनुभूति से उसका तन सिहर उठा। झुरझुरी-सी होने लगी। उसने अपने दोनों हाथों को आगे फैलाकर किसी डरते हुए बच्चे की तरह उसकी कमर को जकड़ लिया। सुलेखा ने कोई विरोध नहीं किया। वह गाड़ी चलाती रही। न जाने दीपू के मन में क्या आया, उसने सुलेखा की गर्दन में अपने होंठ रख दिए और घबड़ाकर जल्दी से हटा भी लिए। सुलेखा ने तुरन्त ब्रेक लगा दिया और बायीं ओर स्कूटी मोड़कर स्कूटी को स्टैंड पर लगाकर खड़ी हो गयी। दीपू की सिट्टी-पिट्टी गुम। उसे लगा कि वह उसे तमाचा जड़ने वाली है। दूसरे ही क्षण लगा कि नहीं वह शायद सौ नंबर डायल करने वाली है। उसके धड़कनों की गति बढ़ गयी। दोनों एक पेड़ के नीचे खड़े थे, जिसमें से रोडलाइट की पीली रोशनी छनकर आ रही थी।

"किस कर रहे थे?" सुलेखा ने दीपू की आंखों में आंखें डालकर पूछा। दीपू को काटो तो खून नहीं। "म, म, मैं, मैं नहीं। नहीं। आय एम सॉरी।" दीपू ने नज़रें चुराते हुए कहा। "ऐसे किस किया जाता है?" कहकर सुलेखा ने उसके होंठों पर अपने होंठ रख दिए। दीपू

ने भी उसे अपनी बाहों में भर लिया। उसे क्षण भर के लिए लगा कि सारी दुनिया सरपट भाग रही है और वह पल भर के लिए ठहर गया है। जैसे वह तमाम विकारों से परे हो गया हो। उसे क्षण भर के लिए लगा कि वह खुदा की इबादत कर रहा है। थोड़ी देर बाद सुलेखा उसे मेडिकल स्टोर के सामने ड्रॉप करके चली गयी।

ऐसा नहीं था कि दोनों एक-दूसरे को जीवनसाथी के रूप में नहीं चाहते थे। चाहते थे लेकिन उन्हें महसूस हुआ कि प्रेम 'होने' की चीज है, विवाह 'करने' की। प्रेम 'होता' है और विवाह 'किया' जाता है। प्रेम ऐकान्तिक होता है, जबकि विवाह सामाजिक। प्रेम किसी भी प्रकार के बंधन, भेद या मान्यता को नहीं मानता, जबकि विवाह एक सामाजिक व्यवस्था है। उस व्यवस्था में बहुत सारी मान्यताएं, नियम, क्रायदे और बंधन हैं। दोनों की चली नहीं। इसका एक कारण शायद यह भी था कि दोनों बेरोजगार थे। इस समाज में बेरोजगारों को न तो प्रेम करने का अधिकार है और न ही विवाह करने का। उनका प्रेम, समाज की नजरों में प्रेम नहीं, छिछोरापंथी है। इनके बरक्स रोजगारपरक लोगों का प्रेम आदर्श है, पावन है, कदाचित प्रौढ़ भी। फिर चाहे भले ही आगे चलकर उनका संबंध-विच्छेद ही क्यों न हो जाए। वैसी सुलेखा ने तो बहुत दिनों तक इंतजार भी किया था और दीपू को स्पेस भी दिया था कि वह भी अपना कैरियर बना ले। दीपू घर में भाई-बहनों में सबसे बड़ा था। उस पर जिम्मेदारियां थीं। शादी को लेकर जल्दी थी। घर वालों ने उसकी शादी अन्यत्र कर दी। सुलेखा भी उसकी शादी में आयी थी। दीपू अकेले में उससे फूट-फूटकर रोया था। "कोई नहीं, मैं तुम्हें खुश देखना चाहती हूं बस।" सुलेखा ने रोते हुए कहा था। फिर अगले साल उसकी भी शादी तय हो गयी।

कार्यक्रम के दूसरे दिन सुबह-सुबह नहा-धोकर तैयार होने के बाद दीपू, प्यारे और विक्की को लेकर लॉबी में आया। वहां सुलेखा और उसकी कलीग्स संजना सोफे पर बैठे पहले से उसका इंतजार कर रहीं थी। परिचय का आदान-प्रदान हुआ। "विक्की आज कहां चलेंगे घूमने?" दीपू ने आज दोगुने उत्साह से पूछा। "हां यार, चलो चलते हैं कहीं घूमने। वैसे भी मैं ये लेक्चर्स सुनते-सुनते बोर हो जाती हूं।" संजना ने हामी भरी। "चलो जुहू चौपाटी चलते हैं आज।" विक्की ने प्रस्ताव रखा। "वैसे भी आज का ही समय है हमारे पास। कल मेरा और दीपू का वापसी का टिकट है।" प्यारे ने बुझे मन से कहा। दूसरे दिन वाले कार्यक्रम में सभी पांचों अपनी उपस्थिति दर्ज करवाकर ऑटो हायर किया और पहुंच गए जुहू बीच।

सभी ऑटो से उतरकर रेत पर आ गए। दूर-दूर जहां तक भी नजरें जाती थीं, समुद्र का नीला जल ही दिखाई देता था। दूर से ही समुद्र में लहरों की सलवटें दिखाई दे रही थीं। हवा जब तेज चलने लगती तो लहरें बहुत दूर तक आती थीं और रेत को अपने साथ

बहाकर दूर तक ले जाती थीं। "वाव! ये वही जुहू बीच है, जिसमें न जाने कितनी फ़िल्मों की शूटिंग हुई है। कितने अभिनेता और अभिनेत्रियां घूमने आते हैं।" प्यारे ने प्रसन्न होते हुए कहा। संजना, विक्की के साथ और सुलेखा, दीपू के साथ समुद्र के किनारे-किनारे रेत पर टहलने लगे। बेचारा प्यारे अकेला पड़ गया। उसने अपने स्लीपर दूर उतार दिया और जीन्स को ऊपर घुटनों तक मोड़ लिया। थोड़ा आगे जाकर वह पानी के अंदर खड़ा हो गया और डूबते हुए सूरज को निहारने लगा। सूरज अपेक्षाकृत बड़ा लग रहा था। ऊपर आसमान में जहाज और हेलीकॉप्टर उड़ रहे थे। कुछ लोग बोटींग का आनन्द ले रहे थे। भेलपुरी वाले चिल्ला-चिल्लाकर भेलपुरी बेंच रहे थे। लहरें आतीं और प्यारे के पैरों को भिंगो जातीं। जब लहरें लौटतीं तो लगता कि रेत के साथ-साथ वो तलवों को भी खींचे ले जा रही हैं।

रेत पर चलते-चलते दीपू और सुलेखा बहुत दूर तक निकल गए थे। ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी। उस दिन की तरह आज भी सुलेखा के बाल वैसे ही हवा में लहरा रहे थे। इसी बीच दीपू सुलेखा से चार बार पूछ चुका था, "और कैसी हो?" और सुलेखा भी चार बार बता चुकी थी, "ठीक हूं।" उन्हें लगा कि वक्त ने उनके बीच काफी फासला ला दिया है। वे पास होकर भी शायद पास नहीं थे। दीपू का बायां हाथ सुलेखा के दाएं हाथ से टकराया, लेकिन सुलेखा ने अपना हाथ ऊपर उठा लिया और अपने उड़ते बालों को संवारने लगी। "और बताओ तुम्हारी मैरिज लाइफ़ कैसी चल रही है?" दीपू ने पूछा। "ठीक चल रही है और तुम्हारी?" सुलेखा ने जवाब देकर सवाल किया। "मेरी भी ठीक चल रही है।" दीपू ने सामने देखते हुए कहा। उनके बाएं तरफ विशाल समुद्र था और दाएं तरफ कुछ दूरी पर हाइवे। आगे और पीछे सिर्फ़ रेत-ही-रेत थी। उनको लगा कुछ रेत उनके जीवन में भी आ गयी है। समुद्र की लहरें जब तेज उठतीं तो पानी की कुछ छींटें उन पर पड़ जातीं। दीपू बहुत कुछ कहना चाहता था लेकिन वह कुछ कह नहीं पा रहा था। वास्तव में जब हम बहुत कुछ कहना चाहते हैं तो कुछ नहीं कह पाते हैं। वह अतीत की पूरी किताब खोल देना चाहता था, लेकिन मानो किताब के कवर पेज पर ही उसके हाथ ठिठक गए हों। उसे लगा इतने करीब होकर भी दूर रह सकता है क्या भला। फिर कुछ क्षण बाद उसे सारी बातें बेमानी लगीं। इसी बीच दीपू के मोबाइल की रिंगटोन बजी। उसने कॉल रिसीव की। "सात बजे गए दीपू। चलना नहीं है क्या?" उधर से प्यार पूछ रहा था। "आते हैं, आते हैं।" कहकर दीपू ने मोबाइल जेब में रख लिया। सभी लोग लौट आए और डिनर करके अपने-अपने कमरे में चले गए। दीपू बहुत देर तक करवटें बदलता रहा। उसे नींद नहीं आ रही थी। एक पल के लिए उसे लगा कि वह सुलेखा के कमरे में जाए लेकिन दूसरे ही पल उसे ऐसा करना व्यर्थ लगा।

विककी और प्यारे शायद सो गए थे। दीपू उठा और टॉयलेट करने के बाद लॉबी अभी तक आया। सुलेखा वाटरकूलर से अपनी बोतल में पानी भरकर लौट रही थी और अपने कमरे की ओर जा रही थी। 'दीपू अभी जाग रहे हो?' सुलेखा ने पास आकर पूछा। 'हां, टॉयलेट गया था।' दीपू ने कहा। 'लेकिन तुम्हारे रूम का टॉयलेट तो पीछे ही है।' सुलेखा ने चेताया। 'अरे हां, बस ऐसे ही। नींद नहीं आ रही थी, टहलने लगा था।' दीपू ने अपराध बोध से कहा। सुलेखा रहस्यमयी ढंग से मुस्करायी। उसे कमरे के भीतर से किसी ने आवाज लगायी। 'आ रही हूँ' कहकर वह दीपू के करीब आयी और धीरे-से 'गुड नाईट' कहकर अपने कमरे में चले गयी। दीपू भी अपने कमरे में आकर लेट गया। विचारों की लहरों ने कब उसे नींद के साहिल पर पहुंचा दिया, उसे पता ही नहीं चला।

तीसरे दिन प्यारे और दीपू का वापसी का टिकट था। होली में दोनों को घर जाना था। प्यारे की ट्रेन दोपहर में थी और दीपू की शाम को। इसलिए प्यारे थोड़ा पहले निकला। रोड तक दीपू प्यारे को छोड़ने आया। गेस्ट हाउस से मेन रोड तक चलने के बीच में दीपू ने कहा, "प्यारे तुम्हें याद है? एक दिन मेरे लैपटॉप में तुम और मैं देवानन्द और वहीदा रहमान की फ़िल्म 'गाइड' देख रहे थे।" "हां,

हां।" प्यारे को लगा दीपू अचानक फ़िल्म की बात क्यों करने लगा। दीपू ने फिर याद दिलाया, "उस फ़िल्म में 'दिन ढल जाए' वाला गाना जब आ रहा था तब वहीदा रहमान सीढ़ी से नीचे उतर तो आती हैं और देवानन्द भी निचले पायदान पर लगभग बैठते हुए खड़े थे। दोनों मिल नहीं पा रहे थे। तब मैंने तुमने पूछा था न कि एक-दूसरे को इतना चाहते हुए भी ये दोनों मिल क्यों नहीं पा रहे हैं। दोनों एक-दूसरे को कसकर गले क्यों नहीं लगा लेते।" प्यारे ने आश्चर्य व्यक्त किया, "हां-हां, लेकिन इस समय ये सब क्यों कह रहे हो?" "क्योंकि आज मुझे उसका उत्तर मिल गया है। कुछ चीजें होती हैं, जिनको न शब्दों से समझाया जा सकता है और न ही समझा जा सकता है। उनके लिए अनुभूतियां की काफ़ी होती हैं। शब्द वहां अपनी अर्थवत्ता खो बैठते हैं।" यह कहते हुए दीपू ने प्यारे को ऑटो पर बैठा दिया। उसके 'हैप्पी जर्नी' कहते ही ऑटो चल पड़ा।

प्यारे दूर तक दीपू को अपनी ओर हाथ हिलाते हुए देखता रहा।

- डॉ. पीयूष कुमार

(सहायक आचार्य)

राजकीय महाविद्यालय, सुल्तानपुर, उत्तर प्रदेश

नालंदा के शेष साक्षी

जो बीत गया, वह इतिहास है। जो बचा रहा और रहेगा, वह धर्म है।
“नालंदा की गाथा भारतीय संस्कृति की उस अदम्य धैर्य व जिजीविषा का साक्ष्य है, जो असंख्य आंधियों का सामना करने के बाद भी भविष्य के बसंत के लिए अंकुरित होती रही।”

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

आठवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक, मगध की वह पावन भूमि— जो आज बिहार कहलाती है और जिसकी शिराओं में गंगा और फल्गु का जल प्रवाहित होता है— मध्यकालीन जगत् की सर्वाधिक देदीप्यमान सभ्यता का आश्रय-स्थल बनी रही। पाल वंश के उन महाप्रतापी नरेशों के छत्र में, जिनके एक हस्त में खड्ग था और दूसरे में दान का अक्षय-पात्र, नालंदा, विक्रमशिला और ओदंतपुरी के महाविहार समस्त एशिया के बौद्धिक और आध्यात्मिक केन्द्र के रूप में सुशोभित हुए। तिब्बत और चीन से, दक्षिण-पूर्व एशिया के राज्यों से और मध्य एशिया के मरु-उद्यानों से ज्ञानपिपासु विद्यार्थी यहां आते थे— दर्शन, न्याय, आयुर्वेद, व्याकरण और उस महायान-वज्रयान परंपरा का पान करने के लिए, जिसे पाल-युग के श्रमणों ने अपनी साधना की अग्नि में तपाकर खरा सोना बनाया था। और फिर वह प्रलय आई।

1193 और 1207 ईस्वी के मध्य, तुर्क-अफ़ग़ान सेनापति मुहम्मद बिन बख्तियार खिलजी के अश्वारोहियों ने बिहार और बंगाल पर बिजली की गति से आक्रमण किए। वहां के निरीह भिक्षुओं का वध कर दिया। विक्रमशिला अग्नि की भेंट चढ़ गया। नालंदा का महान ग्रंथागार भस्म हो गया। और जो थोड़े-से विद्वान-भिक्षु बचे, वे अपनी पीठों पर ताड़पत्रों की मूल्यवान गठरियां लादकर पर्वत-श्रेणियां पार करते हुए नेपाल और तिब्बत की ओर चले गए।

यह कथा उसी प्रलय-काल की है— अंतिम धूप-दीप के जलने और विनाश के प्रथम धूम्र-स्तम्भ के उठने के बीच के उन कुछ क्षुब्ध घड़ियों की। यह एक कांस्य-शिल्पी की, एक युवा भिक्षु की, एक वयोवृद्ध आचार्य की और एक सामान्य उपासिका की कथा है। उनके नाम कल्पित हैं, किन्तु उनके कर्म पुरातत्व और इतिहास की शिलाओं पर उत्कीर्ण हैं। वे दो सौ छब्बीस कांस्य-प्रतिमाएं जो धरती में छिपाई गईं— वे पूर्णतः सत्य हैं। खंडहरों में बैठकर शिष्यों

को पढ़ाने वाला वह वृद्ध आचार्य— सत्य है। और वह चूने की दीवार जिसने एक देवता की रक्षा की— वह भी अकाट्य सत्य है।

प्रथम खंड : अग्नि का भार

पक्षियों के जागने से भी पहले, जब रात और भोर के मध्य का वह धुंधलका मगध की धरती पर ऐसे उतरा था जैसे किसी ने आकाश से राख की पतली परत बिछा दी हो, धरणीदास अपनी कर्मशाला में जा पहुंचा।

वह तिरपन वर्ष का था और उसने कभी मगध की सीमा नहीं लांघी थी। यह उसकी दृष्टि में कोई न्यूनता नहीं थी— क्योंकि संसार स्वयं मगध आता था, आता रहा था, आता रहेगा। तथागत ने इसी भूमि को सत्य के अन्वेषण के लिए चुना था। इस माटी का तुच्छ रक्षक होना— यही उसके जन्म का सार्थक्य था।

उसने धधकते अंगारों के ऊपर मिट्टी की मूषा स्थापित की। उसके हाथों पर असंख्य अर्धचंद्राकार जलन के निशान थे जो एक धातु-शिल्पी के जीवन-भर की कमाई के प्रतीक-चिह्न थे। वे हाथ स्मृति और संस्कार से चलते थे, मानो उन्हें किसी मानसिक निर्देश की आवश्यकता ही न हो। यह विद्या उसे पिता से मिली थी, पिता को पितामह से, और वह परंपरा उन धुंधले युगों तक जाती थी जब महान् पाल महारानी ने अपानक विहार के लिए अवलोकितेश्वर की प्रतिमा बनवाई थी।

आज का लक्ष्य था— तारा। पद्मासन में विराजमान, किसी मनुष्य के अग्रबाहु के बराबर ऊंचाई की, हरित-कांस्य में ढाली जाने वाली तारा। विहार के पास पहले से इकतालीस प्रतिष्ठित कांस्य-प्रतिमाएं थीं— छोटे रजत वज्रपाणि से लेकर उस भव्य खड़े बुद्ध तक जिनके चीवर की सिलवटें धरणीदास के पितामह के हाथों की अतुलनीय कृति थीं। यह तारा बयालीसवीं होती।

उसने मोम के सांचे को उठाकर भोर की मद्धम रोशनी में परखा। तारा का दाहिना हाथ वरद-मुद्रा में था और उस मुद्रा में करुणा का वास्तविक भाव लाने के लिए उसने तीन दिन संघर्ष किया था। अब उसे लगा कि वह भाव अंततः पकड़ में आ गया है। प्रत्येक ढलाई में एक ऐसा क्षण आता है जब शिल्पी जान लेता है कि उसकी कृति अब केवल मृत्-पिंड नहीं रही— वह उस रिक्त पात्र में बदल गई है जो दिव्यता से भरे जाने की प्रतीक्षा करता है।

वह मिट्टी का आवरण चढ़ा ही रहा था कि प्रभावती के पदचाप सुनाई दिए।

प्रभावती— एक कांस्य-व्यापारी की विधवा, जो पन्द्रह वर्षों से विहार को तांबा और रांगा देती आ रही थी। पति के जाने के बाद भी उसने व्यापार जारी रखा था और कुछ विशेष भोरों में वह चावल और तिल का नैवेद्य लेकर भी आती थी। वह कोई पंडित स्त्री नहीं थी, पर धरणीदास उसकी आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि को बड़े-से-बड़े पांडित्य से ऊंचा मानता था।

"कल राजगीर का पथ बहुत व्यस्त था," उसने चौखट से ही कहा। "संन्यासी थे। अधिकांश उत्तर को जा रहे थे।"

"संन्यासियों का तो चलना ही जीवन है," धरणीदास ने बिना दृष्टि उठाए कहा।

"किन्तु उनके मुखों पर जो भाव था— वह पहले कभी नहीं देखा था।"

हाथ रुक गए। उसने उपकरण रखा और पलटा। प्रभावती के मुख पर साधारण ग्राम-चर्चा का भाव नहीं था। वह उस व्यक्ति के समान प्रतीत होती थी जिसने क्षितिज पर भयंकर मेघ देख लिए हों और यह निश्चय न कर पा रहा हो कि उन्हें तूफान कहे या न कहे।

"कितने थे?" धरणीदास ने पूछा।

"इतने कि मार्ग किसी उलटी बहती नदी के समान दिखता था। और बोधगया से आए एक परिवार ने कहा कि..." वह ठिठकी। "उन्होंने कहा— तुरुष्क सेनापति के अश्वारोही पश्चिम के घाटों पर देखे गए हैं।"

धरणीदास ने उस मिट्टी के सांचे को देखा जिसके भीतर तारा अग्नि में जन्म लेने की प्रतीक्षा कर रही थी। उसने उसे अत्यंत सावधानी से छज्जे पर रख दिया।

"भीतर आओ," उसने कहा— एक गहरी सांस के साथ। "बैठो। और जो सुना है, विस्तार से बताओ।"

द्वितीय खंड : सृष्टि के अंतिम छोर पर एक ग्रंथालय

कुर्किहार से तीन दिन की पदयात्रा उत्तर-पूर्व में, जहां कार्तिक में भी सेमर के पुष्पित वृक्ष उन तीर्थयात्रियों की स्मृतियां संजोए खड़े थे जो कभी उनकी छाया में विश्राम करते थे, नालंदा का विशाल विद्या-नगर मैदानों के बीच से इस प्रकार उदित होता था जैसे किसी महानगर ने अनश्वर होने का संकल्प कर लिया हो।

नागसेन का बचपन नालंदा के मंदिरों में गूंजते सस्वर मंत्रोच्चार को आत्मसात करते हुए बीता था—इससे पहले कि वह उनका अर्थ

भी समझ पाता। सात वर्ष की आयु में उसका चाचा उसे यहां लाया था और प्रारम्भिक वर्ष केवल श्रवण में बीते— उषाकाल में वरिष्ठ भिक्षुओं के न्यायशास्त्र के गम्भीर श्लोकों का नाद, पाण्डुलिपि-कक्ष में ताड़पत्रों पर सरकंडे की लेखनी की लयबद्ध ध्वनि और उस महान् पुस्तकालय की वह विशिष्ट निस्तब्धता— जो ध्वनि का अभाव नहीं, अपितु शताब्दियों के ज्ञान-संचय से उत्पन्न घनीभूत एकाग्रता थी।

अब वह अट्ठाईस वर्ष का था। उसे नालंदा के उस पुस्तकालय-खंड का तृतीय सहायक नियुक्त किया गया था जहां माध्यमिक दर्शन और वज्रयान के अनुष्ठान-ग्रंथ सुरक्षित थे— और जहां वयोवृद्ध आचार्य आनन्दमित्र का एकछत्र अधिकार था।

आनन्दमित्र की आयु अस्सी के निकट थी— यद्यपि उन्होंने स्वयं गिनती छोड़ दी थी। वे कहते थे : "जो मनुष्य उन ग्रंथों के मध्य सांस लेता हो जो उसके पितामह के जन्म से पूर्व लिखे गए, उसे अपने नश्वर वर्षों की गणना की क्या आवश्यकता?" वे क्षीण-काय थे, किन्तु उनका मस्तक असाधारण रूप से विशाल था। चिन्तन के समय वे मन-ही-मन संस्कृत के बीज-मंत्रों का उच्चारण करते रहते।

"अनुक्रमणिका," उन्होंने नागसेन को सेवा के पहले ही सप्ताह में समझाया था, "इस पुस्तकालय की आत्मा है। पाण्डुलिपियां तो केवल शरीर हैं। शरीर का पुनर्जन्म होता है— उसकी प्रतिलिपि बनती है। किन्तु आत्मा एक बार खो जाए तो सदा के लिए विलुप्त हो जाती है।"

वह पुस्तकालय नालंदा के नौ महान् पाण्डुलिपि-भवनों में से तीसरा था। उसकी चारों दीवारों पर फर्श से लेकर छत तक लकड़ी की गहरी अलमारियां थीं, जिनमें लगभग अठारह सौ ताड़पत्र की पाण्डुलिपियां— कपड़े में लिपटी, काष्ठ-फलकों के मध्य सुरक्षित। वहां पांचवीं सदी की गुप्त-लिपि से लेकर पिछले दशक के प्रज्ञापारमिता-भाष्य तक, जटिल तांत्रिक अनुष्ठान-पुस्तिकाएं, खगोल-विज्ञान की सारणियां, आयुर्वेद के ग्रंथ- और संस्कृत व्याकरण के ये बारह संस्करण उस काल में संकलित किए गए थे जब चीनी यात्री ह्वेनसांग यहां आया था। वह इन्हीं कक्षों में बैठकर ज्ञान-संग्रह करता था।

उस शरद् ऋतु में नागसेन एक तिब्बती भिक्षु के साथ कार्य कर रहा था— सांग्ये, जो पिछले वसंत में शाक्य मठ का परिचयपत्र लेकर यहां आया था। वह दो वर्ष यहां रहकर उन ग्रंथों की प्रतिलिपियां बनाना चाहता था जिनका तिब्बती भाषा में अब तक अनुवाद नहीं हुआ था। उसकी एकाग्रता में एक ऐसी बेचैनी थी जो यह बताती थी कि वह समय की सीमाओं को भली-भांति पहचानता था।

एक दिन मध्याह्न के विश्राम में, जब वे प्रांगण में उबला हुआ चावल खा रहे थे और सामने के शिक्षण-भवन के नक्काशीदार पाषाण-फलकों पर सूर्य की रोशनी को खिसकते देख रहे थे, नागसेन ने पूछा—

"जब तिब्बत लौटोगे, तो कौन से ग्रंथ साथ ले जाओगे?"

सांग्ये ने अपने स्वभाव के अनुसार देर तक सोचा। "वे, जो इस पृथ्वी पर और कहीं नहीं हैं। जिनकी कोई दूसरी प्रति ज्ञात नहीं।"

"यह कैसे जानोगे कि वे कौन से हैं?"

सांग्ये के होठों पर एक क्षीण मुस्कान उभरी- "मैं आचार्य आनन्दमित्र जी से तीन मास से यही पूछ रहा हूँ। अब जाकर उन्होंने उत्तर देना आरम्भ किया है।"

नागसेन उसी वार्तालाप पर विचार कर रहा था कि पश्चिम से खून से लथपथ एक। मरणासन्न दूत आ पहुँचा।

तृतीय खंड : जो महा-विनाश का समाचार लाया

उस किशोर का नाम रामसिंह था। उसने दो दिनों में चालीस कोस की दूरी दौड़कर पार की थी। वह तेल्हाड़ा महाविहार का सोलह वर्षीय नवदीक्षित भिक्षु था। जब वह नालंदा के पूर्वी द्वार पर पहुँचा, तो उसके कपड़े खून से सने हुए थे। उसकी कमर तक नदी का कीचड़ लिपटा था और उसके पैर अभी भी कांप रहे थे- जैसे उन्हें रुकने का भरोसा न हो।

प्रथम रात्रि-पाठ की घण्टियां बज चुकी थीं जब नागसेन ने उसे द्वार-स्तम्भ के सहारे मूर्छित अवस्था में पाया। उसने उसके घावों पर पट्टी बांधी, उसे जल और भोजन दिया और महास्तूप के ऊपर चंद्रमा के उदय होने तक उसी पाषाण-सीढ़ी पर उसके निकट बैठा रहा।

"तेल्हाड़ा नष्ट हो चुका है।"

यह उसका पहला वाक्य था- और वह इतने सपाट स्वर में कहा गया था मानो उसका सारा आतंक पथ में कहीं छूट गया हो और अब वह किसी शून्य के उस पार से बोल रहा हो। वह विहार की प्राचीरों के बाहर समिधा एकत्र कर रहा था जब अश्वारोहियों का वह दल टिड्डी-दल की भांति आया। उसने चीखें सुनीं। वह वापस नहीं गया। वह बस भागता रहा- क्योंकि अब वापस जाने के लिए कुछ शेष नहीं बचा था।

चुप होने के बाद बहुत देर तक नागसेन ने एक शब्द नहीं कहा। वह प्रांगण के जलकुण्ड में चंद्रमा का थरथराता प्रतिबिंब एकटक देखता रहा। उनके चारों ओर सभाभवन से सान्ध्य-प्रार्थना का स्वर पूर्ववत् उठ-गिर रहा था और नागसेन को लगा कि इतने भयानक सत्य के वातावरण में घुलने के बाद भी वह स्वर इतनी निर्लिप्तता से कैसे गुंज सकता है।

किशोर ने मन्द स्वर में जोड़ा- "ओदंतपुरी दो सप्ताह पहले ही धराशायी हो गया था। उसकी ऊंची प्राचीरों को तुरुष्क आक्रांताओं

द्वारा बलपूर्वक भेद दिया गया, और फिर भीतर के निहत्थे एवं शांतिप्रिय भिक्षुओं का बर्बरतापूर्वक नरसंहार कर दिया गया।"

नागसेन सीधे आचार्य आनन्दमित्र के पास गया। उसने उन्हें तेल-दीपक की मद्धम लौ में पुस्तकालय की अपनी नीची चौकी पर पद्मासन लगाए पाया। वे एक ग्रंथ के हाशिये पर अत्यंत सूक्ष्म और सधी हुई लिखावट में टिप्पणियां लिख रहे थे। नागसेन के भीतर आते ही उन्होंने उसके मुख के भाव पढ़ लिए और लेखनी रख दी।

"बैठ जाओ," आनन्दमित्र ने कहा।

"समय नहीं..."

"संकट के समय बैठने के लिए सदैव समय होता है," वे बोले- उनका स्वर अडिग था, जैसे किसी विशाल वटवृक्ष की जड़ें। "संकट ही वे एकमात्र परिस्थितियां हैं जिनमें गहन चिन्तन की आवश्यकता होती है। और चिन्तन स्थिरता के बिना असम्भव है।"

नागसेन बैठ गया। उसने सब कुछ बता दिया। आनन्दमित्र एक पाषाण-मूर्ति की भांति भावहीन होकर सुनते रहे। झरोखे से आती वायु में दीपक की लौ कांपी और दीवारों पर पाण्डुलिपि-अलमारियों की परछाइयां किसी प्रेत-नृत्य की भांति झूलने लगीं।

"कितने दिन?" आनन्दमित्र ने पूछा।

"किशोर ने कहा- वे अश्वारोही वायु की गति से बढ़ते हैं।"

"मैंने पूछा- कितने दिन।"

"सम्भवतः पांच। या उससे भी कम।"

आनन्दमित्र ने धीरे सिर हिलाया- जैसे किसी चिरन्तन गणना ने अन्ततः अपना उत्तर दे दिया हो। वे आयु की अपेक्षा अधिक स्फूर्ति से उठे और प्रथम अलमारी की ओर बढ़े।

"हम उन ग्रंथों से आरम्भ करेंगे जिनकी कोई प्रति अन्य किसी पुस्तकालय में उपलब्ध नहीं है," उन्होंने घोषणा की। "सांग्ये जानता होगा कि वे कौन से हैं। उसे खोजो। कुली महावीर को भी बुलाओ- उसकी पीठ मजबूत है और वह जानता है कि ताड़पत्रों को बिना तोड़े कैसे लपेटा जाता है। हम रात भर काम करेंगे।"

"और शेष भिक्षु? यह समस्त ग्रंथालय?"

वयोवृद्ध आचार्य ने अपने चारों ओर की उन अलमारियों को एक ऐसी दृष्टि से देखा जिसे नागसेन उस क्षण नहीं समझ सका- और जिसे समझने में उसे जीवन के कई वर्ष लगाने पड़े।

"पुस्तकालय," आनन्दमित्र ने एक-एक शब्द पर बल देते हुए कहा, "एक भवन मात्र है। वह जलेगा या नहीं जलेगा। किन्तु

ये ग्रंथ"- उन्होंने कपड़े में लिपटी एक पाण्डुलिपि की पीठ पर एक उंगली अत्यंत कोमलता से रखी- "भवन नहीं हैं। हम वह सब बचाएंगे जो हम अपने कन्धों पर उठा सकते हैं।"

चतुर्थ खंड : जो धरती के गर्भ में सौंपा जाएगा

कुर्किहार में निर्णय भिन्न रूप से लिया गया- किन्तु पहुंचा उसी बिंदु पर।

प्रभावती की चेतावनी के दूसरे दिन की रात, जब तेलहाड़ा के पतन का दुःखद समाचार दक्षिण तक छनकर आ चुका था और जिसे अब नकारना असम्भव था, धरणीदास ने कर्मशाला में एक बैठक बुलाई। विहार में उस समय केवल छह भिक्षु मौजूद थे और तीन सामान्य सेवक थे, जिनमें द्वारपाल शिवराम भी था, जिसने विहार की प्राचीरों की छाया में जन्म लिया था और वहीं देह छोड़ने का संकल्प कर चुका था।

वे सब उस ठण्डी भट्टी के चारों ओर एक वृत्त में बैठे थे। मध्य में रखे दीपक का प्रकाश उनके मुखों पर अंधकार और उजाले की रहस्यमयी रेखाएं खींच रहा था।

"हम इन्हें लादकर नहीं ले जा सकते," सबसे वृद्ध भिक्षु बुद्धपाल ने मौन तोड़ा। "वे बहुत संख्या में हैं, बहुत भारी हैं। और सशस्त्र सैनिकों से भरे पथ पर कांस्य का भार लेकर चलने वाला व्यक्ति अधिक दूर नहीं जा सकता।"

"इन्हें यहां बेसहारा भी नहीं छोड़ सकते," धरणीदास ने कहा।

"नहीं," बुद्धपाल ने सहमति दी।

और अन्ततः प्रभावती ने वह शब्द उच्चारित किया जो उस कक्ष में सबके मस्तिष्कों में तो गूंज रहा था, पर होठों तक आने से संकुचा रहा था।

"तो हम इन देव-प्रतिमाओं को धरती की कोख में सौंप देंगे," उसने दृढ़ स्वर में कहा।

जो निस्तब्धता इसके पश्चात् छाई, वह उस विशेष प्रकार की थी जो किसी ऐसे सत्य के प्रकटीकरण पर उत्पन्न होती है जिसे सब जानते हों किन्तु जिसे वाणी देने से वह भयानक रूप से वास्तविक हो उठता है।

धरणीदास ने धीरे सहमति में सिर हिलाया। वह दो दिनों से इसी युक्ति को अन्य विचारों के मध्य बार-बार तोलता रहा था- जैसे कोई अपनी जीभ से एक हिलते हुए दांत को बार-बार टटोलता है, विवशतावश, अनिच्छा से, पर यह जानते हुए कि दबाव किस दिशा में ले जाएगा।

"यत्र-तत्र नहीं," उसने गम्भीरता से कहा। "यह पूर्णतः सटीक होना चाहिए। इतना गहरा कि कोई सामान्य लुटेरा आसानी से न पा सके- और किसी ज्ञात चिह्न के इतने निकट कि विपत्ति के टलने पर हम उन्हें पुनः प्राप्त कर सकें।"

"मुख्य टीला," सत्तर वर्षीय द्वारपाल शिवराम का स्वर गूंजा। "वहां की मिट्टी उत्कृष्ट है। गहरी, अक्षुण्ण। और जो मनुष्य यह जानता होगा कि उसे क्या खोजना है, वह यह भी जानेगा कि कहां खोजना है।"

"कितनी गहराई?"

"एक मनुष्य के कन्धों से भी अधिक गहरी। इतनी गहरी जहां तक कोई लालची और हड़बड़ी में आया लुटेरा खोदने का श्रम नहीं करेगा।"

मध्यरात्रि के घोर अंधकार में उन्होंने कार्य आरम्भ किया। प्रभावती गांव से पांच पुरुषों को लाई थी- उसका भाई, दो भांजे और दो ऐसे कृषक जो वर्षों से विहार की भूमि जोतते थे। वे कुदाल और लम्बे हथ्ये वाले फावड़े लाए और लगभग पूर्ण मौन में काम किया। जैसे-जैसे गर्त गहरा होता गया, वे बारी-बारी उतरते गए और मिट्टी टोकरीयों में भरकर ऊपर भेजते रहे।

धरणीदास ने प्रतिमाओं की तैयारी का निर्देशन किया। प्रत्येक देव-प्रतिमा को शास्त्रीय विधान के अनुसार अंतिम बार स्नान कराया गया- पवित्र मंत्रोच्चारण के साथ शुद्ध जल अर्पित, स्वच्छ वस्त्र से पोंछकर श्रद्धापूर्वक लपेटा गया। उसने बुद्धिमत्ता का उपयोग करते हुए छोटी प्रतिमाओं को बड़े पात्रों के भीतर रखा : घण्टी के आकार के प्यालों के भीतर सूक्ष्म स्तूप, विशाल खड़े बुद्ध की खोखली आधारशिलाओं के भीतर छोटी मन्त-प्रतिमाएं। वह इस कार्य को उसी तन्मयता से कर रहा था जैसे कोई पुजारी अपना अनुष्ठान पूर्ण करता है- क्योंकि वह जानता था कि यह भी एक अनुष्ठान ही था। पूजा का नहीं- धरोहर को सौंपने का।

उस तारा को लपेटते हुए- जो अभी भी अपने मिट्टी के आवरण में थी, जिसे कभी ढाला नहीं गया था, वह मोम की प्रतिमा जो अपने पार्थिव खोल में सोई थी- उसने उन असंख्य क्षणों के विषय में सोचा जो इन कांस्य-प्रतिमाओं में घनीभूत थे। भट्टी के सामने पिता द्वारा बिताए गए अनगिनत प्रहर। मोम पर पितामह की सृजनशील उंगलियों का स्पर्श। वह श्रद्धालु जो दक्कन के पठारों से तांबा लाया था। वह श्रीलंकाई तीर्थयात्री जिसने चालीस वर्ष पहले इसी खड़े बुद्ध के गले में गेंदे की माला पहनाकर अश्रु बहाए थे। वे सब क्षण, वह सारी श्रद्धा- सब कुछ उस धातु में सिमट गई थी और अब उसी माता-भूमि को लौटाई जा रही थी जो अन्ततः सब कुछ अपने में समा लेती है।

"धैर्य रखना," उसने अंतिम प्रतिमा को उस गर्त में उतारते हुए मंद स्वर में कहा। "धैर्य रखना। एक दिन कोई न कोई तुम्हारे लिए अवश्य आएगा।"

उसे स्वयं पूर्ण विश्वास नहीं था कि जो वह कह रहा है, वह सत्य होगा। किन्तु उसे यह अवश्य ज्ञात था कि उस घोर निराशा के क्षण में कहना अत्यंत आवश्यक था।

पक्षियों के जागने तक वे गर्त भर चुके थे। मिट्टी को कूट-कूटकर समतल किया, विस्थापित पत्थरों को उनके स्थान पर रखा और शेष मिट्टी पास के खेतों में बिखेर दी। आकाश में भोर की लालिमा फूटने लगी। वहां उस गुप्त कृत्य का कोई चिह्न शेष नहीं था। वह टीला हूबहू वैसा ही प्रतीत होता था जैसा वह चार शताब्दियों से दिखता आ रहा था।

अंतिम पत्थर अपने स्थान पर रखे जाने के पश्चात् प्रभावती धरणीदास के निकट आकर खड़ी हो गई। एक लम्बे समय तक उसने कुछ नहीं कहा।

"क्या तुम यहां से जाओगे?" उसने अन्ततः पूछा।

"नहीं," उसने उत्तर दिया।

"मैं भी नहीं," उसने कहा।

धरणीदास ने उसकी ओर देखा। उसने उस दृष्टि का सामना एक ऐसी अविचल स्थिरता के साथ किया- जो साहस से अधिक, काल के प्रहारों के समक्ष लघु होने से एक साधारण किन्तु दृढ़ अस्वीकार था।

"किसी को तो यह स्मरण रखना ही होगा कि वे कहां सो रहे हैं," उसने कहा।

पंचम खंड : वह रात जब ग्रंथालय भस्मसात हो उठे

नालंदा में उन्होंने लगातार चार रातें अंधकार से युद्ध किया। नागसेन, सांग्ये और कुली महावीर- तेल के छोटे दीपकों की उस सुनहरी आभा में, जो अलमारियों पर एक रहस्यमयी प्रकाश बिखेर रही थी- आचार्य आनन्दमित्र के निर्देश पर अबाध गति से काम करते रहे। पाण्डुलिपियों को मलमल के कपड़े में लपेटा। यह चुनाव उस शल्य-चिकित्सक की भांति किया गया था जिसे यह तय करना हो कि किसे जीवित रखना है- जो अद्वितीय थे वे प्रथम, जो बहुप्रचलित थे वे सबसे अंत में। सांग्ये अपनी चिरपरिचित निस्तब्धता और गति की मितव्ययता के साथ इस प्रक्रिया में लीन था- मानो वह अपनी कल्पना में इस दृश्य का बहुत पहले से अभ्यास कर चुका हो।

"चर्यागीति उठा लो," दूसरी रात आचार्य आनन्दमित्र उस अंतिम छोर से बोले। "हेवज्र तन्त्र का पद्य-भाष्य भी- वह जो ताम्र-मञ्जूषा

में है। सातवें खंड की ऊपरी अलमारी में पीले वस्त्र में बंधा सब कुछ रख लो। ये ऐसे ग्रंथ हैं जो केवल यहीं हैं- मेरी जानकारी में संसार में अन्यत्र कहीं नहीं।"

चौथी रात के अवसान तक उन्होंने पाण्डुलिपियों की चार विशाल गठरियां और तांत्रिक व अनुष्ठानिक सामग्रियों की दो काष्ठ-मञ्जूषाएं तैयार कर लीं। यह उस अथाह ज्ञान-सागर का एक बिन्दु भी नहीं था। यह केवल उतना था जितना चार मनुष्य अपनी पीठों पर लादकर अनिश्चित पथों पर चल सकते थे।

आचार्य आनन्दमित्र ने अपने लिए कुछ भी तैयार करने से स्पष्ट इनकार कर दिया था। तीसरी रात नागसेन ने यह देखा और सीधे पूछ लिया।

"मैं अस्सी वर्ष का वृद्ध हूं," उन्होंने कहा। "मैं नेपाल के दुर्गम पर्वत नहीं पार कर सकता। चम्पारण्य का लम्बा पथ भी इन शेष दिनों में नहीं तय कर सकता। ये कठोर व्यावहारिक सत्य हैं- इन पर तर्क-वितर्क नहीं होता।"

"तो फिर आप क्या करेंगे?"

आनन्दमित्र ने रिक्त होती अलमारियों को, उन सैकड़ों पाण्डुलिपियों को जिन्हें वे नहीं ले जा सके, उस पुस्तकालय को जो छह दशकों से उनका घर था- एक शान्त दृष्टि से देखा।

"मैं यहीं रुकूंगा। सम्भव है, प्रलय शान्त होने पर कुछ भिक्षु वापस आएंगे। इतिहास साक्षी है- विनाश के पश्चात् भी भिक्षु सदैव लौटते रहे हैं। जब तक इन ग्रंथों को बांचने वाला एक भी व्यक्ति यहां जीवित है, यह ग्रंथालय पूर्णतः मृत नहीं हो सकता।"

पांचवें दिन की भोर, पश्चिम दिशा से पसीने में लथपथ एक अश्वारोही आया। वह कोई श्रमण नहीं था- पुराने मार्ग के पास के किसी गांव का कृषक था, और उसका मुख उस मनुष्य के समान पीला पड़ चुका था जिसकी आंखों से नौद सदा के लिए छिन चुकी हो। क्षितिज पर काला धुआं तो पहले से दिखाई देने लगा था- कार्तिक के नीले आकाश पर विक्रमशिला की दिशा से उठती एक भयानक कालिमा।

नागसेन और सांग्ये पूर्वी द्वार पर खड़े होकर देर तक उस मृत्यु के धुएं को मौन देखते रहे। उनके चारों ओर महाविहार तीव्र गति से रिक्त हो रहा था- भिक्षु छोटे-छोटे समूहों में, जो कुछ उठा सकते थे उसे लेकर, बिना किसी औपचारिक विदाई के वेग से जा रहे थे। प्रार्थना की विशाल घंटी अंतिम बार बजाई गई- और उसकी ध्वनि उस विस्तृत मैदान में एक ऐसी अपरिचित तात्कालिकता के साथ गूंजी, जैसे किसी निस्तब्ध कक्ष में अचानक कोई शब्द बहुत ऊंचे स्वर में बोल दिया गया हो।

"अब?" सांगये ने पूछा।

"अब," नागसेन ने कहा।

वह आचार्य आनन्दमित्र से अंतिम विदा लेने भीतर गया। उसने उन्हें ठीक उसी स्थान पर पाया जहां छोड़ा था- शेष अलमारियों के समक्ष अपनी नीची चौकी पर, हाथ में सरकंडे की लेखनी, घुटनों पर एक पाण्डुलिपि फैलाए। वे पढ़ रहे थे। उस महाविनाश की आहट के मध्य, वे एकाग्रचित्त होकर केवल पढ़ रहे थे।

"जाओ," आनन्दमित्र ने बिना दृष्टि उठाए कहा। "इन ग्रंथों को सुरक्षित रखना। जब किसी सुरक्षित स्थान पर पहुंचो तो इनकी प्रतिलिपियां बनाना। दो प्रतिलिपियां- एक वहां के पुस्तकालय के लिए, एक आगे भेजने के लिए। धर्म का नाश तब नहीं होता जब भवनों को जलाया जाता है। उसका नाश तो तब होता है जब कोई यह भी स्मरण नहीं रख पाता कि उन भवनों के भीतर क्या था।"

वे एक पल रुके। उनका कांपता हाथ सामने रखी पाण्डुलिपि के खुले पृष्ठ पर टिक गया- वह एक संकेत था जो निश्चित रूप से अंतिम विदाई का प्रतीक था।

"जो भी तुम्हारी बात सुने," उन्होंने अत्यंत धीमे किन्तु दृढ़ स्वर में कहा, "उसे यह अवश्य बताना कि यह कभी एक महान् स्थान हुआ करता था। कि यहां के लोग महत्वपूर्ण और गूढ़ विषयों पर गहन चिन्तन किया करते थे। कि वे इस प्रकार विस्मृत हो जाने के योग्य नहीं थे।"

नागसेन के कण्ठ में असंख्य शब्द उमड़ रहे थे। वह केवल इतना कह सका :

"मैं उन्हें अवश्य बताऊंगा।"

और वह मुड़कर चल दिया।

अन्तराल : चूने और बालू की वह रक्षक दीवार

नालंदा से बीस कोस दक्षिण में, बोधगया के उस पावन नगर में जहां वह पुण्य-पीपल आज भी उस भूमि पर अपनी शाखाएं फैलाए था जहां तथागत ने सत्य का साक्षात्कार किया था, एक वयोवृद्ध भिक्षु देवदत्त अपनी ही एक भिन्न गणना में लीन था।

उसने महाबोधि मंदिर की तीस वर्षों से सेवा की थी। वह उसके एक-एक प्रस्तर को जानता था, प्रांगण के फर्श की प्रत्येक दरार को, और उस सटीक कोण को जिससे भोर की सूर्य-रश्मियां पूर्वी द्वार से प्रवेश करके गर्भगृह में विराजमान महाबुद्ध-प्रतिमा के चरणों को आलोकित करती थीं।

वह प्रतिमा अत्यंत प्राचीन थी- भूमिस्पर्श मुद्रा में, जिसमें तथागत का दाहिना हाथ पृथ्वी का स्पर्श कर रहा था, मानो वे स्वयं धरती को अपने ज्ञान-प्राप्ति के उस महान् क्षण का साक्षी बनने के लिए आह्वान कर रहे हों। उस पाषाण-प्रतिमा का आध्यात्मिक और ऐतिहासिक मूल्य अवर्णनीय था। ज्ञात जगत् के अंतिम छोरों से तीर्थयात्री उसके दर्शन को आते थे।

देवदत्त ने ओदंतपुरी का सर्वनाश सुन लिया था। नालंदा में क्या हो रहा था, यह भी जान चुका था। और उसे यह भी ज्ञात हो चुका था कि तुरुष्क सैनिकों में मूर्ति-भज्जन के प्रति एक विशेष उन्माद था- कि वे इसमें एक ऐसी धार्मिक तृप्ति का अनुभव करते थे जिसे किसी तर्क, संधि या विनय से शान्त नहीं किया जा सकता था।

वह प्रतिमा को उठाकर कहीं नहीं ले जा सकता था। वह कोई साधारण पाषाण नहीं था- उस भूमि में उतनी ही गहराई से जड़ा हुआ था जितनी गहराई तक उस बोधि-वृक्ष की जड़ें गई थीं।

देवदत्त ने देर तक चिंतन किया। फिर उसने मंदिर के सभी सेवकों को एकत्र किया।

उन्होंने नदी-तट की चिकनी मिट्टी, बालू और चूने का मिश्रण तैयार किया और रात भर, युद्ध-स्तर पर, कार्य किया। आठ व्यक्तियों का वह समूह बिना किसी स्पष्ट निर्देश के ही यह जानता था कि दांव पर क्या लगा है। और भोर होते-होते, उस पवित्र देव-प्रतिमा के ठीक सामने एक नयी दीवार खड़ी हो चुकी थी- चिकनी, ताजी, किसी बीज के गर्भ के समान श्वेत।

उस दीवार की सतह पर, जब प्लास्टर अभी गीला ही था, देवदत्त ने भगवान् महेश्वर- महान् शिव- की आकृति उकेर दी। उनका त्रिशूल और तृतीय नेत्र गेरुए और काले रंग में इस प्रकार चित्रित किया कि कोई भी आक्रामक दर्शक उसे प्रथम दृष्टि में एक साधारण शैव-मंदिर का चित्र ही मानेगा।

कार्य पूर्ण होने पर वे पीछे हटे और अपनी उस कृति को देखा। द्वार से देखने पर अब वह केवल एक शैव-मंदिर प्रतीत होता था। उसमें ऐसा कुछ भी नहीं था जो विध्वंसकों का ध्यान आकर्षित करें।

उस दीवार के पीछे, गर्भगृह के सघन अंधकार में, तथागत अपनी उंगलियों से पृथ्वी का स्पर्श करते हुए उसी प्रशांत भाव से विराजमान रहे, जैसे वे सात शताब्दियों से विराजमान थे- और जैसे वे आने वाली कई शताब्दियों तक विराजमान रहने वाले थे।

"प्रतीक्षा करना," देवदत्त ने कोमल स्वर में कहा- उस दीवार से, उसके पीछे की प्रतिमा से, और अपने पैरों के नीचे की धरती से। "बस प्रतीक्षा करना।"

षष्ठ खंड : हिमालय के उस पार उड़ने वाले ज्ञान के बीज

तीरभुक्ति क्षेत्र के चम्पारण्य के सघन वनों को पार करते हुए- जो उस समय तक इस्लामी शासन के प्रभाव से पूर्णतः सुरक्षित था- तीन मास की अत्यंत कष्टकारी पदयात्रा के पश्चात् नागसेन का दल काठमांडू के पाटन स्थित हिरण्यवर्ण महाविहार पहुंचा। उसके दल में सांग्ये, महावीर और भिक्षु चंद्रघोष सम्मिलित थे, और वे उन चार अमूल्य गठियों का भार आपस में बांटकर ढो रहे थे।

नेपाल के उस पहाड़ी क्षेत्र में उसने एक अद्भुत दृश्य देखा- एक विहार जो नवजीवन के स्पंदन से धड़क रहा था। वह उन सभी संन्यासियों का महान् अभयारण्य बन चुका था जो अपने-अपने विहारों के विध्वंस से बचकर निकले थे। वे प्रतिदिन आ रहे थे- जैसे किसी भयानक जलपोत-दुर्घटना के पश्चात् थके-हारे किन्तु संकल्पबद्ध यात्री किसी दिखाई देते किनारे पर एकत्र होते हैं।

शाक्यश्रीभद्र वहां थे- नालंदा के अंतिम विहार-प्रमुख, एक ऐसे विराट् व्यक्तित्व जिनके समक्ष नागसेन को बोलने में संकोच होता था। वे उस अनुवाद-समूह को दक्षता के साथ संगठित व संचालित कर रहे थे जिसे वहां उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति विश्व का सबसे महत्वपूर्ण और तात्कालिक कार्य मानता था। पाण्डुलिपियों का तिब्बती में त्वरित अनुवाद हो रहा था। गूढ़ ज्ञान हस्तांतरित हो रहा था। गुरु-शिष्य की वह प्राचीन परंपरा एक अटूट शृंखला के रूप में आगे बढ़ रही थी।

"क्या तुम्हारे पास माध्यमिक दर्शन के ग्रंथ हैं?" शाक्यश्रीभद्र के एक वरिष्ठ शिष्य, विभूतिचंद्र नामक एक युवा कश्मीरी विद्वान ने पूछा।

"हां, और वज्रयान के कुछ तांत्रिक अनुष्ठान-ग्रंथ भी," नागसेन ने कहा। "कुछ अत्यंत अद्वितीय हैं। आचार्य आनन्दमित्र जी ने स्वयं उन्हें चुना था।"

विभूतिचंद्र ने अत्यंत सावधान और श्रद्धानत हाथों से उन पोथियों का परीक्षण किया।

"उत्तम," उसने कहा। "अति उत्तम।" फिर रुककर देखा- "क्या आचार्य आनन्दमित्र जी...?"

"वे वहीं रुक गए," नागसेन ने धीरे कहा।

एक क्षण का घना मौन।

"निस्सन्देह वे वहीं रुके होंगे," विभूतिचंद्र ने गहरे आदर और विषाद से भरे स्वर में कहा। "निस्सन्देह।"

छह सप्ताह पश्चात् सांग्ये तिब्बत के लिए निकल पड़ा। उसने आरम्भिक शीत-ऋतु में ही हिमालय पार किया- जब पर्वत-शृंखलाओं पर हिमपात आरम्भ ही हुआ था। उसकी पीठ पर वे ग्रंथ थे जो मगध

की उस पुण्य-भूमि पर उस समय रचे गए थे जब आज के किसी जीवित व्यक्ति का जन्म भी नहीं हुआ था। वह शाक्य मठ पहुंचा और उन ग्रंथों को वहां के शुष्क पाषाण-पुस्तकालय में रख आया- जहां वे आने वाली आठ शताब्दियों तक शांति से विश्राम करते रहे, जब तक आधुनिक युग के विद्वानों ने उन तहखानों को खोला और उन्हें वैसे ही स्पष्ट, पूर्ण और जीवन्त पाया, मानो गंगा के मैदानों की उस प्रखर ऊष्मा में उन्हें लिखने वाले पुरुषों और स्त्रियों के विचारों की ऊर्जा आज भी उनमें स्पंदित हो।

नालंदा के वे महान् ग्रंथालय कई महीनों तक भयानक लपटों में जलते रहे। तीस वर्ष पश्चात् जब एक तिब्बती तीर्थयात्री उन खंडहरों में भटका, तो उसने मूल चौरासी उपभवनों में से केवल दो को खड़ा पाया। उस विशालतम प्रांगण के मलबे और भस्म के मध्य, उसे राहुलश्रीभद्र नामक एक नब्बे वर्षीय वृद्ध भिक्षु मिले- जो एक स्थानीय हिंदू भूस्वामी के संरक्षण में जीवित थे और राख और टूटे पत्थरों के बीच सत्तर शिष्यों को अब भी विद्या दे रहे थे।

बौद्ध धर्म उस भूमि से पूर्णतः विलुप्त नहीं हुआ था। वह उस आंधी में फंसा एक ऐसा दीपक था जिसकी लौ क्षैतिज होकर टिमटिमा रही- किन्तु दीपक अभी बुझा नहीं था।

उपसंहार : जो इस धरा की स्मृति में शेष रहा

कुर्किहार में उस प्राचीन टीले ने अपना रहस्य बिना कठिनाई के अपने वक्ष में धारण किए रखा। शताब्दियां बीतती गईं। विहार के शेष भवन जीर्ण-शीर्ण होकर ढहे और धीरे-धीरे उसी परिदृश्य में विलीन हो गए। उन प्रांगणों पर झाड़ियों और लताओं ने साम्राज्य स्थापित कर लिया। वह ग्राम भी निर्वाह-कृषि की अपनी सामान्य और चक्राकार नियति के अनुसार कभी फलता-फूलता, कभी सिकुड़ता रहा।

इस सत्य के प्रकट होने में सात सौ से अधिक वर्ष लगे।

सन् 1930 में, जब उत्खननकर्ता कुर्किहार के उसी टीले पर फावड़े चला रहे थे, तब इतिहास मानो स्वयं को दोहरा रहा था। यह एक अद्भुत विडम्बना थी कि लोहकर्म की उसी परंपरा से निर्मित वे फावड़े, जिनकी बनावट और तकनीक में सदियों के अंतराल के बावजूद कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया था, लगभग वैसे ही प्रयुक्त हो रहे थे जैसे प्रभावती के भाई ने 1198 ईस्वी की उस अंधेरी अक्टूबर-रात्रि में किए थे। और फिर, उन्हीं फावड़ों की चोट ने धरती की सतह से पच्चीस फुट नीचे छिपे एक गर्त के तल को भेद दिया। वहां उन्हें एक के भीतर एक, अत्यंत सावधानी से रखे गए मिट्टी के बड़े पात्र प्राप्त हुए।

और उन पात्रों के भीतर-दो सौ छब्बीस अमूल्य कांस्य-प्रतिमाएं।

पद्मासन में विराजमान बुद्ध। खड़े हुए बोधिसत्व। वरद-मुद्रा में करुणा बरसाती तारा। लघु-स्तूप। अनुष्ठान की घण्टियां। तिरानवे प्रतिमाओं पर नौवीं से बारहवीं शताब्दी के पाल नरेशों-देवपाल, राज्यपाल, महिपाल, विग्रहपाल- के नाम उत्कीर्ण थे। वे प्रतिमाएं कला और शिल्प की दृष्टि में इतनी उत्कृष्ट और जीवन्त थीं कि जो पुरातत्वविद् उन्हें अपने हाथों में ले रहे थे, वे विस्मय से बैठकर केवल उन्हें एकटक निहारने के अतिरिक्त और कुछ न कर सके।

इतिहास को उस मनुष्य का वास्तविक नाम ज्ञात नहीं है जिसने इन प्रतिमाओं को बनाया या जिसने इनको धरती को सौंपने का निर्णय लिया था। किसी शिलालेख पर उसका नाम नहीं। किसी वृत्तांत में उसके देहावसान का उल्लेख नहीं।

तथापि, वह अनाम शिल्पी प्रत्येक कांस्य-प्रतिमा के प्रत्येक उत्कीर्ण शिलालेख में आज भी जीवित है। उन मूर्तियों को लपेटने की उस सचेत और कोमल सावधानी में जीवित है। भूमि के उस पच्चीस

फुट के सटीक स्तर में जीवित है- इतनी गहराई कि विपत्ति के समय सुरक्षित रह सकें, और इतनी उथली कि शताब्दियों बाद एक दृढ़ संकल्प उन्हें पुनः खोज निकाले।

वह यह नहीं जानता था कि जो लोग इन मूर्तियों को पुनः सूर्य के प्रकाश में लाएंगे, वे पुनर्जीवित महाविहार के भिक्षु नहीं, लोहे के औजार और सरकारी पत्र लिए हुए पुरातत्वविद् होंगे। किन्तु वह जो जानता था, वह इससे कहीं अधिक सरल और शाश्वत सत्य था-

कि यह धरती अत्यंत धैर्यवान है।

कि कला और सौन्दर्य का जीवन पाशविक हिंसा से कहीं अधिक दीर्घायु होता है।

और कि सर्वनाश की सबसे काली घड़ियों में भी- अपने धरोहर का संरक्षण करना ही मनुष्य का सबसे परम धर्म है।

और वह यथार्थतः सत्य सिद्ध हुआ।

- डॉ. प्रांशु समदर्शी

(सह-आचार्य)

नालंदा विश्वविद्यालय, बिहार

इंटरनेशनल स्कूल

तो मसला ये है साहिबान कि बड़ी मन्तों से पैदा हुई हमारी औलाद को हमने सोचा कि वर्ल्ड सिटीजन बनाया जाए ताकि हमारा बच्चा इंटरनेशनल लेवल की काबिलियत हासिल कर सके। इंटरनेशनल होने के लिये दो ही विकल्प हैं या तो इंसान के पास बाप द्वारा छोड़ी गई खूब इफरात अमेरिकी डॉलर हो जो कि इंटरनेशनल करेंसी है या फिर इंटरनेशनल लेवल की पढ़ाई-लिखाई की काबिलियत हो जो कि इंटरनेशनल स्कूल में पढ़कर ही मिल सकती है।

यही सब सोच कर हम दर्जा एक में ही अपनी बेटी का नाम लिखाने शहर के एक इंटरनेशनल स्कूल में पहुंचे, जो कि हमारे घर से काफी दूर था। पहले तो गेट पर तैनात बाउंसर टाइप संतरी ने हर तरह से मेटल डिटेक्टर लगाकर जांच की और हमें सख्ती से ढेर सारे इंस्ट्रक्शन दिए और यह जतलाया कि हमें अंदर जाने दे रहे हैं तो बहुत बड़ा एहसान कर रहे हैं। संतरी ने खुद को सिक्योरिटी आफिसर बताया मुझे वार्निंग देते हुए कहा -

"यहां पर चप्पे-चप्पे पर कैमरे लगे हैं। हर चीज की रिकार्डिंग और मानीटरिंग हो रही है। मोबाइल का इस्तेमाल आप सिर्फ फीस पेमेंट के लिये कर सकते हैं। स्कूल में कहीं भी फोटो खींचने, रिकार्डिंग करने या किसी बाहरी को काल करना हर्गिज अलाउड नहीं है। इसलिये कोई गलती या मिस एडवेंचर करने की कोशिश मत करिएगा। हर रूल्स और इंस्ट्रक्शन को फॉलो करना होगा, वरना हम स्कूल के अंदर कोई भी एक्शन ले सकते हैं और किसी भी लेवल तक जा सकते हैं। हमें पूरी अथॉरिटी है। सो बी केयरफुल"।

उनकी धमकी-चेतावनी से सहमे हुए हम पति-पत्नी और बिटिया स्कूल के अंदर पहुंचे। वहां कई हट्टे-कट्टे बाउंसरों और लेडी कमांडो की भांति महिलाओं की पूछताछ और जांच पड़ताल से गुजरते हुए हम एडमिशन रूम में पहुंचे। वहां पर सबसे पहले बैठी महिला ने कहा-

"आप पहले हमारे स्कूल का ऐप डाउनलोड कर लीजिये। उसे अपने यूआआई एकाउंट से कनेक्ट कर लीजिये। हमारा स्कूल बहुत हाई स्टैंडर्ड का है। यहां बहुत से लोग एडमिशन की क्वेरी के लिये आते हैं। सबकी हैसियत नहीं होती यहां स्कूल में एडमिशन

लेने की। और हम ऐसे किसी ऐरे-गैरे को एडमिशन भी नहीं दे देते।

उनकी बात से मुझे बहुत ठेस पहुंची कि यह मुंह पर ही मुझे ऐरा-गैरा कह रही है। फिर भी अपना संशय दूर करने के लिये मैंने उसके मंतव्य को कन्फर्म करना चाहा और पूछा -

"क्या मतलब है आपका"?

उसने कहा

"हमारे स्कूल में कुछ भी फ्री नहीं है। यहां तक की क्वेरी भी नहीं। अगर डिटेल में आपको स्कूल और अपने बच्चे के सेशन के बारे में जानना-समझना है तो छह सौ रुपये पेमेंट करने होंगे। तब एक एकजीक्यूटिव पंद्रह मिनट का टाइम आपको देगा। उतने टाइम में जो भी आप स्कूल से रिलेटेड जानना-पूछना चाहें तो हर किस्म की क्वेरी कर सकते हैं"।

"उसी में एडमिशन कंफर्म हो जायेगा। या कोई फार्म वगैरह भी भरना पड़ेगा" मैंने अपनी जिज्ञासा रखी?

"क्वेरी सेशन में जब आप डिसाइड कर लेंगे कि एडमिशन लेना है आपको रजिस्ट्रेशन कराना पड़ेगा। रजिस्ट्रेशन के लिये क्या-क्या डाक्यूमेंट लगेंगे यह आपको हमारा एकजीक्यूटिव बता देगा। आपको रजिस्ट्रेशन की एक हजार रुपये फीस देनी होगी। फीस कंफर्मेशन होने के बाद हमारे एप्प पर आपको डाक्यूमेंट्स अपलोड करने होंगे। आप जब डाक्यूमेंट्स अपलोड कर देंगे तब हमारा ऑफिस डिसाइड करेगा कि आपको स्कूल का एडमिशन फार्म दिया जाए या नहीं।

जी पढ़ना मुझे नहीं है बल्कि मेरी बच्ची को है। वह तो अभी पढ़ने की पहली दहलीज पर है। अभी से उसे क्या डिसाइड करेंगे " मैंने अपनी बात रखी।

उसने मुझे घूरा और फिर कड़क स्वर में कहा-

"मैंने पहले ही कहा था कि हम ऐसे ही किसी ऐरे-गैरे को एडमिशन नहीं देते स्कूल में। हमारी एलीट खराब हो जाएगी। हमारी जेंद्री की साख खराब हो जाएगी। हम पहले बैकग्राउंड चेक करेंगे बच्चे का और आपका भी। आपका बच्चा एलिजिबल हुआ तो भी

एडमिशन की कोई गारंटी नहीं है। आखिर एलीट और जेंट्री का भी मामला है ये"।

अपनी हैसियत और आत्मसम्मान की खिल्ली उड़ते हुए देखकर मैं दुःखी तो हुआ मगर औलाद की बेहतरी के लिये कड़वा घूंट पीते हुए मैंने इसे भी बरदाश्त कर लिया।

फीस भुगतान एवं डाक्यूमेंट अपलोड के बाद हमें कहा गया कि हम स्कूल की कैंटीन में निर्णय का इंतजार करें। हम तीनों लोग स्कूल की कैंटीन में गए और इंतजार करने लगे तो हमें बताया गया कि कैंटीन में बिना खाने-पीने का आर्डर दिए यूं ही टाइमपास करने की अनुमति नहीं है। इसके अलावा यह भी ताकीद की गयी कि एक बार आर्डर सर्व हो जाने के बाद अधिकतम एक घंटा ही बैठने की अनुमति है। यानी हर घंटे नया आर्डर। दो घण्टे के बाद मेरे मोबाइल पर काउंटर पर पहुंचने का बुलावा आया। कैंटीन छोड़ने पर मुझे साढ़े छह सौ रुपये खाने-पीने के भुगतान करने पड़े। वास्तव में यह टाइमपास का भुगतान था।

उसके बाद काउंटर पर पहुंचने पर एक अति आधुनिक महिला ने हमें बताया— "देखिये सर, हमने आपके डाक्यूमेंट्स और आपके सोशल बैकग्राउंड की एनालिसिस कर ली है। हमें आपसे सिमपैथी है। हमने डिसाइड किया है कि आपकी हेल्प की जा सकती है"।

उसकी बात सुनकर मेरे चेहरे पर चमक आ गई। मैंने पूछ ही लिया—

"यानी मेरी बच्ची को एडमिशन मिल जायेगा"।

"जी नहीं, एडमिशन अभी कन्फर्म नहीं हुआ है। हां आपको एडमिशन फार्म दे रहे हैं। स्टूडेंट का एक टेस्ट-कम-इंटरव्यू होगा। यह पंद्रह मिनट का होगा। उसी के बाद एडमिशन पर कोई फाइनल डिसीजन होगा। उसके लिये आपको स्कूल के एप्प पर एक हजार रुपये जमा करने होंगे। जल्दी डिसाइड कीजिये। हमारे पास बहुत से कंडीडेट इन वेटिंग हैं" उसने उकताहट भरे स्वर में कहा।

मरता क्या न करता। पैसे जमा किये और बच्ची को अंदर भेजा और अपने देवता-पितरों को सुमिरने लगा।

कोई आधे घण्टे बाद मेरी बच्ची चाकलेट लेकर हंसती-मुस्कराती हुई निकली। उस देखकर हमें तसल्ली हुई और उम्मीद बंधी कि अब शायद कुछ अच्छा हो।

बच्ची तो खुश नजर आ रही थी मगर थोड़ी देर बाद एक बाउंसर नुमा एकजीक्यूटिव हमारे पास आया और मुझे एक किनारे ले जाते हुये बोला—

"आपके लिये एक गुड़ न्यूज़ है। लेकिन एडमिशन में अभी भी एक प्रॉब्लम है"।

उसकी बात सुनकर मेरा दिल धक्क से हो गया। उसने मेरे डर को भांपते हुए कहा—

"देखिए आपकी बच्ची पढ़ने में तो ठीक है। वह हमारे स्कूल में पढ़ने के लिये तो एलिजिबल है लेकिन प्रॉब्लम यह है कि ये एक प्योर इंटरनेशनल स्कूल है। यहां प्योर और अमेरिकन एक्सेंट की इंग्लिश बोली जाती है। जो कि आपकी बच्ची को नहीं आती। इंग्लिश कल्चर, मैनर्स, एटीकेट भी सिखाने पड़ेंगे आपकी बच्ची को। तभी वह क्लास में बाकी बच्चों के साथ बैठ पाएगी। हम उसे ऐसे ही क्लास में बैठने की परमिशन नहीं दे सकते नहीं तो हमारे स्कूल की जेंट्री खराब हो जाएगी। मेरी बात समझे आप?"

मैंने उसकी बात को समझने की कोशिश की। कुछ-कुछ समझा भी लेकिन अंत में हथियार डालते हुए मैंने कहा—

"आप कहना क्या चाहते हैं। जो कहना है साफ कहिए। अब मेरी बच्ची का दाखिला इस स्कूल में हो सकता है या नहीं। और अगर हो सकता है तो मुझे और क्या करना होगा?"

उसके चेहरे की रंगत बदल गई और उसने मुझे ध्यान से देखते हुए कहा—

"एडमिशन हो सकता है आपकी बच्ची का। वह एलिजिबल है। मगर क्लास में बाकी बच्चों के साथ बराबरी पर लाने के लिये हमें उसको एक स्पेशल प्रिपेरेशन कोर्स कराना पड़ेगा। हम आपके जैसे बैकग्राउंड वाले बच्चों को यह कोर्स करवा कर ही क्लास में बाकी बच्चों के साथ बैठाते हैं ताकि हमारा इंटरनेशनल स्टैंडर्ड कम्प्रोमाइज न हो। सो आपकी बच्ची को एक महीने प्रिपेरी क्लास में ट्रेड करेंगे फिर उसे एडमिशन देंगे अपनी एक्जुअल क्लास में। उसके लिये आपको दस हजार रुपये डिपोजिट करने होंगे एप्प से। और हां एक बात का ख्याल रखियेगा यह दस हजार रुपये आपके मेन कोर्स की फीस से अलग होंगे" उसने सधे हुए स्वर में कहा।

मुझे कोई खास हैरानी नहीं हुई। मैं ऐसे ही कुछ और रुपयों की पेनॉल्टी की उम्मीद कर ही रहा था और हकीकतन वही हुआ भी।

"तो फिर मेन कोर्स फीस क्या होगी" मैंने भी आर-पार लड़ने की नीयत से पूछा।

"एनुअल ट्यूशन फीस पचहत्तर हजार, पैंतीस, पच्चीस और पंद्रह हजार की तीन तिमाही किश्तों में देनी होगी। बुक्स के बीस हजार, यूनिफार्म का पंद्रह हजार और ट्रांसपोर्ट का सालाना पचास हजार। स्कूल टाइम एट थर्टी से थ्री थर्टी रहेगा।

सब जोड़ गांठ कर मैंने सोचा कि इतने में तो मेरा कचमूर निकल जायेगा। फिर भी हिम्मत करके मैंने उससे पूछा—

"बस इतना ही या और कोई फीस मुझे देनी होगी"?

"जी नहीं। एक रुपये की एक्स्ट्रा फीस आपको नहीं देनी है। हम दूसरे स्कूलों की तरह कोई हिडेन फीस नहीं लेते। फीस आपको और कुछ नहीं देनी है" उसने मुझे आश्वस्त किया।

उसकी बात सुनकर मैंने चैन की सांस ली।

"मगर पचास हजार रुपये का डोनेशन देना होगा। यह स्कूल का डेवलपमेंट चार्ज है। हमें स्टेटस मेंटेन करनी होती है और आपका

बच्चा इस स्कूल में पढ़ेगा तो आपकी भी तो स्टेटस बढ़ेगी ना। डोनेशन आपको वन टाइम और एडवांस देना पड़ेगा। आखिर यह इंटरनेशनल स्कूल है एलीट क्लास के लिये है। ऐसे-गैरों के लिये नहीं। यू अंडरस्टैंड व्हाट आई मीन टू से"।

ये कहकर वह मेरी तरफ देखकर कुटिलता से हंसा। उसकी खर्चीली हंसी देखकर मेरा रोने का दिल करने लगा।

— डॉ. प्रांशु समदर्शी

(बलरामपुर, उत्तर प्रदेश)

भारतीय ज्ञान परंपरा : वर्तमान परिदृश्य

विद्या नाम नरस्य भूषणम्। विद्या राजसु पूज्यते।
विद्या धनं सर्वधनप्रधानं। विद्याहीनः पशुभिः समानः ॥

भारतीय ज्ञान परंपरा अत्यंत प्राचीन, बहुआयामी और समृद्ध परंपरा है। जिसमें हजारों ऋषि-मुनियों के दर्शन, ज्ञान, संस्कृति, सभ्यता, आस्था, मूल्य, आदर्श, कर्म, भक्ति एवं अनंत जीवंत भावनाएं विद्यमान हैं। भारतीय ज्ञान वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों, लोककथाओं और पारंपरिक प्रथाओं से सर्वदा समृद्ध रहा है जो शासन, नैतिकता, पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक संरचना और आध्यात्मिक ज्ञान सहित विभिन्न विषयों को सम्मिलित किए हुए है। ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, और अथर्ववेद यह केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं हैं, बल्कि अपनी समग्रता में दर्शन, साहित्य, कला, विज्ञान, गणित, चिकित्सा, राजनीति, समाजशास्त्र और पर्यावरण को समाहित किए हुए हैं। महाभारत, रामायण, मनुस्मृति, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, चरक और सुश्रुत संहिता जैसे ग्रंथों ने राजनीति, समाजशास्त्र, अर्थव्यवस्था और चिकित्सा विज्ञान में अद्वितीय योगदान दिया है और आज भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका में लगातार बने हुए हैं। इन ग्रंथों की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इनकी पुरातनता में ही नवीनता निहित है। भारतीय समाज व्यवस्था-वर्ण, आश्रम, जाति, परिवार, ग्राम व्यवस्था, धर्म और कर्तव्य जैसे सिद्धांतों पर आधारित रही है और पुरातन काल से लेकर आज तक समाज के संतुलन एवं संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

भारतीय ज्ञान परंपरा का उद्भव वैदिक युग से माना जाता है। भारतीय संस्कृति की ज्ञान-संपदा का मूल आधार वेद, उपनिषद्, महाकाव्य, पुराण, शास्त्र और दर्शन है। इस परंपरा का विकास केवल धार्मिक अनुशीलन तक सीमित नहीं है बल्कि यह परंपरा जीवन और ब्रह्माण्ड के प्रत्येक पक्ष का वैज्ञानिक व दार्शनिक रूप से विवेचन है। हमारी भारतीय ज्ञान की नींव वेद है, जिसका अर्थ है 'ज्ञान'। ऋग्वेद ब्रह्माण्ड, प्रकृति, अग्नि, वायु और जल जैसे तत्वों की स्तुति है। यजुर्वेद में यज्ञ की पद्धति, कर्म और अनुशासन का विवेचन है। सामवेद में संगीत और मंत्रोच्चारण की विशिष्ट शैली है, जिसे भारतीय संगीत की मूल धारा भी कहा जाता है। अथर्ववेद में औषधि-विज्ञान, चिकित्सा, खगोल और सामाजिक जीवन से जुड़े विषय हैं। इस प्रकार भारतीय ज्ञान परंपरा में चारों वेदों की अपनी अलग-अलग भूमिका है। प्राचीन भारत की शिक्षा प्रणाली गुरुकुल परंपरा पर आधारित रही है। जहां शिक्षा का उद्देश्य केवल अक्षरज्ञान

न होकर, शिक्षा चारित्रिक निर्माण, अनुशासन और जीवनोपयोगी का साधन रहा है। तैत्तिरीय उपनिषद में शिक्षा के उद्देश्य के संदर्भ में कहा गया है-

"मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव।"

अर्थात् माता, पिता और आचार्य का आदर करो। भक्तिकाल में कबीर, तुलसी, सूर, मीरा, नानक जैसे संतों ने ज्ञान को सरल एवं आम बोल-चाल की भाषा में समाज के समक्ष प्रस्तुत किया। आधुनिक युग में भारतीय ज्ञान परंपरा का पुनर्परिभाषण हुआ। आधुनिक समाजसुधारक राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी और अरविंदो जैसे महानुभावों ने प्राचीन ज्ञान को आधुनिक मूल्यों के साथ जोड़ने का सार्थक प्रयास किया। स्वामी विवेकानंद ने शिकागो धर्मसभा (1893) में भारतीय ज्ञान को वैश्विक स्तर पर पूरे विश्व के सामने प्रस्तुत किया। गांधीजी ने सत्य, अहिंसा और स्वदेशी सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए भारतीय परंपरा को सामाजिक-राजनीतिक जीवन से जोड़ कर समाज के सामने एक अनूठा उदाहरण पेश किया। शिक्षाविद् डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन भारतीय ज्ञान परंपरा के विषय में लिखते हैं "भारतीय दर्शन का उद्देश्य केवल तर्क-वितर्क नहीं है, बल्कि जीवन के लिए मार्गदर्शन है। यह हमें सत्य, करुणा और समरसता की ओर ले जाता है।" भारतीय ज्ञान परंपरा एक निरंतर विकासशील प्रक्रिया रही है जो वैदिक युग से अपना सफ़र तय करती हुई आधुनिक युग तक पहुंची है। इसका मूल कारण है - समग्रता, जीवनोपयोगिता और सार्वभौमिकता।

प्राचीन काल से ही भारतीय ज्ञान परंपरा का केन्द्रीय स्वर "सत्य की खोज" और सर्वजन हिताय" रहा है। ऋग्वेद में कहा गया है-

"आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः" (ऋग्वेद 1.89.1)

अर्थात् सभी दिशाओं से हम सभी के आस-पास कल्याणकारी विचार आएँ। भारत अपने भाव, राग और ताल द्वारा स्पंदन उत्पन्न कर संपूर्ण विश्व को मानवता, भाईचारा और संवेदना का पारिवारिक संदेश देता आया है, और आज भी निरंतर इसके लिए प्रयत्नशील है। भारत अपनी जीवंत अमूर्त विरासत जो की वैश्विक सभ्यता की विरासत है, इसके माध्यम से विभिन्न राष्ट्रों, समाजों तथा संस्कृतियों के बीच संस्कृति एवं सभ्यता का एक संवाद बनाने की प्रक्रिया

की शुरुआत की गई है। भारत जन्मभूमि के संदर्भ में कहा जाता है "प्राचीन भारतीय समृद्धि और समरसता के मूल में प्राकृतिक संपदा, कृषि और गोवंश थे। प्राकृतिक संपदा के रूप में हमारे पास नदियों के अक्षय भंडार के रूप में शुद्ध और पवित्र जल स्रोत थे। हिमालय और उष्ण कटिबंधीय वनों में प्राणी और वनस्पति की जैव विविधता वाली जलवायु थी। मसलन मामूली सी कोशिश आजीविका के लायक पौष्टिक खाद्य सामग्री उपलब्ध करा देती थी। इसलिए नदियों के किनारों और वनप्रांतरों में मानव सभ्यता और भारतीय संस्कृति विकसित हुई।"² आहार की उपलब्धता सुलभ हुई तो सृजन और चिंतन के पुरोधा सृष्टि के रहस्यों की तलाश में जुट गए। आर्थिक संसाधनों को समृद्ध बनाने के लिए ऋषि मुनियों ने नए-नए प्रयोग किए।

आज जब हम 21 वीं सदी में खड़े हैं, जहां वैश्वीकरण, तकनीकी विकास और पश्चिमी ज्ञान-दृष्टि के बीच अपनी परंपरा को पुनः समझना और वर्तमान सन्दर्भों में उसका उपयोग करना एक अनिवार्य काम हो गया है। आज के संदर्भ में भारतीय ज्ञान परंपरा की प्रासंगिकता, शासन, शिक्षा, सतत् विकास और समरसता जैसे क्षेत्रों में विशेष अध्ययन और विश्लेषण का विषय बनी हुई है। मानव जीवन में असंतुलन, मानसिक तनाव, पर्यावरणीय संकट और सांस्कृतिक पहचान का संकट बढ़ रहा है। इसे ध्यान में रखते हुए भारतीय ज्ञान परंपरा एक नयी राह लेकर विश्व जगत के समक्ष उभर कर आ रही है। भारतीय ज्ञान परंपरा हजारों वर्ष पुरानी है। इस ज्ञान परंपरा में आधुनिक विज्ञान प्रबंधन सहित सभी क्षेत्रों के लिए अद्भुत खजाना है। भारतीय दृष्टिकोण से ही ज्ञान परंपरा का अध्ययन कर हम एक बार फिर विश्व गुरु बनने की परिकल्पना को पूरा कर सकते हैं। भारतीय आज भी अपनी परंपरा और मूल्यों से जुड़े हुए है। विभिन्न संस्कृति और परंपरा के लोगों के बीच की घनिष्ठता ने भारत को पूरे विश्व के समक्ष एक ऐसा देश बनाया है जिसमें मानव जीवन के लिए भाव, राग और ताल तीनों समाहित है। इस संदर्भ में स्वामी विवेकानंद लिखते हैं - "भारतीय ज्ञान परंपरा की सबसे बड़ी देन है आत्मा और ब्रह्मा की एकता की घोषणा। यही संदेश पूरे विश्व को शांति और भाईचारे की ओर ले जा सकता है।"³

भारतीय ज्ञान परंपरा केवल विचार-प्रणाली न होकर एक समग्र जीवन-दृष्टि है, जो व्यक्ति, समाज और विश्व के कल्याण के लिए विकसित हुई है। वैदिक ऋषियों से लेकर आधुनिक चिंतकों तक इस परंपरा का स्वर समग्रता, सत्य, धर्म और मानवता रहा है। इस परंपरा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह जीवन को खंड-खंड में बांटकर नहीं देखती, बल्कि एक समग्र इकाई के रूप में देखने के लिए बाध्य है। ऋग्वेद में कहा गया है-

"ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदः पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।" (ईशावास्य उपनिषद्)

अर्थात् यह जगत पूर्ण है और समस्त सृष्टि उसी पूर्णता का अंश है। यह दृष्टिकोण दर्शाता है कि भारतीय चिंतन में आध्यात्मिकता, विज्ञान, कला और नैतिकता अलग-अलग न होकर एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। पंडित जवाहरलाल नेहरू भारतीय ज्ञान परंपरा की एकात्मक भावना के संबंध में अपनी पुस्तक में लिखते हैं "भारत की संस्कृति और ज्ञान परंपरा निरंतरता और सहिष्णुता की प्रतीक है। इसमें विविधताओं को एकता में बांधने की अद्भुत क्षमता है।"⁴

वर्तमान युग में जब मानव सभ्यता तकनीकी प्रगति, उपभोक्तावाद और वैश्वीकरण की और तीव्र गति से अग्रसर है, तो वहीं मानव मानसिक तनाव, पर्यावरणीय संकट, सांस्कृतिक विघटन और मूल्यहीनता आदि चुनौतियों से भी जूझ रहा है, जिसका सामाधान भारतीय ज्ञान परंपरा शिक्षा में समावेश, अनुवाद और डिजिटलीकरण, स्थानीय भाषाओं को प्रोत्साहन, आध्यात्मिक पुनर्जागरण, सांस्कृतिक चेतना का विकास इत्यादि माध्यमों के द्वारा प्रशस्त करती है। भारत ने 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसे सार्वभौमिक सिद्धांतों के माध्यम से यह स्पष्ट किया कि भारतीय ज्ञान दृष्टिकोण संकीर्ण न होकर समस्त मानवता और प्रकृति के कल्याण की तरफ उन्मुख है। योग और आयुर्वेद की वैश्विक स्वीकृति, सतत् विकास, प्रकृति-संरक्षण की चेतना तथा समरसता पर आधारित सामाजिक मूल्य इस परंपरा की विशेष देन हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020) के अंतर्गत भारतीय ज्ञान परंपरा को पुनः शिक्षा और शोध के केन्द्र में लाने का प्रयास हो रहा है। यह न केवल भारत की सांस्कृतिक धरोहर को पुनर्जीवित करेगा, बल्कि आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के साथ समन्वय स्थापित कर एक संतुलित और समृद्ध विश्व व्यवस्था की दिशा में अग्रसर भी होगा। विश्वकवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर जी का मानना है कि "भारतीय ज्ञान परंपरा में प्रकृति, कला और मानवीय मूल्यों का जो स्थान है। वही आधुनिक शिक्षा को सम्पूर्ण बनाता है।"⁵ इन ज्ञान प्रणालियों ने भारत की पहचान को एक नया आकार प्रदान किया है और भारत में विविधता में एकता की अवधारणा को सशक्त किया है।

भारतीय शिक्षा लंबे समय तक पश्चिमी ढांचे पर आधारित रही है, जिससे हमारी पारंपरिक ज्ञान प्रणाली बहुत उपेक्षित हुई। संस्कृत एवं प्राचीन भाषाओं की उपेक्षा ने ग्रंथों के अध्ययन को कठिन बना दिया। आधुनिक शोध में भारतीय ज्ञान के वैज्ञानिक पहलुओं पर पर्याप्त ध्यान भी नहीं दिया गया। पश्चिमी जीवनशैली और उपभोक्तावाद ने भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को कमजोर बनाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जिसकी वजह से आज की अधिकतर युवा पीढ़ी अपने पारंपरिक ज्ञान से वंचित रह गई है। परन्तु फिर भी वर्तमान समय

में 'लोकल से ग्लोबल' की दिशा में भारतीय ज्ञान को प्रस्तुत करने के लिए भारत देश लगातार संघर्षरत है। आज राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020) के अंतर्गत भारतीय ज्ञान परंपरा को शिक्षा प्रणाली में समाहित किया जा रहा है। संस्कृत, वेद, उपनिषद्, नाट्यशास्त्र और आयुर्वेद जैसे विषयों को पुनः शोध के केंद्र में लाने के लिए भी प्रयासरत है। डिजिटलाइजेशन के माध्यम से प्राचीन ग्रंथों को अधिक सुलभ बनाने का कार्य चल रहा है। योग और आयुर्वेद को तो वैश्विक स्तर पर मान्यता भी प्राप्त हो गई है। आज के तनावपूर्ण दौर में योग-ध्यान और आयुर्वेद एक ऐसी चिकित्सा पद्धति है जो मानव-जीवन को संतुलन प्रदान करती है। आज नए-नए आधुनिक चिकित्सा प्रणालियों में भी आयुर्वेद और प्राकृतिक चिकित्सा का उपयोग बढ़ सा गया है। सतत विकास और पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा वेदों और उपनिषदों की 'प्रकृति-मानव एकता' से ली गयी है। इसके साथ ही वैश्वीकरण और भौतिकवाद की दौड़ में भारतीय दर्शन की 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' जैसे सूत्र आज मार्गदर्शक बने हुए हैं। हमें जीवन मूल्यों, पारिवारिक संरचना और सामाजिक समरसता की शिक्षा भारतीय ज्ञान परंपरा से ही मिलती है। भारतीय कला, संगीत, नाट्यशास्त्र और साहित्य की वैश्विक प्रस्तुति सांस्कृतिक पहचान को ओर भी मजबूत करती है। आज भारतीय ज्ञान परंपरा को 'सॉफ्ट पावर' के रूप में देखा जा रहा है, जो विश्व में भारत की पहचान और नेतृत्व को सुदृढ़ करने में मददगार है।

आजकल यह चर्चा का विषय बना हुआ है कि हमारे रीति-रिवाज, परंपराएं तथा संस्कृति से छेड़-छाड़ की जा रही हैं। हो सकता है कि जो लोग ऐसी बातें करते हैं उनके मन में कुछ आशंकाएं होंगी, जिसके आधार पर भविष्य में उन्हें भारतीय संस्कृति की उतनी अच्छी स्थिति दिखाई नहीं दे रही हैं। बड़े-बुजुर्ग भी इस बात से चिंतित हैं। उनका मानना है कि आज का युवा वर्ग अपने धर्म, रीति-रिवाज के प्रति ज्यादा रूचि नहीं ले रहा है, क्योंकि पाश्चात्य संस्कृति उसपर हावी हो चुकी है। लगातार समाज अंधेरे में जा रहा है और युवाओं में अपने अतीत व संस्कृति के प्रति कोई सम्मान की भावना नहीं बची है। परन्तु वहीं भारतीय संस्कृति की एक खूबसूरत बात यह भी है कि वह हजारों वर्षों के बाद भी वर्तमान समय में अपने मूल स्वरूप में जीवित है। अगर हम अन्य देशों की संस्कृति की बात करें जैसे मिस्र, सीरिया, यूनान और रोम इत्यादि अपने मूल स्वरूप से लगभग विस्मृत हो चुके हैं। लेकिन भारतीय संस्कृति की सहिष्णु प्रकृति ने उन्हें दीर्घ आयु और स्थायित्व प्रदान किया है। संसार के किसी भी संस्कृति में इतनी सहनशीलता नहीं है जितनी भारतीय संस्कृति में देखने को मिलती है।

भारतीय संस्कृति समय की मांग के अनुसार निरंतर रूपांतरित होती रही है। भारतीय संस्कृति के प्राचीनतम काल से ही सुदृढ़ होने के अनेकों संकेत हमें मिलते रहे हैं। जो भारतीय संस्कृति की व्यापकता तथा चरम विस्तार को दर्शाता है। प्राचीन मान्यताओं के अंतर्गत ऐतिहासिक, पौराणिक, आध्यात्मिक मान्यताओं पर नज़र डाले तो पता चलता है कि हमारी संस्कृति में कहीं न कहीं आज भी इनकी जड़ें ज्यों की त्यों बनी हुई हैं। हम देखते हैं कि प्राचीन काल से ही प्रकृति की पूजा, जंगल एवं वृक्ष की पूजा इत्यादि हमारे संस्कृति के अभिन्न अंग बने हुए हैं जो आज भी उसी रूप में सम्पूर्ण देश में व्याप्त है। चाहे वह वट वृक्ष, पीपल, तुलसी का पौधा हो या फिर छठ पूजा जैसे अनुष्ठान में भगवान सूर्य की पूजा की बात हो। देव पूजा, प्रकृति पूजा, पशु पूजा, पक्षियों के प्रति सचेतता, पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता तथा पशुओं के प्रति सोच इत्यादि हमारी संस्कृति की सजीवता और सहजता को दर्शाता है। यह सत्य हमारी संस्कृति की रीढ़ है जो हजारों वर्षों से इन मान्यताओं व परंपराओं के आधार पर आज भी उपस्थित है। मनुष्यों की स्वाभाविक प्रवृत्तियों को ध्यान में रखकर हमारे पूर्वजों ने त्योहार, पर्व, उत्सव, मेला, यात्रा इत्यादि के आयोजन की परंपरा शुरू की थी। मौर्य, चोल, मुगल और ब्रिटिश साम्राज्य के समय तक भारत हमेशा से ही अपनी अतिथि परंपरा के लिए मशहूर रहा है। इस देश ने 'अतिथि देवो भवः' के विचार को सम्पूर्ण विश्व की जनता से रू-ब-रू करवाया है। इसके अतिरिक्त भारतीय ज्ञान परंपरा में प्रकृति, प्राकृतिक संसाधन व मानव जीवन को भी सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। इनके संरक्षण, विकास और प्रयोग के द्वारा जीवन को सरल व सहज बनाने का प्रयत्न भारतीय ज्ञानी कर रहे हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा की एक उपलब्धि गौत्र व्यवस्था में भी देखने को मिलती है। वंश परंपरा को ध्यान में रखकर काफी वर्षों से गौत्र का निर्धारण हो रहा है, या यों कहें कि यह व्यवस्था रक्त संबंधों व अनुवांशिक प्रणाली के आधार पर निर्मित है। आज के समय में भी विवाह संबंध स्थापित करने में रक्त की महत्त्वपूर्ण भूमिका देखने को मिलती है।

आधुनिक भारतीय परंपरा संक्रमण काल के दौर से गुजर रही है। इस संक्रमण काल में प्राचीन परंपरावादियों, आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था एवं मूल्यों में लगातार संघर्ष चल रहा है। भारतीय संस्कृति व परंपरा जिसमें 1400 बोलियों तथा औपचारिक रूप से मान्यता प्राप्त 22 भाषाएं, विविध धर्म, कला, वस्तु कला, साहित्य, संगीत, नृत्य की विभिन्न शैलियां विविधता में एकता के अखंडित स्वरूप वाले सबसे बड़े प्रजातांत्रिक देश का प्रतिनिधित्व कर रही है। भारतीय ज्ञान-विज्ञान की यह सनातन परंपरा अनादिकाल से है। चाहे वह तक्षशिला, नालंदा या विक्रमशिला विश्वविद्यालय हो, सभी ज्ञान के केन्द्रों से यह परंपरा

जुड़ी हुई है। यही कारण है कि वैदिक काल से ही भारत की ज्ञान परंपरा उच्च स्तरीय कोटि की मानी गई है। भारत अपने प्राचीन ज्ञान परंपराओं जैसे कला, संस्कृति, दर्शन, समाज शास्त्र, विज्ञान व प्रबंधन समेत विभिन्न क्षेत्रों में अपनी व्यापक दृष्टिकोण रखता है। हम इस दृष्टिकोण को शिक्षा के क्षेत्र में आधार बनाकर अपने राष्ट्र के विकास की प्रक्रिया को और भी मजबूत बना सकते हैं। इसमें कोई दो राय नहीं है कि वेदों से लेकर आधुनिक शिक्षा तक भारत की प्राणवायु धर्म है, और यहीं हमारी चेतना का मूल एवं सामाजिक संस्कृति का निर्माणकर्ता भी है। भारत के अलावा आध्यात्मिक अनुभवों और अंतः की यात्रा के व्यापक अनुभवों वाला दूसरा देश पूरी दुनिया में नहीं है। भारत की यह सत्य ही उसकी शक्ति है। स्वामी विवेकानंद इस संदर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं "भारतीय ज्ञान परंपरा की आत्मा वेदांत और अध्यात्म है। यदि भारत को फिर से विश्वगुरु बनना है तो उसे अपने प्राचीन ज्ञान को आधुनिक विज्ञान के साथ जोड़ना होगा।"⁶

निष्कर्षतः वर्तमान परिदृश्य में भारतीय ज्ञान परंपरा केवल अतीत की धरोहर नहीं है, बल्कि आज और भविष्य के लिए मार्गदर्शक है। यह हमें विज्ञान, अध्यात्म, संस्कृति और जीवन मूल्यों को संतुलित करने का दृष्टिकोण प्रदान करती है। भारतीय ज्ञान परंपरा विश्व की सर्वाधिक प्राचीन और समृद्ध परंपराओं में गिनी जाती है। इसमें निहित ज्ञान-विज्ञान केवल शास्त्रों, वेदों, उपनिषदों, दर्शन, साहित्य, कला, संगीत, योग और आयुर्वेद तक सीमित नहीं है, बल्कि यह जीवन के संपूर्ण आयामों को स्पर्श करती है। भारतीय मनीषियों ने ज्ञान को केवल बौद्धिक साधना न मानकर उसे जीवन-व्यवहार और लोककल्याण से जोड़कर देखा है। भारतीय ज्ञान परंपरा केवल अतीत का गौरव नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य का पथप्रदर्शक भी है। यह हमें समग्र दृष्टि, मानवीय मूल्य और सतत विकास का मार्ग प्रशस्त करती है।

आज के परिप्रेक्ष्य में यदि हम विचार करें तो यह परंपरा न केवल भारत की सांस्कृतिक अस्मिता का आधार है, बल्कि सम्पूर्ण विश्व के लिए जीवन और विकास की नयी दिशा प्रस्तुत करने में सक्षम है। इसीलिए आवश्यकता है कि हम अपने प्राचीन ज्ञान को आधुनिक विज्ञान और वैश्विक संदर्भों से जोड़कर उसे पुनर्जीवित करें, जिससे भारत पुनः 'विश्वगुरु' की परिकल्पना को बेहतर तरीके से सम्पूर्ण विश्व के समक्ष प्रस्तुत कर सकें। अतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य का मार्गदर्शन करने वाली जीवन-दृष्टि है। यह परंपरा आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी अपने उद्भव काल में थी और मानव समाज के सर्वांगीण विकास के लिए इसके अध्ययन और अनुशीलन की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक है। यही कारण है कि भारतीय ज्ञान परंपरा हर दृष्टिकोण से प्रासंगिक है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. भारतीय दर्शन, डॉ. एस राधाकृष्णन
2. दुनिया के साथ साझा होगी भारतीय ज्ञान परंपरा, प्रमोद भार्गव
3. The Complete Works of Swami Vivekananda, Swami Vivekanand. Advaita Ashrama, Kolkata.
4. भारत की खोज, पंडित जवाहरलाल नेहरू, 1946
5. The Philosophy of Education, Rabindranath Tagore
6. Complete Works of Swami Vivekananda, Swami Vivekanand

- नेहा श्रीवास्तव

(शोधार्थी)

हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

कृत्रिम बौद्धिकता और ब्रह्म का अंतर्संबंध

आज तकनीकी चुनौती के रूप में AI (Artificial Intelligence) अपना वर्चस्व सिद्ध कर रही है। स्मार्ट फ़ोन के रूप में बौद्धिकता के इर्द-गिर्द बेड़ियां जकड़ी जा चुकी हैं। अमूमन देखा जा रहा है कि प्रौद्योगिकी क्रांति के इस समय में शिशु से वृद्ध (सभी उम्र) इससे निरंतर चमत्कृत ही नहीं हो रही है अपितु स्मार्ट फ़ोन के रूप में कृत्रिम बौद्धिकता से जकड़ी जा चुकी हैं। निरंतर चमत्कार ही नहीं बल्कि इसे अत्यंत प्रभावशाली मानकर नर्सरी के बच्चों से लेकर रिसर्च स्कॉलर तक इसको उन्मुक्त हृदय से अपना रहे हैं। अपना भी चाहिए क्योंकि जीवन निरंतरता में आरामदायक तरीकों को खोज लेने की ही यात्रा है। सभ्यता के बीज में भी यही मंत्र है। आज 24 घंटे के दिन यदि कहीं कमी है तो केवल समय की, जिसका कारण और निवारण दोनों ही AI को माना जाए तो निरर्थक नहीं कहा जा सकता है।

AI के साथ Social Media अपनी अहम भूमिका का निर्वाह कर रहा आप कह सकते हैं कि AI और Social Media क्रमशः दो अलग प्लेटफॉर्म हैं, लेकिन जो कार्य AI कर रहा है वही काम Social Media या गूगल बाबा भी कर रहे हैं— सीधे तौर पर भ्रम-जाल की उत्पत्ति। आप रास्ता अब राहगीरों से नहीं पूछते चाहे GPS तंग गलियों में क्यों न भटका दे। बल्कि आप बात-बात पर खुद की बुद्धिमत्ता पर प्रश्न लगाते हैं या दूसरे को गलत सिद्ध करने के लिए गूगल-बाबा का हाथ थाम लेते हैं। बच्चों के school howe work में AI का साथ-अनूठा हो चला है। जहां Gen-Z या Gen Alpha ये मान बैठे हैं कि मां-पिता और गुरुजनों से अधिक ज्ञानी-प्रतापी गूगल बाबा हैं, ये मान बैठना गलत नहीं किसी भी व्यक्ति के पास इतना असीमित ज्ञान हो भी नहीं सकता, पर बाल-मन में अनुभवी की धारणा या माता-पिता के अनुभव से सीखने की क्षमता और संबंधों की आत्मीयता का भाव धराशाही हो चुका है। मूलरूप से आने वाले समय में सद्भाव पर AI ऐसा विकट प्रभाव छोड़ने वाला है जहां भाव-विहीन बालकों का समाज उत्पन्न हो जाएगा ये समाज आज के कॉरपरेट समय से बहुत आगे होगा : किसी का न कोई कर्तव्य और न ही अधिकार रह जाएगा क्योंकि अपनी जिम्मेदारियों की code feeding रोबोट में करके सभी से मुक्ति पाकर मनुष्य भ्रमित स्थिति में होगा। किंतु अधिकार के मद से निकल पाना मानव स्वभाव में नहीं और कर्तव्य के अभाव में अधिकारों की मांग करना संघर्षशील-द्वंद्व का कारण बनेगा। विध्वंस के पहाड़ पर बैठ कर

चूल्हे की रोटियों की मांग करना यही आने वाले समय की चुनौती रहेगी। समय स्वयं ये गवाही देता है कि युग कोई भी रहा हो संघर्ष और पूरकता दोनों रहे हैं। जैसे द्वंद्व समास 'द्वंद्व के साथ पूरकता' प्रदान करता है, यथा अंधियारा-उजाला, माता-पिता आदि। इसलिए जिस समय में सर्वाधिक संघर्ष रहा है उस युग में उतनी पूर्णता भी पाई है। AI के युग में भारतीय ज्ञान परंपरा पूरकता का ही द्योतक है। यदि मानवीय संवेदनाओं को और चूल्हे की रोटी को बचाए रखना है तो मानव मस्तिष्क की क्षमताओं को निष्क्रिय होने से बचाना ही मानव धर्म है।

Wikipedia के अनुसार "कृत्रिम बुद्धिमत्ता का इतिहास प्राचीन काल में, प्राणियों के मिथकों, कहानियों और अफवाहों के साथ शुरू हुआ, जिन्हें कुशल कारीगरों ने बुद्धि या चेतना से सम्पन्न किया था।" सन् 1941 से प्रारंभ AI सन् 1980-1987 में बूम के बाद 1993 से 2011 में AI Boom आया। 1927 जब जॉन मैकार्थी अमरीकी वैज्ञानिक ने सर्वप्रथम कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) शब्द का परिचय दिया तब से आज तक अपने उतार चढ़ाव के साथ आज AI ने अपना वर्चस्व स्थापित करने के साथ साथ आने वाले बुद्धिजीवियों के जीवन में निश्चित स्थान बना लिया है और लगभग मानव मस्तिष्क के limbic System और frontal Cortex के तालमेल और संतुलन को बेमेल कर दिया। मानव मस्तिष्क जो अद्भुत चेतना का आधार है; अगर उसका तालमेल बिगड़ता है तो निःसंदेह मानव-जीवन, मानव-मस्तिष्क, मानवीय-संवेदना, चैतन्य-रूप और जीवन के उद्देश्य से भटकाव की स्थिति बनती है। जिसका प्रभाव स्वतः ही दिखाई दे रहा है, युवा चेतना डिप्रेशन, स्ट्रेस, आत्महत्या, फेलियर अपने जीवन में उतार रहा है। से सभी नकरात्मक-विचारधारा का कारण और समाधान पूर्णता को लेकर आते हैं ये कहा जा चुका है कि समस्या और समाधान पूरक हैं और कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रारंभ मिथको, कहानियों और अफवाहों के साथ शुरू हुआ। सीधा-सा गणित है जो दिखाई नहीं दे रहा वह 'X' है जो नियम और सूत्रों के हल द्वारा पाया वह X की Power है, सिद्धान्त, सूत्र या नियम को apply करना आवश्यक है। ठीक इसी तरह से भारतीय ज्ञान परंपरा में जीवन जीने का सिद्धान्त, सूत्र और नियम मूलतः कहानियों, मिथकों के माध्यम से कहे गए हैं। राम-जीवन को मिथक कहें, कहानी कहें या ईश्वर कहें उससे किसी का अहित होने वाला नहीं है अहित तब हो सकता है जब राम-कथा के आदर्श-सूत्रों, जीवन जीने की कला

को मात्र ये कह कर नकार दिया जाए कि ये तो काल्पनिक, गल्प है या महाभारत में गुंथी कथाओं को निराधार आक्षेप से जोड़ कर गीता-मुक्ता की श्वेत-कांति पर कोयला पोत दिया जाए। इसके साथ ही वेद, उपनिषद् योग विद्या को नकारा कह कर आज का समय भविष्य का निर्माण खोखले धरातल पर करने का प्रयास करें तो यह असंभव है। संभव ही संभव को जन्म देता है या कह सकते हैं कि असंभव ही संभव का पूरक है। AI के फैक्टर को यदि जीवन में समानियोजित स्वरूप में न अपनाया गया तो चूल्हे की रोटी कभी नहीं पा सकते और चूल्हे की रोटी के बिना निर्माण असंभव है।

DR. Sweta Adatia Neuro Surgen मानव-मस्तिष्क की सम्पूर्ण प्रक्रिया पर कार्य करती हैं; वे यंत्रों के द्वारा मंत्र- उच्चारण, प्राणायाम, ध्यान आदि भातीय ज्ञान परंपरा से जुड़ी भारतीय जीवन शैली का मस्तिष्क पर पड़ने वाले प्रभाव और संबंध को सफलतापूर्वक मशीनों में कैद करती है। मस्तिष्क की प्रत्येक Micro energy पर ये सभी किस प्रकार से प्रभावशाली ढंग से अपना प्रभाव छोड़ते हैं, इसका सफल परिक्षण करती है।¹

जिस सत्य को भारतीय ज्ञान परंपरा में निरंतर अनुभव द्वारा कहा गया किन्तु आज उस अनुभव को नकारा जाने लगा भारतीय ज्ञान परंपरा में इस अवचेतन मन की ऊर्जा को सर्वोपरि कहा जाता रहा है ऐसी Subconscious Mind की Power को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रमाणित करना चिकित्सा के क्षेत्र में महान क्रांति का द्योतक है।

तुलसीकृत रामचरित मानस के राम-लक्ष्मण संवाद में मानव-जीवन के जीने के सिद्धान्त को राम के मुख से तुलसीदास ने कहलवाया है, जिसमें मानव मन के अवचेतन मस्तिष्क की शक्तियों का परिचय सहज ही मिलता है। शब्द को ब्रह्म स्वरूप कहा जाता है यदि शब्द में भ्रम की स्थिति पैदा हो जाए तो अनर्थ हो सकने की सम्भावना है, ठीक इसी प्रकार से यदि ब्रह्म में भ्रम स्थित हो जाएं तो मानव-जीवन निरर्थक हो जाता है। शब्दों का सही अर्थ और स्वरूप जानना सही अर्थों में प्रयुक्त किया जाना ही वाचा कर्म की सार्थकता है। श्रीमद्भागवत गीता के अध्याय 2.47 श्लोक में कृष्ण अर्जुन संवाद में कहा गया है कि—

"कर्मन्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥²

इस श्लोक को सरलता से समझाने के लिए कहा जाता रहा है - कर्म करता चल, फल की इच्छा न कर।" पर अधिकार शब्द यहां लगभग विस्मित किया जा चुका है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और कर्म पर अधिकार; अक्सर सुना भी जाता है कि हम तो अपना कर्म कर रहे हैं होने का कारक और कारण स्वरूप में भ्रम पैदा कर दिया गया है क्योंकि मनुष्य कर्म करके ही मनुष्य बनता है अर्थात् कर्म मनुष्य का लक्षण है।

कर्म कृण्वन्ति मनुषाः । (6/23/5)

यह स्पष्ट ही है, कि कर्महीन मनुष्य मृत प्रायः है, जैसे शव का मनसा, वाचा और कर्मणा समाप्त हो जाता है, वैसे ही कर्महीन मनुष्य मृत्यु का सूचक है। अधिकतर लोग ये मान बैठते हैं कि पांच कर्म इन्द्रियों में संलग्न ही कर्म कर रहा है पर ऐसा नहीं निरर्थक बोलने वाला और अनावश्यक सोचने वाला भी कर्म में संलग्न हैं क्योंकि मनुष्य की पहचान कर्म ही है। यहां तक सोने की प्रक्रिया भी कर्म है क्योंकि आपका Subconscious Mind आपका मन-चित्त सब मनसा में संलग्न हैं। योग-निद्रा भी इसको सही अर्थ देती है और निरंतर अभ्यास बतलाता है (कुछ न करना भी क्रिया की श्रेणी में हैं) जैसे डिप्रेशन से मरीज कुछ न करते हुए भी अपनी नकारात्मक तरंगों का प्रभाव अपने आसपास के वातावरण पर डालता है। वातावरण में यह तरंगित ऊर्जा प्रकृति पर अपना नकारात्मक प्रभाव डालती है और प्रकृति ही मनुष्य की पोषक-रूपणी मां तुल्य है। जिसके कारण मनुष्य के सभी कर्मों का प्रभाव प्रकृति पर पड़ता है, जिससे प्रकृति और मानव का सम्बन्ध स्थापित होता है। यदि मानव सम्बन्ध परा और अपरा प्रकृति के ज्ञान के साथ विहीत कर्म में संलग्न रहता है तो मनुष्य प्राकृतिक आपदाओं से बचने के साथ, पुष्ट पोषण प्राप्त कर सकता है। परा और अपरा प्रकृति के जड़ और चेतन स्वरूप को जानना, समझना और उसके अनुसार कर्म की प्रवृत्ति रखना मानव मस्तिष्क चेतना का मूल आधार है -

अपरेयामि तस्त्वनयां प्रकृतिं विद्धि में पराम्।

जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥³ (अध्याय 7.5)

अर्थात्, प्राणी अपरा प्रकृति से उत्पन्न है और उसी से निर्मित है, यदि ज्ञान, कर्म, भक्ति किसी भी एक मार्ग से प्राणी यह जान लेता है कि अपरा प्रकृति जड़ है और एक दूसरी प्रकृति है जो चैतन्य है, जिसके द्वारा प्राणी का जड़ रूप चैतन्य है। यही चेतना-शक्ति परा प्रकृति है। इस प्रकार अपरा-प्रकृति जड़ है और परा-प्रकृति चैतन्य है, हमारी ज्ञान परंपरा में इस परा प्रकृति ही ब्रह्म है। आजकल इसे कई नामों से पुकारा जाने लगा है, जैसे - Power of Subconscious Mind, Positive Energy, ऊर्जा, तरंग आदि-आदि। दुःखद यह है, इस चैतन्य भाव जिसे भारतीय ज्ञान परंपरा में ब्रह्म कहा गया उसके प्रति भ्रम का भाव पैदा होने से हमारे वेद, ग्रंथ, उपनिषद् आदि सम्पूर्ण ज्ञान भण्डार को थौमस बैबिनाटन मैकोले ने आध्यात्मिक, धार्मिक या दार्शनिक कह नकार दिया और एक ढर्रेदार Retro Education policy को जन्म दे दिया पर जीवन जीने के सौन्दर्य पक्ष का विज्ञान यदि सम्पूर्ण संसार में सर्वप्रथम कहीं पाया गया, तो मात्र भारत भूमि से ही उपजा है इसी विज्ञान के सूत्र में राम-लक्ष्मण से कहते हैं -

गो गोचर जहां मन लागि मन जाई, सो सब माया जानेहु भाई।

नेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। बिधा अपर अविधा दोऊ ॥¹¹

अर्थात् जो दस इन्द्रियों (ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय) के वशीभूत होकर अपरा-प्रकृति को सत्य मान बैठता है और परा-प्रकृति के भेद का ज्ञान का पार नहीं जान पाता जो विद्या और अविद्या के सत स्वरूप को नहीं जान पाता। उसे इसका भेद जानना सरल मानव-जीवन के निर्वाह लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है। जीवन का सार जड़ और चेतन को पहचान कर उसके अनुसार कर्म करना है, यही जीने का सत्य स्वरूप भी है। राम आगे कहते हैं -

**एक दुष्ट अति सय दुखरूपा। जा बस जीव पर भवकूपा
एक स्वर जग गुन बस जाके। प्रभु प्रेरि नहि निज बल तोके॥⁷**

अपरा को सत्य मान कर कर्मशील सदैव दुख पाता है और जो परा-प्रकृति के गुण से परिचित हो जाता है, वह यह समझ जाता है कि ब्रह्म रूपी प्रकाश-पुंज से मैं जुड़ा हूँ वही मुझमें चैतन्य है, यही चेतना मुझे मार्ग दिखा रही है इसके अभाव में मैं बलहीन हूँ। जो इस ज्ञान को पा लेता है वह कर्म के फल पर कभी अधिकार नहीं रखता और कर्म के कर्ता भाव से मुक्त होकर साक्षी भाव में समाधिस्थ हो जाता है। ऐसा मानव सत भाव से विहित कर्म में संलग्न रहता है और इस रहस्य को जान लेता है कि राम -

**माया ईस न आयु कहुं जान कहिन सो जीव।
बंध मोच्छ पद सर्व पर, माया प्रेरक सीव॥⁸**

इस रहस्य को कर्म के माध्यम से जाना जा सकता है और कर्म के मुख्य तीन मार्ग कहे गए हैं - (1) कर्म मार्गी (2) ज्ञान मार्गी (3) भक्ति मार्गी। मनुष्य इनसे से किसी एक मार्ग पर संलग्न होकर विहित-कर्म में लगा रहता है तो परा-अपरा प्रकृति के पूरकता को प्राप्त कर लेता है- कर्म मार्गी आत्मविश्वास से भेद जानता है। ज्ञान मार्गी अपने ज्ञान द्वारा अर्जित विवेक पर विश्वास करता है और ज्ञान से भेद जान लेता है। भक्ति मार्गी ईश्वर के प्रति समर्पण भाव से अपरा और परा का भेद जान लेता है। तीनों में तीन भाव आत्म विश्वास, विवेक और समर्पण ही ब्रह्म ही है और ये ब्रह्म बाहर नहीं भीतर है जिसे इस शोध पत्र अनुसार Subconscious Mind कहा गया है। इन तीनों भावों में एक ही भाव सर्वोपरि है विश्वास।

जिसे भारतीय ज्ञान परंपरा ने श्रद्धा के नाम से पुकारा है। इस श्रद्धा रूपी विश्वास में महत्वपूर्ण है प्रार्थना - The Power of Subconscious Mind बेस्ट सेलर पुस्तक के अध्याय The Science and Art of true Prayer में Dr. Joseph Murphy (7) ने लिखा है - "The term "Science" means Knowledge which is coordinated arranged and systematized. Let us think of the science and art of true prayer as it deals with the fundamental principle of life and the techniques and processes by which they can be demonstrated in your life, as well in the life of every human being when he

applies them faithfully. The art is your technique or process, and the science behind it is the definite response of creative mind of your mental picture or thoughts. xxx the sound basis for the art and science of true prayer is your knowledge and complete confidence that the movement of your conscious mind will gain a definite response from your subconscious mind, which is one with boundless wisdom and infinite prayer. By following this procedure, your prayers will be answered.⁹

इन संदर्भों में दो मुख्य बिन्दु हैं -

1. विज्ञान और सच्ची प्रार्थना से जुड़े जीवन का मूल सिद्धान्त है तकनीक और प्रयोग विधि, जो मानव इसे पूर्ण निष्ठा और विश्वास से प्रयोग में लाता है उसे निश्चित रूप से परिणाम मिलते हैं।
2. सच्ची प्रार्थना का अर्थ स्पष्टता (ज्ञान) और विश्वास से विवेकपूर्ण अनन्त शक्ति को पुकारना है, जिससे उत्तर अवश्य मिलते हैं।
प्रार्थना द्वारा मानव अपने अवचेतन मन की 70% चेतना को जागृत कर सकने की क्षमता रखता है। अपने अवचेतन मन में विश्वास और विवेकपूर्ण कर्म से आप ब्रह्म के रहस्य को जान सकते हैं ये ब्रह्म अवचेतन मन है; जिसकी ऊर्जा संचालित होते ही आप जो जान पाना दुष्कर है उसे भी जान सकते हैं, पर शर्त यह है कि विश्वास और विवेक दोनों होने अनिवार्य हैं। यदि आप कर्म-काण्ड के ढोंग में पड़ गए तो पूरी प्रक्रिया दूषित हो जाएगी तब राम बताते हैं -

ग्यान मान जहं एकउ नाहि, देख ब्रह्म समान सब माहीं।

कहि तात सो परम विरागी; तृन सम सिद्धि तीन त्यागी॥¹⁰

अर्थात् वह ज्ञान जिसमें अभिमान न हो, अहिंसक, क्षमाशील, सरल हृदय, पवित्र, स्थिर भाव, इंद्रिय-भोगों से परे, कृतज्ञ, दुःख और सुख में संभव, अनासक्त, बैरागी, समचित्त, एकांकी, आध्यात्मिक और विवेकशील व्यक्ति ही ज्ञानी है, जो तीनों गुण सात्विक, राजसी और तामसिक से परे सत् भाव में जीने वाला है ज्ञानी कहलाने योग्य है, यही ज्ञान ब्रह्म की ओर ले जाता है और ब्रह्म स्वरूप ही अवचेतन मन की चेतना है क्योंकि यह भीड़ में नहीं मिलती - "एक पूर्णिमा की रात में एक छोटे-से गांव में, एक बड़ी अद्भुत घटना घट गई। कुछ जवान लड़कों ने शराबखाने में जाकर शराब पी ली और जब वे शराब के नशे में मदमस्त हो गए और शराबघर से बाहर निकले तो चांद की बरसती चांदनी में उन्हें ख्याल आया कि नदी पर जाएं और नौका-विहार करें रात बड़ी सुंदर और नशे से भरी हुई थी। वे गीत गाते हुए नदी के किनारे पहुंच गए। नाव वहां बंधी थी। मछुए नाव बांध कर घर जा चुके थे। रात आधी हो गयी थी। वे एक नाव में

सवार हो गए। उन्होंने पतवार उठा ली और नाव खेना शुरू किया। फिर वे रात देर तक नाव खेते रहे। सुबह की ठंडी हवाओं ने उन्हें सचेत किया। जब उनका नशा कुछ कम हुआ तो उनमें से किसी ने पूछा, “कहां आ गए होंगे अब तक। आधी रात तक हमने यात्रा की, न-मालूम कितनी दूर तक निकल आए होंगे। नीचे उतरकर कोई देख ले कि किस दिशा में हम चल रहे हैं, कहां पहुंच गए हैं? जो नीचे उतरा था, वह उतर कर हंसने लगा। उसने कहा, “दोस्तों! हम वहीं खड़े हैं जहां रात नाव खड़ी थी।” वे बहुत हैरान हुए। पूरी रात भर उन्होंने पतवार चलाई थी और पहुंचे कहीं भी नहीं थे। नीचे उतर कर उन्होंने देखा तो पता चला, नाव की जंजीर किनारे से बंधी रह गई थी, उन्हें वे खोलना भूल गए थे।

ठीक इसी तरह AI से बंध कर भविष्य भी अपनी अवचेतन शक्ति को विस्मृत कर चुका है जिसका बड़ा उदहारण मोबाइल फोन नंबर को याद रखना है, जब लैंड लाइन फोन हुआ करते थे तब सार्थक प्रयास के द्वारा कई फ़ोन नंबर याद कर लिया करते थे। मस्तिष्क पर विस्मृति बेहोशी का कारक बनती है जो आज स्पष्ट दिखाई दे रही है। तब स्पष्ट ज्ञान पड़ता है की नाव बंधी रह गई “-

“ज्ञात से अज्ञात की तरफ जाने का कोई भी मार्ग नहीं है, सिवाय ज्ञात को छोड़ने के। जो भी हम जानते हैं, वह ज्ञात है और जो जीवन (जिसे हमने अवचेतन रूपी ब्रह्म कहा है) है, वह अनजान है, अननोन है; वह परिचित नहीं है। जो हम जानते हैं, उसके द्वारा उसको नहीं पहचाना जा सकता है, जो हम नहीं जानते हैं। जो ज्ञात है, जो नोन है, उससे अज्ञात को, अननोन को जानने का कोई द्वार नहीं है; सिवाय इसके कि ज्ञात को छोड़ दिया जाए। और ज्ञात को छोड़ते ही अज्ञात के द्वार खुल जाते हैं।”

इस प्रकार तकनीकी क्रांति में AI के प्रयोग का महत्व और सटीक प्रयोग यही है कि कर्म की सात्विकता द्वारा ज्ञान के प्रकाश से जुड़कर अवचेतन मस्तिष्क की सीमाओं को असीमित करना। पर आज की कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने मात्र मशीनों का निर्माण कर चेतन मस्तिष्क को भी सीमित कर दिया है। अवचेतन की सीमा शक्ति का विस्तार तो स्वप्न-तुल्य हो गया है।

यदि कृत्रिम बुद्धिमत्ता और ब्रह्म रूपी अवचेतन का सही सन्तुलन नहीं बिठाया गया तो वह दिन दूर नहीं जहां स्वार्थ, क्रोध, विषय, वासना, लोभ, और सभी विषयी अवगुण से मानव -निर्मित हो जाएंगे। मूल्य समाप्त होते ही भारतीय ज्ञान परंपरा की वसुधैव कुटुम्बक को भावना निर्जीव हो जाएगी। तब न कबीर होगा न मीरा, न अब्दुल रहिम खानखाना, न तुलसी, न राम, न सीता, न राधा, न यशोदा न कौशल्या। न ही गांधी, न बुद्ध, न महावीर, न भगत सिंह,

न झांसी की रानी, न ही विवेकानंद चूल्हे की रोटी तब कभी नहीं पकेगी शेष यदि होगा तो विध्वंस का पहाड़-

थोरहि महं सब कहऊं बुझाई सुनहु तात मति मन चित लाई।

मैं अरु मोर तोर तै माया जेहि बस किन्हें जीव निकाया ॥¹²

इसकी मुक्ति के लिए अंतस में डूबकी लगाकर, अगर गहरे पानी में पैठ कर मोती ढूँढ़ना (स्व: चेतना) ही मानव-जीवन का ध्येय है और यही जीवन जीने की सच्चा रूप भी है और मानव-धर्म भी।

AI संबंधी एक विडियो सोशल मीडिया पर तेजी से वायरल हुई, जिसमें समझाया गया कि यदि आप chat GPT की सहायता लेते हुए हुए sorry, thanks या Please का प्रयोग करते हैं तो उन शब्दों के लिए AI कंपनीज को बड़ा नुकसान उठाना पड़ता है क्योंकि उसकी प्रोग्रामिंग में ऐसे शब्दों को रखा ही नहीं गया है। ये विचारणीय प्रश्न है कि जिस शब्दकोश में कृतज्ञता, क्षमा, धन्यवाद जैसे शब्द ही नहीं होंगे तो उस शब्दकोश से निर्मित समाज कैसा होगा? यदि ये भाव मानव हृदय में नहीं होंगे तो ऐसा समाज किस श्रेणी में रखा जाता है हम सभी परिचित हैं।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. Wikipedia
2. <https://www.drsweataadatia.com>
3. श्रीमद्भगवद्गीता, साधक - संजीवनी, स्वामी रामसुखदास, गीताप्रेस, गोरखपुर, 61वां संस्करण, पृष्ठ संख्या 103
4. अथर्ववेद, महर्षि दयानंद सरस्वती, दयानंद संस्थान, नयी दिल्ली
5. श्रीमद्भगवद्गीता, साधक - संजीवनी, स्वामी रामसुखदास, गीताप्रेस, गोरखपुर, 61वां संस्करण, पृष्ठ संख्या 475
6. रामचरितमानस, तुलसीदास, टीकाकार हनुमानप्रसाद पौडार, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृष्ठ संख्या 623
7. वही
8. वही, पृष्ठ संख्या 624
9. Power of subconscious mind; Dr. Joseph Murphy; Fingerprint!classics, पृष्ठ संख्या 83-84
10. रामचरितमानस, तुलसीदास, टीकाकार हनुमानप्रसाद पौडार, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृष्ठ संख्या 624
11. संभोग से समाधि तक, ओशो, ओशो इंटरनेशनल फाउंडेशन, पृष्ठ संख्या 406-407
12. रामचरितमानस, तुलसीदास, टीकाकार हनुमानप्रसाद पौडार, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृष्ठ संख्या 623

- प्रो. अर्चना गौड़, राजेश गौतम

भक्ति आंदोलन का अखिल भारतीय स्वरूप

शोध-सार

भक्ति आंदोलन मध्यकालीन भारत का एक प्रमुख सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन था जिसने पूरे भारत पर अपना व्यापक प्रभाव छोड़ा था। यह इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि पहली बार भक्ति का मार्ग समाज के सभी वर्गों और लोगों के लिए खुला था, साथ ही इस आंदोलन ने सभी प्रकार की सामाजिक-धार्मिक विसंगतियों पर जोरदार प्रहार किया था। यह आंदोलन दक्षिण भारत से आरंभ होकर धीरे-धीरे संपूर्ण भारत में फैल गया था जहां दक्षिण में आलवार, नायनार और रामानुजाचार्य ने इस आंदोलन में अग्रणी भूमिका निभाई थी, वहीं महाराष्ट्र में संत ज्ञानेश्वर, नामदेव, तुकाराम, एकनाथ तथा गुजरात में नरसी मेहता एवं बंगाल में चैतन्य महाप्रभु उड़ीसा में पंचसखा तथा असम में शंकरदेव ने भक्ति आंदोलन का प्रसार किया था। यही भक्ति आंदोलन जब उत्तर भारत में पहुंचा, तब रामानंद, कबीर, रैदास और तुलसीदास ने इस आंदोलन को इसके उच्चतम शिखर तक पहुंचा दिया जिससे इसकी पहुंच समाज के हर वर्ग तक हो गई। इस आंदोलन की बड़ी विशेषता है यह थी कि पहली बार लोक भाषाओं में भक्ति का साहित्य रचा जा रहा था जिससे सामान्य जनता भी इसे समझकर भक्ति का रस ले पा रही थी। पहली बार किसी आंदोलन में महिलाएं भी शामिल हो रहीं थीं। दक्षिण में आंडाल, अक्कमहादेवी से लेकर कश्मीर में लल्लदेव से लेकर उत्तर भारत में मीराबाई की भक्ति में इसका विस्तृत स्वरूप दिखाई देता है। यह इस आंदोलन के प्रमुख उपलब्धि रही है।

बीज शब्द

मध्यकालीन, लोकभाषा, जनसंस्कृति, लोकजीवन, समाज-सुधार।

मूल-आलेख

भारतीय संस्कृति में वैदिक युग से ही भक्ति विभिन्न रूपों में चली आ रही है। भक्ति शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'भज सेवायाम्' धातु में क्तिन् प्रत्यय लगने से होती है जिसका अर्थ है- 'भगवान के भक्ति में लीन होना।'।

सेवा करना या समर्पित होना अर्थात् किसी की सत्ता को स्वयं से उच्च मानकर उसके सामने श्रद्धापूर्वक झुकना और अनुकूल व्यवहार

करना भक्ति कहलाती है। भक्ति का सर्वप्रथम उल्लेख श्वेताश्वेतर उपनिषद् में मिलता है। श्रीमद् भागवतपुराण में भक्ति को उसके अलग-अलग स्वरूप के आधार पर नौ कोटियों में विभाजित किया गया है। यही भक्ति बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार अलग-अलग रूपों में पूरे भारतवर्ष में प्रचलित रही है। देश में बौद्ध और जैन धर्मों की उत्पत्ति के बाद भारतीय जनमानस का एक बहुत बड़ा हिस्सा उनकी ओर आकर्षित हो गया था किंतु परवर्ती बौद्ध और जैन धर्म में भी विकृतियां आने लगी थीं। आदिकाल में नाथ-सिद्धों की कठोर साधना से सामान्य जनता का मोहभंग होने लगा था। वही पांचवी-छठी सदी से ही दक्षिण भारत में आलवारों और नायनारों द्वारा समाज के सभी वर्गों के लिए भक्ति का मार्ग खोला जाने लगा था। यही भक्ति धीरे-धीरे दक्षिण से चलकर गुजरात, महाराष्ट्र से होते हुए उत्तर भारत में आ रही थी। इस समय उत्तर भारत में इस्लाम का प्रवेश भी हो चुका था जिसके कारण अनेक सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक परिवर्तन हो रहे थे। इन उलटफेरों में फंसी एवं नाथ-सिद्धों के कठोर विधि-विधानों से ऊब चुकी जनता ने दक्षिण से आ रही भक्ति को खुले मन से अपनाया जिसके परिणामस्वरूप संपूर्ण भारत में भक्ति में एक आंदोलन का रूप ले लिया।

भक्ति आंदोलन के विस्तार के संबंध में डॉ. प्रेमशंकर अपनी पुस्तक 'भक्तिकाव्य का समाजदर्शन' में कहते हैं कि "द्रविड़ में जन्म, कर्नाटक में विकास, महाराष्ट्र में आदर, गुजरात में वार्धक्य और अंत में वृंदावन में नवयौवन की प्राप्ति, भक्ति स्वयं बताती है और ज्ञान-वैराग्य नामक दो पुत्रों का उल्लेख करती है।" भक्ति आंदोलन एक प्रकार से सामाजिक विसंगतियों, कुरीतियों एवं भेदभाव के फलस्वरूप उपजा आंदोलन है। यह लोक और जनसाधारण का आंदोलन है जिसने समाज के सभी वर्गों, लोगों और शूद्रों को मुख्यधारा में सम्मिलित होने का अवसर दिया। इससे पहले भक्ति साहित्य कभी-भी लोक-भाषाओं में नहीं रचा गया था किंतु भक्ति आंदोलन ने लोक-भाषाओं को साहित्य में प्रमुखता से स्थान दिया। इस संदर्भ में मैनेजर पांडेय 'भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य' पुस्तक में कहते हैं कि "वास्तव में यह सामंती संस्कृति के विरुद्ध जनसंस्कृति के उत्थान का अखिल भारतीय आंदोलन है।" इस प्रकार भक्ति आंदोलन देश के विभिन्न हिस्सों में फैला और इसने एक सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन का रूप ले लिया।

दक्षिण भारत में भक्ति आंदोलन का स्वरूप 5वीं-6वीं शताब्दी से दक्षिण भारत में भक्ति के विकास का आरंभ हो गया था। यहां भक्ति सर्वप्रथम वैष्णव-भक्ति के रूप में प्रकट होती है जिसे आलवार भक्तों ने आगे बढ़ाया था।

इनकी संख्या लगभग 12 बताई जाती है और इनमें से अनेक समाज के निम्न वर्ग से आते थे। इन्हीं की शिष्य-परंपरा में श्रीसंप्रदाय के प्रवर्तक रामानुजाचार्य आते हैं। इनके साथ ही शैव मत को मानने वाले नायनारों ने भी भक्ति के पुनरुत्थान में अपना योगदान दिया। आलवारों और नायनारों के भक्ति संबंधी योगदान के विषय में डॉ. लक्ष्मीकांत पांडेय और डॉ. प्रमिला अवस्थी ने अपनी पुस्तक 'भारतीय साहित्य' में कहा है कि "अनेक शैव नायनारों तथा वैष्णव 'आलवारों' ने हिंदू धर्म के व्यापक पुनरुत्थान के लिए साथ मिलकर जो प्रयास किया, उसके फलस्वरूप लोकप्रिय भक्ति-साहित्य के विकास को अत्यंत प्रोत्साहन मिला। प्रचुरता तथा जनजीवन पर प्रभाव दोनों ही दृष्टियों से यह अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ।"

आलवार भक्तों की परंपरा में एक महिला भक्त आंडाल रहीं हैं जिन्होंने तमिल भक्ति आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। तमिल भाषा में सबसे प्रमुख कार्य रंगनाथ मुनि ने किया। इन्होंने आलवार भक्तों की वाणी को 'दिव्यप्रबंधनम्' नामक ग्रंथ में संग्रहित किया जिसमें लगभग 4000 पद हैं। केरल के आदि शंकराचार्य जी ने अद्वैतवाद की स्थापना की किंतु अद्वैतवाद की शुष्क, रसहीन भक्ति की प्रतिक्रियास्वरूप। 2वीं शताब्दी के आसपास रामानुजाचार्य जी ने श्रीसंप्रदाय, माध्वाचार्य ने ब्रह्म संप्रदाय, विष्णु स्वामी ने रुद्र संप्रदाय और निंबार्काचार्य ने सनकादि संप्रदाय की स्थापना की। कर्नाटक में लिंगायत और शैव संप्रदाय की भक्ति इस आंदोलन के विकास में अपना योगदान देती है। इनकी शिव भक्ति इन्हें बाकियों से अलग करती है। अतः दक्षिण भारत में भी भक्ति आंदोलन कठोर जाति-व्यवस्था के विरोध में उत्पन्न हुआ था जिसमें आलवार शिष्य-परंपरा के रामानुजाचार्य ने अग्रणी भूमिका निभाई थी और उन्हीं के शिष्य रामानंद को उत्तर भारत में भक्ति को प्रसारित करने का श्रेय दिया जाता है।

पश्चिमोत्तर भारत में भक्ति आंदोलन का स्वरूप-महाराष्ट्र में भक्ति आंदोलन को स्थापित करने का श्रेय चक्रधर से लेकर संत ज्ञानेश्वर, नामदेव, तुकाराम, एकनाथ और रामदास जी को जाता है। यहां भक्ति आंदोलन का आरंभ महानुभाव एवं संप्रदाय के अंतर्गत हुआ। महानुभाव संप्रदाय के प्रवर्तक चक्रधर और वारकरी संप्रदाय के प्रवर्तक संत ज्ञानेश्वर थे। इनकी भक्ति का प्रमुख क्षेत्र पंढरपुर था। यहां विठ्ठल जी के परमब्रह्म रूप की भक्ति की जाती थी। महाराष्ट्र के भक्ति आंदोलन में जाति-प्रथा के विरुद्ध बहुत ही तीखा स्वर विद्यमान था, इसलिए यहां कृष्ण की भक्ति में श्रृंगार और भ्रमरगीतों

के स्थान पर उनका तारणहार रूप अधिक प्रचलित था। महिला भक्तों में मुक्ताबाई और महादम्बा का नाम भी मिलता है। महाराष्ट्र में भक्ति आंदोलन का उच्चतम शिखर पर ले जाने का श्रेय संत नामदेव जी को जाता है। इन्होंने मराठी अभंगों के साथ-साथ हिंदी में भी प्रचुर रचनाएं की हैं। ये हिंदू-मुसलमान के भेदभाव को दूर करना चाहते थे। इस संदर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में उल्लेख किया है कि "इनका लक्ष्य एक ऐसी सामान्य भक्ति पद्धति का प्रचार करना था जिसमें हिंदू का मुसलमान दोनों योग दे सकें और भेदभाव का कुछ परिहार हो। बहुदेवोपासना, अवतार और मूर्तिपूजा का खंडन ये मुसलमानी जोश के साथ करते थे और मुसलमानों की कुर्बानी (हिंसा), नमाज, रोजा आदि की असारता दिखाते हुए ब्रह्मा, माया, जीव, अनहदनाद, सृष्टि, प्रलय आदि की चर्चा पूरे हिंदू ब्रह्मज्ञानी बनकर करते थे।"⁴

इसी समय गुजरात में भागवत धर्म की प्रतिष्ठा हो रही थी। नरसी मेहता, भालण और अखो गुजराती में भक्ति साहित्य को प्रतिष्ठित करने वाले प्रमुख कवि हैं। नरसी मेहता गुजराती भक्ति काव्य के श्रेष्ठ कवि रहे हैं। इनकी कोमल, सरस और मधुर कविता जन-जन में लोकप्रिय हुई। इसी समय राजस्थान में भी दादूदयाल और मीराबाई ने भक्ति आंदोलन में अपना योगदान दिया था। कश्मीर की प्रसिद्ध संत कवयित्री लल्लदेव ने अपनी 'वाख' कविताओं द्वारा भक्ति आंदोलन के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। वहीं पंजाब में पहुंचकर भक्ति आंदोलन में सूफी-दर्शन जुड़ता है। इस संदर्भ में सुमन राजे ने अपनी पुस्तक 'हिंदी साहित्य का आधा इतिहास' में कहा है- "नाथ-साहित्य पंजाबी, हिंदी, राजस्थानी की साझी विरासत है। यहां आकर पहली बार भक्ति आंदोलन में एक नया परिपेक्ष्य जुड़ा, सूफी दर्शन का।" यहां के संतों का योद्धा रूप में उन्हें विशिष्ट पहचान दिलाता है। यहीं से सिख धर्म का उदय होता है और गुरु अर्जुनदेव द्वारा 'गुरुग्रंथ साहिब' का संकलन किया जाता है। इस प्रकार दक्षिण भारत से चलकर महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान और पंजाब में पहुंचकर भक्ति आंदोलन नए-नए रूपों में विकसित होता है।

पूर्वी भारत में भक्ति आंदोलन का स्वरूप

बंगाल में भक्ति आंदोलन का आरंभ जयदेव, विद्यापति और चंडीदास के द्वारा होता है। इनके पद जन-जन में प्रचलित थे। उस समय की तत्कालीन साहित्यिक भाषा को 'ब्रजबुलि' कहा जाता था जो बांग्ला और ब्रजभाषा का मिश्रित रूप थी। बंगाल में प्रचलित देवी पूजन उन्हें भक्ति आंदोलन में विशेष पहचान दिलाता है। इनके अतिरिक्त बंगाल में भक्ति को ऊंचाई पर ले जाने का श्रेय चैतन्य महाप्रभु को जाता है जिन्होंने गौड़ीय संप्रदाय की स्थापना की थी। कृतिवास ओझा जी ने संस्कृत रामायण ग्रंथों के आधार पर बांग्ला में रामायण प्रस्तुत

की। जिसे कृतिवास रामायण के नाम से जाना जाता है तथा जिसकी गणना बंगाल की लोकप्रिय कृतियों में की जाती है।

उड़ीसा में भक्ति आंदोलन का विकास 13वीं-14वीं शती में होता है। यहां भक्ति को प्रसारित करने का श्रेय 'पंचसखा' को जाता है जिसमें बलरामदास, यशोवंतदास, अनंतदास, जगन्नाथदास तथा अच्युतानंददास शामिल थे। जगन्नाथदास जी ने उड़िया में भागवत की रचना की थी। इस समय अधिकांश उड़िया संतकवि वैष्णव भक्तिगीतों की रचना कर रहे थे। इनकी भक्ति के सम्बन्ध में डॉ. लक्ष्मीकांत पांडेय और डॉ. प्रमिला अवस्थी ने 'भारतीय साहित्य' पुस्तक में कहा है कि "चूंकि उड़ीसा में जगन्नाथ जी शैव, शाक्त, वैष्णव, बौद्ध, जैन सबके आराध्य रहे, अतः वैष्णव भक्ति के केंद्र में जगन्नाथ जी ही विद्यमान हैं।"⁶

असम में भक्ति आंदोलन का प्रारंभ 15वीं शती में वैष्णव भक्ति परंपरा के साथ आरंभ होता है जिसके प्रवर्तक शंकरदेव जी हैं। शंकरदेव और उनके शिष्यों ने भक्ति साहित्य के अंतर्गत वैष्णव भक्ति के साथ असम के क्षेत्रीय लोकजीवन का भी वर्णन किया है।

उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन का स्वरूप

उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन के उदय के संबंध में मुख्यतः दो मत हैं। पहला मत आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी का है जो इस्लाम की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन का विकास मानते हैं। आचार्य शुक्ल का मानना है कि भारत में इस्लाम का आक्रमण होने के कारण सामान्य जनता की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक परिस्थितियों पर अत्यंत विपरीत प्रभाव पड़ा था। जनता की बात सुनने वाला कोई नहीं था। विभिन्न प्रकार के अत्याचारों के कारण वे हताश हो चुके थे। ऐसे में जब भक्ति आंदोलन दक्षिण से उत्तर भारत में पहुंचता है तो जनता उसे खुले मन से स्वीकार करती है। आचार्य शुक्ल 'हिंदी साहित्य का इतिहास' पुस्तक में कहते हैं कि "भक्ति का जो सोता दक्षिण की ओर से धीरे-धीरे उत्तर भारत की ओर पहले से ही आ रहा था। उसे राजनीतिक परिवर्तन के कारण शून्य पड़ते हुए जनता के हृदय क्षेत्र में फैलने के लिए पूरा स्थान मिला।" दूसरा मत पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी जी का है जो आचार्य शुक्ल के इस मत का विरोध करते हुए दिखाई देते हैं कि उत्तर भारत में भक्ति का प्रादुर्भाव इस्लाम के प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हुआ है। उनका मानना है कि भक्ति भारतीय चिंतन परंपरा का स्वाभाविक विकास है। वे कहते हैं कि यदि भक्ति का उदय⁷ इस्लाम की प्रतिक्रिया के कारण होता तो भक्ति पहले उत्तर भारत में आती, न कि दक्षिण भारत में। इस संदर्भ में वे अपनी पुस्तक 'हिंदी साहित्य की भूमिका' में कहते हैं कि "जोर देकर कहना चाहता हूं कि अगर इस्लाम नहीं

आया होता तो भी इस साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा आज है।"⁸

भक्ति आंदोलन लोक का आंदोलन था। इसमें सामान्य जनता ने बढ़-चढ़कर भाग लिया था। उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन को लाने का श्रेय यदि रामानंद जी को है तो उसे स्थापित करने का श्रेय कबीरदास, जायसी, तुलसीदास और सूरदास को है जो हिंदी साहित्य के भक्तिकाल की विभिन्न धाराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस आंदोलन में निम्न वर्ग ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी जिसमें कबीर, रैदास, दादू आदि प्रमुख संत आते हैं जिन्होंने समाज में व्याप्त वर्ण-व्यवस्था, बाह्य-आडंबर, पाखंड, छुआछूत और झूठ-फरेब पर जोरदार प्रहार किया था तथा सामाजिक समानता, समाज-सुधार, शास्त्रीय भाषा के स्थान पर लोकभाषा को स्थापित करने पर बल दिया था। निम्न वर्ग का भक्ति आंदोलन में आगे बढ़कर आने का आर्थिक कारण भी है। इस समय अनेक कस्बों का विकास हो रहा था जिससे निम्न वर्ग के कामगार जैसे जुलाहे, दर्जी, मोची, बढ़ई आदि अपने उत्पादों को बिचौलियों के बगैर सीधे बाजारों में ले जा रहे थे जिससे उनकी आर्थिक दशा कुछ ठीक होने लगी थी। इसी समय भक्ति आंदोलन के कारण जाति-व्यवस्था का वर्चस्व भी कम होने लगा था। इन सभी के कारण निम्न वर्ग में भी स्वाभिमान और स्वतंत्रता का भाव जगाने लगा था और वे भक्ति के सहज और सरल रूप को अपनाने लगे थे।

उत्तर भारत के हिंदी साहित्य में भक्ति चार प्रमुख धाराओं के रूप में विकसित हो रही थी जिसे हिंदी साहित्य के इतिहासकारों ने संत काव्यधारा, सूफी काव्यधारा, राम काव्यधारा और कृष्ण काव्य धारा में विभाजित किया था। इन चारों धाराओं ने भक्ति को अलग-अलग रूपों में ग्रहण करके भक्ति आंदोलन को उसके उच्चतम शिखर तक पहुंचाने में अपना योगदान दिया था। जहां संत काव्यधारा के अंतर्गत कबीर, दादूदयाल, गुरुनानक, रैदास, रज्जब, सुंदरदास आदि प्रमुख हिंदी कवि हुए, वहीं सूफी काव्यधारा में जायसी, कुतुबन, मंझन, उस्मान और नूर मोहम्मद आदि कवियों ने हिंदू घरों की कहानियां लेकर अपने काव्य ग्रंथ लिखे तथा हिंदू-मुसलमान में सामंजस्य दिखाने का प्रयास किया। राम काव्यधारा के अग्रणी पुरुष तुलसीदास जी ने 'रामचरितमानस' के सृजन द्वारा पूरे देश को एक अमूल्य ग्रंथ दिया था। कृष्ण काव्यधारा के विकास में सर्वाधिक योगदान अष्टछाप के कवियों का रहा है जिसमें कुंभनदास, सूरदास, परमानंददास, कृष्णदास, गोविंदस्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास और नंददास आते हैं जिन्होंने कृष्ण के मधुर और आत्मीय स्वरूप को अपनी रचनाओं द्वारा जनमानस के हृदय तक पहुंचाया था। इनमें सबसे अधिक प्रसिद्धि सूरदास जी को मिली है जिन्होंने कृष्ण के बाल रूप के द्वारा जनता के

हृदय में वात्सल्य रस का संचार करा दिया था। साथ ही मीराबाई अपने कृष्णप्रेम द्वारा समाज की बंदिशों पर प्रहार करती हुई दिखाई देती हैं। इन सारी विशेषताओं के कारण ही भक्तिकाल को हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग कहा जाता है। इसके संबंध में विश्वनाथ त्रिपाठी जी ने 'हिंदी साहित्य का सरल इतिहास' पुस्तक में कहा है कि "भक्तिकाव्यधारा के अंतर्गत हिंदी में कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, रैदास और मीरा जैसे महान प्रतिभाओं ने रचनाएं कीं। इन्हीं की रचनाओं के कारण भक्ति-युग को हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग कहा जाता है।" इनके अतिरिक्त वल्लभाचार्य जी ने अपने पुष्टिमार्ग द्वारा कृष्ण के माधुर्य को पूरे समाज में लोकप्रिय बना दिया था।

इस प्रकार उत्तर भारत का भक्ति आंदोलन देश के अन्य भागों के आंदोलन से काफी अलग था जिसके संबंध में डॉ. बच्चन सिंह 'हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास' पुस्तक में कहते हैं कि "देश के अन्य अंचलों की अपेक्षा हिंदी भाषा-भाषी प्रदेश का भक्ति आंदोलन अपने वैविध्य और अंतर्विरोधों में काफी जटिल और नानारूपात्मक है।"¹⁰

निष्कर्ष

भक्ति आंदोलन भारतीय संस्कृति का विशिष्ट आंदोलन रहा है जिसने संपूर्ण भारत को एकसूत्र में जोड़ने का कार्य किया था। इस आंदोलन ने तमाम नकारात्मकता को दूर करके समाज में समानता, बंधुत्व और आध्यात्मिकता को बढ़ाने का कार्य किया था तथा साहित्य में शाखगत भाषा के स्थान पर लोकभाषा को आगे बढ़ाया था जिससे भक्ति साहित्य जन-जन तक पहुंच पाया था और इसने अखिल भारतीय आंदोलन का रूप ले लिया था।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. डॉ. प्रेमशंकर, भक्तिकाव्य का समाजदर्शन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ 51
2. पांडेय, मैनेजर, भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2011, भूमिका
3. पांडेय, लक्ष्मीकांत, अवस्थी, प्रमिला, भारतीय साहित्य, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2019, पृष्ठ 94
4. शुक्ल, रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रयाग पुस्तक सदन, इलाहाबाद, 2019, पृष्ठ 36
5. राजे, सुमन, हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2022, पृष्ठ 129
6. पांडेय, लक्ष्मीकांत, अवस्थी, प्रमिला, भारतीय साहित्य, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2019, पृष्ठ 161
7. शुक्ल, रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रयाग पुस्तक सदन, इलाहाबाद, 2019, पृष्ठ 36
8. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, हिंदी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2024, पृष्ठ 16
9. त्रिपाठी, विश्वनाथ, हिंदी साहित्य का सरल इतिहास, ओरिएंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली. 2016. पृष्ठ 11
10. सिंह, बच्चन, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2022, पृष्ठ 75

- सीमा सिंह
(शोधार्थी)

हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

भारतीय ज्ञान परंपरा और सत्यार्थ प्रकाश

भारतीय ज्ञान परंपरा एक अविरल गति से प्रवाहमान गंगा नदी के जल के समान पवित्र, जीवनदायनी, कल्याणकारी है, इसमें कोई संदेह नहीं है। सदियों से विश्वकल्याण की भावना से परिपूर्ण हमारे प्राचीन ग्रंथों, विद्याओं, वेदों और उपनिषदों ने सारे विश्व में ज्ञान का प्रकाश फैलाया है। इतिहास साक्षी है कि सदियों से चली आ रही इस ज्ञान की गंगा से भारत ने हर तरह की विकट परिस्थितियों में अपनी कल्याणकारी वाणी से पूरे विश्व का मार्गदर्शन किया है। जिसका जीवंत उदाहरण हमें कोरोना काल में देखने को मिला जहां पूरे विश्व ने हमारे आयुर्वेद, योग और खान-पान की शैलियों को अपनाकर सादे जीवन के महत्व को समझा और अपनाया। हमारे भारत वर्ष ने विश्व को अनेक प्रकार से योगदान देकर लाभान्वित किया है। भारत ने ही विश्व को बौद्ध, जैन और सिख पंथ दिए। भारत ने विश्व को गुरु शिष्य परंपरा दी जिसके माध्यम से वर्षों तक अर्जित ज्ञान को आत्मसात और विश्लेषण कर नए ज्ञान को संश्लेषित किया गया।

सन् 1970 में आई मनोज कुमार की फिल्म पूरब और पश्चिम में महेंद्र कुमार के गाए गीत:

जब जीरो दिया मेरे भारत ने
भारत ने मेरे भारत ने
दुनिया को तब गिनती आयी
तारों की भाषा भारत ने
दुनिया को पहले सिखलायी

भारत का रहने वाला हूँ
भारत की बात सुनाता हूँ
है प्रीत जहां की रीत सदा.....

इस गीत ने कोई ऐसी बात नहीं छोड़ी जो ये बताने में रह जाए कि हमारा देश कितनी विशाल ज्ञान परंपरा का अन्वेषक रहा है और आज भी इससे प्रभावित हुए बिना शायद ही कोई विश्व का समाज वंचित होगा, आज हमारे वेदों और गीता का विश्व की लगभग सभी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। जो इस बात का प्रमाण है कि विश्व हमारे ज्ञान से परिपूर्ण हो अपनी उन्नति कर रहा है। वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टीन ने कहा है,

"हम भारतीयों के बहुत ऋणी हैं, जिन्होंने हमें गिनना सिखाया, जिसके बिना कोई सार्थक वैज्ञानिक खोज नहीं हो सकती थी।"

(We owe a lot to Indian who taught us how to count without which no worthwhile scientific Discovery could have been done.)

विश्व कल्याण की इसी भावना को अपने ज्ञान द्वारा हमारे संतो और महान पुरुषों जन-जन तक अपनी नवीन दृष्टियों से अपनी रचनाओं के माध्यम से सरल भाषा में प्रेषित करने के लिए बहुत ही महान ग्रंथों की रचना की। जीवन के सत्य को प्रकाश में लाने के लिए उन्हीं में से एक ग्रंथ स्वामी दयानंद सरस्वती का 'सत्यार्थ प्रकाश' है। ये ग्रंथ जहां हिंदुत्व के वैदिक रूप का आख्यान है वही इसमें ईसाइयत और इस्लाम की आलोचना पर भी दो समुल्लास हैं। जो हिंदुत्व की आलोचना करने वालों के लिए करारा जवाब है क्योंकि उन्हें लगता था कि उनके धर्म की कोई आलोचना नहीं कर सकता। आधुनिक हिंदी का पहला ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' मानक गद्य की सबसे पहली पुस्तक है जिसको उदयपुर में 142 साल पहले वर्ष 1882 में स्वामी जी द्वारा लिखा गया था। उदयपुर में इस पुस्तक के लेखन स्थल पर आज भी सत्यार्थ प्रकाश भवन बना हुआ है। दुनियाभर से आने वाले पर्यटकों का यह एक दर्शनीय स्थल है। सत्यार्थ प्रकाश को आर्य समाज के संस्थापक और धर्म सुधार आंदोलन के प्रमुख व्यक्ति दयानंद सरस्वती के ग्रंथ के रूप में देखा जाता है। लेकिन बहुत कम लोगों को पता है कि हिंदी साहित्य के इतिहासकारों ने अपने ग्रंथों में सत्यार्थ प्रकाश को हिंदी के उन प्रारंभिक ग्रंथों में माना है, जिनके गद्य को बाद में सभी ने परंपरा के रूप में ग्रहण किया।

सत्यार्थ प्रकाश के प्रकाशन से पहले हिंदी गद्य की भाषा ब्रज और अवधी से बहुत अधिक प्रभावित थी। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य का इतिहास में माना है कि 1868 से 1893 का कालखंड हिंदी गद्य के विकास का समय था। स्वामी दयानंद सरस्वती ने वैसे 1873 के आसपास सत्यार्थ प्रकाश का लेखन शुरू किया था, लेकिन इसे पूरा उदयपुर आकर किया। उनसे पहले आमतौर पर ब्रजभाषा को ही गये के रूप में लिखा जा रहा था। उस समय हिंदी में हों को हजिए, हो को होय, आता है को आवता है, आए को आवे, जगह को जाघा, इसलिए को इस करके या भाषा को भाखा लिखा जाता था।

उस समय हिंदी साहित्य में 'सांसें आती जाती हैं' को 'आतियां जातियां जो सांसें हैं' लिखा जाता था। तब कहानी या लेख की भाषा गद्य होती थी, लेकिन हर पंक्ति के आखिर में तुक मिलाकर लिखा जाता था। स्वामी दयानंद सरस्वती को महाराणा सज्जन सिंह ने उदयपुर आमंत्रित किया था। उन्हें एक अलग भवन में ठहराया था। स्वामी जी ने यहीं सत्यार्थ प्रकाश लिखा। वे यहां 10 अगस्त 1882 से 27 फरवरी 1883 तक ठहरे थे। इसके बाद वह जोधपुर होते हुए पुष्कर चले गए थे। डॉ. चंद्रभानु सीताराम सोनवणे ने हिंदी गद्य साहित्य में लिखा है कि सत्यार्थ प्रकाश आधुनिक हिंदी का सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रंथ है। हिंदी को नयी चाल में ढालने में स्वामी दयानंद सरस्वती का स्थान भारतेन्दु हरिश्चंद्र से कम नहीं है। 1856 में जन्मे मनीषी समर्थदान चारण ने स्वामी दयानंद सरस्वती की प्रेरणा से 1886 में अजमेर में राजस्थान प्रेस यंत्रालय की स्थापना कर राजस्थान समाचार साप्ताहिक प्रारंभ किया था। 1904 में यह पत्र दैनिक हो गया, जिसने राजस्थान में दैनिक समाचार पत्रों की आधार भूमि तैयार की। नागरी लिपि में छपने वाला यह दैनिक 12 पेज का था। चंद्रगुप्त वाष्ण्य ने भी राजस्थान समाचार को प्रदेश का पहला दैनिक पत्र माना था।

सत्यार्थ प्रकाश में चौदह समुल्लास (अध्याय) हैं। इसमें जिन विषयों पर विचार किया गया वह हैं-बाल-शिक्षा, अध्ययन-अध्यापन, विवाह एवं गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास-राजधर्म, ईश्वर, सृष्टि-उत्पत्ति, बंध-मोक्ष, आचार-अनाचार, आर्यावर्तदेशीय मतमतान्तर, ईसाई मत तथा इस्लाम। इसकी भाषा के सम्बन्ध में दयानंद जी ने सन् 1882 में इस ग्रंथ के दूसरे संस्करण में स्वयं यह लिखा- "जिस समय मैंने यह ग्रंथ बनाया था, उस समय, संस्कृत भाषण करने और जन्मभूमि की भाषा गुजराती होने के कारण मुझको इस भाषा (हिंदी) का विशेष परिज्ञान न था। इससे भाषा अशुद्ध बन गई थी। अब इसको भाषा-व्याकरण-अनुसार शुद्ध करके दूसरी बार छपवाया है।" हिंदी में लिखे जाने के कारण सत्यार्थ प्रकाश स्वामी जी की बहुचर्चित पुस्तकों की श्रेणी में शामिल है।

नीचे की तालिका में सत्यार्थ प्रकाश के प्रत्येक समुल्लास में वर्णित विषय इंगित किए गए हैं:

समुल्लास

वर्ण्य विषय

प्रथम	ईश्वर के ओंकारादि नामों की व्याख्या
द्वितीय	सन्तानों की शिक्षा
तृतीय	ब्रह्मचर्य, पठनपाठन व्यवस्था, सत्यासत्य ग्रंथों के नाम और पढ़ने-पढ़ाने की रीति
चतुर्थ	विवाह और गृहस्थाश्रम का व्यवहार

पञ्चम	वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम की विधि
षष्ठ	राजधर्म
सप्तम	वेद एवं ईश्वर
अष्टम	जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय
नवम	विद्या, अविद्या, बन्ध और मोक्ष की व्याख्या
दशम	आचार, अनाचार और भक्ष्याभक्ष्य विषय
एकादशम	आर्यावर्तीय मतमतान्तर का खंडन मण्डन
द्वादशम	चार्वाक, बौद्ध और जैन मत
त्रयोदशम	ईसायत (बाइबल)
चतुर्दशम	मुसलमानों का मत (कुरान)

इसके मुख्य संदेश वैदिक विचारधाराओं और मान्यताओं पर आधारित हैं। जो इस प्रकार हैं:

- ओ३म् परमात्मा का निज नाम है। सत्य होने की वजह से ब्रह्म, सर्वत्र व्यापक होने की वजह से विष्णु, कल्याणकारी होने से शिव, सारी प्रजा के उत्पादक होने की वजह से गणपति और प्रजापति, दुष्टदमन होने से रुद्र तथा सोम, अग्नि इत्यादि उसी एक परमात्मा के नाम हैं।
- परमात्मा को कोई रंग या स्वरूप नहीं है। ईश्वर कोई अवतार, पैगम्बर या मसीहा नहीं भेजता। अपने कर्मों के कारण ही कोई आदरणीय बनता है। राम और कृष्ण आदरणीय महापुरुष थे, लेकिन इश्वरावतार नहीं। परमात्मा सर्वआनन्दमय सच्चिदानन्द हैं।
- देव का अर्थ होता है देने वाला (दान या कृपा) अतः ऋषि, मुनि या कोई नदी जो कईयों का कल्याण करे, सूर्य, नक्षत्र आदि देव [15] हैं। लेकिन उपासना ईश्वर की ही करनी चाहिए जो इन सबो का कर्ता है। इसी से एकमात्र ईश्वर का ही नाम महादेव है। वेद मंत्रों को भी देव कहा गया है क्योंकि उनके आत्मसात करने से कल्याण होता है।
- वर्ण व्यवस्था गुण और कर्म को लेकर होती है नहीं कि क्षत्रिय ही हो। ये उसके बल, पराक्रम, निर्भर है। इत्यादि.. जन्म से नहीं। राजा का बेटा आवश्यक इन्द्रजीत और कल्याणकारी गुण पर * मूर्तिपूजा वेदों (और उपनिषदों) में कहीं नहीं है। मूर्ति पूजन से लोग मूर्तिआश्रित हो जाते हैं और पुरुषार्थ के लिए प्रेरित नहीं रहते। सिर्फ पुरुषार्थ से ही जीवों का कल्याण हो सकता है।
- जीव (आत्मा, पुरुष), प्रकृति और परमात्मा तीनों एक दूसरे से पृथक् हैं। परमात्मा जीवों पर नियंत्रण नहीं करता लोग अपने कार्य के लिए स्वतंत्र हैं। परिणाम अपने कार्य के अनुसार ही होगा - परमात्मा की ईच्छा के अनुसार नहीं।

- मोक्ष प्राप्ति के लिए अष्टांग योग, उत्तम कर्म, पवित्रता, यज्ञ (पदार्थ यज्ञ, दान, त्याग और निष्काम कर्म) सत्य का साथ और मिथ्या को दूर छोड़ना, विद्वान् पुरुषों का संग, विवेक (सत्य और असत्य का विवेचन) इत्यादि कर सकते हैं।
- ईश्वर उपासना करने से अपराध क्षमा नहीं करता कई हिंदू (और इस्लामी तथा अन्य) मतों में ईश्वर पूजन के लिए ये प्रस्तुत किया जाता है पर पुस्तक के अनुसार ईश्वर सिर्फ सत्यज्ञान दे सकता है। अपराध क्षमा करना (जैसे हरि या बिसमिल्लाह बोलकर) ईश्वर जैसे न्यायकारी शक्ति के अनुकूल नहीं है।
- वैष्णव, शैव, शाक्त, कापालिक, चक्रांकित और चार्वाक मत वेदों को नहीं समझ सकने के कारण बने हैं। ईश्वर का कोई रूप या अवतार नहीं होता क्योंकि वेदों में इनका कहीं विवरण नहीं मिलता।
- श्राद्ध, तर्पण आदि कर्म जीवित श्रद्धापात्रों (माता पिता, पितर, गुरु आदि) के लिए होता है, मृतकों के लिए नहीं।
- तीर्थ दुःख ताड़ने का नाम है किसी सागर या नदी-सरोवर में नहाने का नहीं। इसी प्रकार आत्मा के (मोक्ष पश्चात्) सुगम विचरण को स्वर्ग और पुनर्जन्म के बंधन में पड़ने को नरक कहते हैं - ऐसी कोई दूसरी या तीसरी दुनिया नहीं है।
- इस्लाम और ईसाई धर्मों का खंडन कोई पैगम्बर या मसीहा नहीं भेजा जाता है। ईश्वर को अपना सामर्थ्य जताने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि वो सच्चिदानंद है। स्वर्ग, नरक, जिन्न आदि का भी खंडन।

निष्कर्ष

स्वामी जी के कथन अनुसार " मेरा इस ग्रंथ को बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य-सत्य अर्थ का प्रकाश करना है, अर्थात् जो सत्य है उस को सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादित करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाए किंतु जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है, वह अपने सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है। इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता है।" इसी कथन के आलोक में उनकी रचना सत्यार्थ प्रकाश की मूल संवेदना को समझा जा सकता है। संपूर्ण सृष्टि के ग्रंथों के जीवन सत्य और असत्य को उजागर करती स्वामी जी की ये पुस्तक समाज में जागृति पैदा करने वाले कुछ महत्वपूर्ण ग्रंथों में से एक है। प्रत्येक सम्मुलास में स्वामी जी ने अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया है। उन्होंने जहां धर्म की बात की है वहां किसी और

धर्म की बुराई न करके उसकी सिर्फ अच्छाइयों को ग्रहण कर समाज में सत्य के उदघाटन का बीड़ा उठाया है।

स्वामी दयानंद सरस्वती जी की मातृभाषा गुजराती थी और संस्कृत का इतना ज्ञान था कि संस्कृत में धाराप्रवाह बोल लेते थे, तथापि इस ग्रंथ को उन्होंने हिंदी में रचा है, कहते हैं कि जब स्वामी जी 1872 में कलकत्ता में केशवचंद्र सेन से मिले तो उन्होंने स्वामी जी को यह सलाह दी कि आप संस्कृत छोड़कर हिंदी बोलना आरम्भ कर दें तो भारत का असीम कल्याण हो। तभी से स्वामी जी के व्याख्यानों की भाषा हिंदी हो गयी और शायद इसी कारण स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश की भाषा भी हिंदी ही रखी। स्वामी जी पूरे देश में घूम-घूमकर शास्त्रार्थ एवं व्याख्यान कर रहे थे। इससे उनके अनुयायियों ने अनुरोध किया कि यदि इन शास्त्रार्थों एवं व्याख्यानों को लिपिबद्ध कर दिया जाय तो ये अमर हो जाएंगे। सत्यार्थ प्रकाश की रचना उनके अनुयायियों के इस अनुरोध के कारण ही सम्भव हुई। स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका में स्वयं लिखा है कि "जो-जो सब मतों में सत्य बातें हैं, वे-वे सबमें अविरोध होने से उनका स्वीकार करके जो-जो मत मत-मतांतरों में मिथ्या बातें हैं, उन-उनका खंडन किया है। इसमें यह भी अभिप्राय रखा है कि जब मत-मतांतरों की गुप्त व प्रकट बुरी बातों का प्रकाश कर विद्वान्-अविद्वान सब साधारण मनुष्य के सामने रखा है, जिससे सबके, सबका विचार होकर परस्पर प्रेमी होकर एक सत्य मतस्थ होवें। यद्यपि मैं आर्यावर्त देश में उत्पन्न हुआ पर बसता हूं तथापि जैसे इस देश के मत-मतांतरों की झूठी बातों का पक्षपात न करके यथातथ्य प्रकाश करता हूं, वैसे ही दूसरे देशस्थ या मर्तोनति वालों के साथ भी बरतता हूं। जैसा स्वदेश वालों के साथ मनुष्य उन्नति के विषय में बताता हूं वैसा विदेशियों के साथ भी तथा सब सज्जनों से भी बरतना योग्य है। क्योंकि मैं भी जो किसी एक का पक्षपाती होता, तो जैसे आजकल के स्वमत की स्तुति, मंडन और प्रचार करते और दूसरे मत की निंदा, हानी और बंद करने में तत्पर होते हैं, वैसे मैं भी होता, परंतु ऐसी बातें मनुष्यपन से बाहर हैं।" चौदहवें समुल्लास के अंत में भी स्वामी जी ने लिखा है कि " मेरा कोई नवीन कल्पना व मत-मतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है। किंतु, जो सत्य है, उसे मानना-मनवाना और जो असत्य है, उसे छोड़ना-छुड़वाना मुझको अभीष्ट है। यदि मैं पक्षपात करता तो आर्यावर्त के प्रचलित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता। किंतु, मैं आर्यावर्त वा अन्य देशों में जो अधर्म-युक्त चाल-चलन हैं, उनको स्वीकार नहीं करता और जो धर्म युक्त बातें हैं, उनका त्याग नहीं करता, न करना चाहता हूं क्योंकि ऐसा करना मनुष्य धर्म के विरुद्ध है।" अपने मतों को लेकर स्वामी जी ने सारे देश का दौरा करना आरंभ किया और जहां-जहां वे गए, प्राचीन परंपरा के पंडित

और विद्वान उनसे हार मानते गए। संस्कृत भाषा का उन्हें अगाध ज्ञान था। अपनी पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' में रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं "उन्होंने ईसाई और मुस्लिम धर्म-ग्रंथों का भी भली-भाँति मंथन किया था। अतएव, अकेले ही उन्होंने तीन-तीन मोर्चों पर संघर्ष आरंभ कर दिया। दो मोर्चे तो ईसाइयत और इस्लाम के थे, किंतु तीसरा मोर्चा सनातन धर्मी हिंदुओं का था। जिनसे जूझने में स्वामी जी को अनेक अपमान, कुत्सा, कलंक और कष्ट झेलने पड़े। उनके प्रचंड शत्रु ईसाई और मुसलमान नहीं, सनातनी हिंदू ही निकले और, कहते हैं, अंत में इन्हीं हिंदुओं के षड्यंत्र से उनका प्राणांत भी हुआ। दयानंद ने बुद्धिवाद की जो मशाल जलाई थी, उसका कोई जवाब नहीं था। वह जो कुछ कह रहे थे, उसका उत्तर न तो मुसलमान दे सकते थे, न ईसाई, न पुराणों पर पलने वाले हिंदू पंडित और विद्वान। हिंदू-नवोत्थान अब पूरे प्रकाश में आ गया था और अनेक समझदार लोग, मन-ही-मन यह अनुभव करने लगे थे कि, सच ही पौराणिक धर्म में कोई सार नहीं है।"

हिंदी साहित्य के इतिहासकारों ने अपने ग्रंथों में सत्यार्थ प्रकाश को हिंदी के उन प्रारंभिक ग्रंथों में माना है, जिनके गद्य की शैली को बाद में सभी ने परंपरा के रूप में ग्रहण किया। सत्यार्थ प्रकाश के प्रकाशन से पहले हिंदी गद्य की भाषा ब्रजभाषा और अवधी से

बहुत अधिक प्रभावित थी। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य का इतिहास में माना है कि 1868 से 1893 का कालखंड हिंदी गद्य के विकास का समय था। डॉ. चंद्रभानु सीताराम सोनवणे ने हिंदी गद्दय साहित्य में लिखा है कि सत्यार्थ प्रकाश आधुनिक हिंदी का सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रंथ है। हिंदी को नयी चाल में ढालने में स्वामी दयानंद सरस्वती का स्थान भारतेन्दु हरिश्चंद्र से कम नहीं है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. सत्यार्थ प्रकाश: स्वामी दयानंद सरस्वती, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली-110006
2. संस्कृति के चार अध्याय: रामधारी सिंह दिनकर, लोकभारती प्रकाशन, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, प्रयागराज-211001
3. हिंदी साहित्य का इतिहास: आचार्य रामचंद्र शुक्ल, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

प्रो. दीपमाला

(आचार्य)

हिंदी विभाग, श्री गुरु नानक देव खालसा कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

गुरु-शिष्य परंपरा और शिक्षण की पद्धतियां

भारतीय शिक्षा व्यवस्था की मूल आत्मा गुरु-शिष्य परंपरा में निहित है। गुरुकुल व्यवस्था में शिक्षा का उद्देश्य केवल विषयगत ज्ञान देना नहीं, बल्कि अनुशासन, आत्मसंयम, सेवा-भाव और नैतिक मूल्यों का विकास करना था। गुरु और शिष्य के बीच आत्मीय संबंध शिक्षा को अधिक प्रभावी और जीवनोपयोगी बनाते थे।

आधुनिक युग में विज्ञान, प्रौद्योगिकी और डिजिटल माध्यमों के विकास ने शिक्षा को नया स्वरूप प्रदान किया है। व्याख्यान, परियोजना, समस्या-समाधान, सहकारी अधिगम और ई-लर्निंग जैसी पद्धतियों ने शिक्षा को अधिक वैज्ञानिक, व्यावहारिक और विद्यार्थी-केंद्रित बनाया है।

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य गुरु-शिष्य परंपरा के ऐतिहासिक विकास, उसके मूल्यों तथा पारंपरिक और आधुनिक शिक्षण-पद्धतियों के स्वरूप का अध्ययन करना है। साथ ही यह शोध दोनों के समन्वय की संभावनाओं का विश्लेषण करता है, जिससे शिक्षा को अधिक प्रभावी, मूल्यपरक और समग्र बनाया जा सके।

शिक्षक की भूमिका

भारतीय समाज में गुरु का स्थान सदैव सर्वोपरि माना गया है। 'गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वर' जैसी उक्तियां इस तथ्य को पुष्ट करती हैं कि गुरु को सृष्टि के मूल कारणों के समान महत्व प्राप्त था। शिक्षा का उद्देश्य केवल रोजगारोन्मुखी ज्ञान अर्जित करना नहीं था, बल्कि आत्मा को प्रकाशित करना, मन को शुद्ध करना और जीवन को सार्थक बनाना था।

गुरु-शिष्य परंपरा भारतीय शिक्षा व्यवस्था का आत्मा रही है। गुरुकुल में शिक्षा जीवन के प्रत्येक पहलू को छूती थी—चाहे वह शारीरिक हो, मानसिक हो, बौद्धिक हो या आध्यात्मिक। शिक्षा केवल पुस्तक या पाठ्यक्रम तक सीमित नहीं थी, बल्कि आचरण, अनुशासन, सेवा और व्यवहार का सम्मिलन थी। शिष्य गुरु की सेवा करते हुए न केवल श्रम का महत्व समझता था, बल्कि आत्मनिर्भरता और विनम्रता का भी पाठ पढ़ता था।

आधुनिक काल में शिक्षा का रूप बदल गया है। विद्यालय और विश्वविद्यालय शिक्षा के मुख्य केंद्र बन गए हैं। शिक्षण का स्वरूप अधिक औपचारिक और विषयगत हो गया है। तकनीक और विज्ञान ने शिक्षा को नयी दिशा दी है। डिजिटल प्लेटफार्म, ऑनलाइन शिक्षण,

वर्चुअल क्लास, प्रयोगात्मक पद्धतियां और शोधपरक दृष्टिकोण ने शिक्षा को वैश्विक स्तर पर विस्तृत कर दिया है।

किन्तु प्रश्न यह है कि क्या इन आधुनिक पद्धतियों में वही आत्मीयता, मूल्य और जीवन-दर्शन निहित हैं जो प्राचीन गुरु-शिष्य परंपरा में थे? यही शोधपत्र का मुख्य उद्देश्य है—गुरु-शिष्य परंपरा और आधुनिक शिक्षण-पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन करना और यह समझना कि दोनों को मिलाकर शिक्षा को कैसे अधिक सशक्त बनाया जा सकता है।

गुरु-शिष्य परंपरा और शिक्षाशास्त्रीय दृष्टिकोण

गुरु-शिष्य परंपरा भारतीय शिक्षा व्यवस्था की आधारशिला रही है। इसका मुख्य उद्देश्य केवल ज्ञान प्रदान करना नहीं था, बल्कि व्यक्ति के बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक विकास को सुनिश्चित करना था। आधुनिक शिक्षा-शास्त्र के अनेक सिद्धांतों का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि उनमें से कई विचार भारतीय गुरु-शिष्य परंपरा के मूल तत्त्वों से साम्य रखते हैं। यद्यपि उनकी कार्यप्रणाली और संदर्भ भिन्न हैं, फिर भी उनका अंतिम उद्देश्य शिक्षार्थी का समग्र विकास ही है। जैसे:

1. जॉन ड्यूई का अनुभवात्मक अधिगम और गुरु-शिष्य परंपरा : अमेरिकी शिक्षाशास्त्री जॉन ड्यूई के अनुसार शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि अनुभवों के माध्यम से सीखने की सतत प्रक्रिया है। उनका मानना था कि विद्यार्थी वास्तविक जीवन की परिस्थितियों में कार्य करते हुए अधिक प्रभावी ढंग से सीखता है। ड्यूई ने "Learning by Doing" अर्थात् "करके सीखना" सिद्धांत का प्रतिपादन किया।

भारतीय गुरुकुल व्यवस्था में भी शिक्षा का स्वरूप अनुभवात्मक था। शिष्य केवल शास्त्रों का अध्ययन ही नहीं करते थे, बल्कि आश्रम के दैनिक कार्यों, कृषि, पशुपालन, वन-जीवन और सामाजिक गतिविधियों में भाग लेकर व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करते थे। इस प्रकार ड्यूई का अनुभवात्मक अधिगम और भारतीय गुरु-शिष्य परंपरा दोनों शिक्षा को जीवन से जोड़ने पर बल देते हैं।

2. **जीन पियाजे का संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत और गुरु-शिष्य परंपरा:** स्विस् मनोवैज्ञानिक जीन पियाजे ने संज्ञानात्मक विकास का सिद्धांत प्रस्तुत किया। उनके अनुसार बालक का बौद्धिक विकास विभिन्न चरणों में होता है और प्रत्येक अवस्था में उसकी सीखने की क्षमता तथा समझ का स्तर अलग होता है। इसलिए शिक्षा बालक की मानसिक परिपक्वता के अनुरूप होनी चाहिए। गुरुकुल परंपरा में भी गुरु प्रत्येक शिष्य की योग्यता, रुचि और क्षमता के अनुसार शिक्षा प्रदान करता था। शिक्षा का स्वरूप व्यक्तिगत था। गुरु शिष्य के स्वभाव और बौद्धिक स्तर को समझकर उसे उपयुक्त ज्ञान और प्रशिक्षण देता था। इस प्रकार पियाजे के बालक-केंद्रित दृष्टिकोण और गुरु-शिष्य परंपरा के व्यक्तिगत शिक्षण में महत्वपूर्ण समानता दिखाई देती है।

3. **लेव वाइगोत्स्की का सामाजिक अधिगम सिद्धांत और गुरु-शिष्य परंपरा:** रूसी मनोवैज्ञानिक लेव वाइगोत्स्की ने शिक्षा में सामाजिक अंतःक्रिया के महत्व पर बल दिया। उनके अनुसार सीखना एक सामाजिक प्रक्रिया है, जिसमें शिक्षक, सहपाठी और समाज की सक्रिय भूमिका होती है। उन्होंने "निकटस्थ विकास क्षेत्र" की अवधारणा प्रस्तुत की, जिसके अनुसार शिक्षक के मार्गदर्शन से विद्यार्थी उन कार्यों को भी सीख सकता है जिन्हें वह अकेले नहीं कर सकता।

भारतीय गुरु-शिष्य परंपरा में भी शिक्षा संवाद, प्रश्नोत्तर, अनुकरण और सतत मार्गदर्शन पर आधारित थी। गुरु शिष्य के ज्ञान-विस्तार में सहायक भूमिका निभाता था तथा उसके बौद्धिक और नैतिक विकास का मार्गदर्शन करता था। उपनिषदों में वर्णित अनेक संवाद-जैसे याज्ञवल्क्य-गार्गी संवाद तथा नचिकेता-यम संवाद-इस सामाजिक अधिगम प्रक्रिया के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

4. **रवीन्द्रनाथ ठाकुर की प्रकृति-आधारित शिक्षा और गुरु-शिष्य परंपरा:** रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने शिक्षा को प्रकृति, स्वतंत्रता और सृजनात्मकता से जोड़ने का प्रयास किया। उनका मानना था कि शिक्षा का वातावरण खुला, आनंदमय और प्राकृतिक होना चाहिए। इसी उद्देश्य से उन्होंने शांतिनिकेतन की स्थापना की, जहां विद्यार्थियों को प्रकृति के सान्निध्य में शिक्षा प्रदान की जाती थी। गुरुकुल प्रणाली भी प्रकृति के बीच स्थापित आश्रमों में संचालित होती थी। वन, नदी और प्राकृतिक परिवेश शिक्षा का अभिन्न अंग थे। विद्यार्थियों का जीवन प्रकृति के निकट बीतता था, जिससे उनमें पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता, आत्मनिर्भरता और संतुलित जीवन-दृष्टि विकसित होती थी। इस प्रकार ठाकुर की शिक्षा-दृष्टि भारतीय गुरुकुल परंपरा के अनेक मूलभूत तत्वों का आधुनिक पुनर्पाठ प्रतीत होती है।

5. **महात्मा गांधी की बुनियादी शिक्षा और गुरु-शिष्य परंपरा:** महात्मा गांधी ने 'नयी तालीम' अथवा 'बुनियादी शिक्षा' का प्रतिपादन किया। गांधीजी के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य केवल साक्षरता नहीं, बल्कि व्यक्ति के शरीर, मन और आत्मा का संतुलित विकास है। उन्होंने शिक्षा को उत्पादक कार्यों, श्रम, स्वावलंबन और नैतिक मूल्यों से जोड़ने पर बल दिया।

गुरुकुल परंपरा में भी शिष्य श्रम, सेवा और आत्मनिर्भरता का अभ्यास करता था। आश्रम के कार्यों में भाग लेना शिक्षा का अनिवार्य अंग था। गांधीजी का श्रम-आधारित शिक्षा सिद्धांत भारतीय गुरु-शिष्य परंपरा की उसी भावना का आधुनिक रूप है, जिसमें ज्ञान और कर्म का समन्वय किया गया था।

गुरु-शिष्य परंपरा का ऐतिहासिक विकास : एक कालक्रमिक अध्ययन

भारतीय शिक्षा व्यवस्था का विकास एक दीर्घ ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है। विभिन्न कालखंडों में शिक्षा के उद्देश्य, स्वरूप, विषय-वस्तु तथा शिक्षण-पद्धतियों में परिवर्तन हुए, किन्तु गुरु-शिष्य संबंध की मूल भावना निरंतर बनी रही। शिक्षा के विकास को निम्नलिखित कालखंडों में समझा जा सकता है—

1. **वैदिक काल (1500-600 ई.पू.):** भारतीय शिक्षा व्यवस्था का प्रारंभिक और सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्वरूप वैदिक काल में विकसित हुआ। इस काल में शिक्षा का केंद्र गुरुकुल था, जहां विद्यार्थी गुरु के आश्रम में निवास कर शिक्षा प्राप्त करते थे। शिक्षा पूर्णतः मूल्यपरक, आध्यात्मिक और जीवनोपयोगी थी। शिक्षा का माध्यम मुख्यतः मौखिक था। विद्यार्थी वेदों, मंत्रों और सूक्तों को सुनकर स्मरण करते थे। इस प्रणाली को 'श्रुति' और 'स्मृति' परंपरा कहा गया। शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन नहीं, बल्कि सत्य, धर्म, आत्मसंयम और चरित्र निर्माण था। गुरु और शिष्य के मध्य आत्मीय संबंध स्थापित होते थे तथा शिक्षा को जीवन-साधना माना जाता था।
2. **उत्तरवैदिक एवं उपनिषद काल (600-200 ई.पू.):** इस काल में शिक्षा का स्वरूप अधिक दार्शनिक और चिंतनप्रधान हो गया। उपनिषदों में गुरु-शिष्य संवाद के माध्यम से ब्रह्म, आत्मा, मोक्ष और जीवन के गूढ़ प्रश्नों पर विचार किया गया। इस युग में प्रश्नोत्तर, तर्क-वितर्क और संवाद-पद्धति का विशेष विकास हुआ। नचिकेता-यम संवाद, याज्ञवल्क्य-गार्गी संवाद तथा श्वेतकेतु के प्रसंग इस शिक्षण-पद्धति के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान प्राप्त करना नहीं, बल्कि सत्य

की खोज और आत्मज्ञान प्राप्त करना था। इससे विद्यार्थियों में चिंतनशीलता, जिज्ञासा और तर्क क्षमता का विकास हुआ।

3. **बौद्ध-जैन काल (600 ई.पू.-1200 ई.):** बौद्ध और जैन धर्म के उदय के साथ भारतीय शिक्षा व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इस काल में शिक्षा अधिक संगठित और संस्थागत रूप में विकसित हुई। नालंदा, तक्षशिला, विक्रमशिला, वल्लभी और उदंतपुरी जैसे विश्वविद्यालय ज्ञान के प्रमुख केंद्र बने।

इस युग में शिक्षा केवल धार्मिक विषयों तक सीमित नहीं रही, बल्कि व्याकरण, चिकित्सा, गणित, तर्कशास्त्र, राजनीति, दर्शन तथा कला का भी अध्ययन कराया जाने लगा। शिक्षण में वाद-विवाद, व्याख्यान और सामूहिक अध्ययन को विशेष महत्व दिया गया। बौद्ध शिक्षा ने करुणा, अहिंसा और नैतिकता पर बल दिया, जबकि जैन शिक्षा ने संयम, आत्मानुशासन और सत्य के पालन को महत्व दिया।

4. **मध्यकालीन शिक्षा (1200-1757):** मध्यकाल में भारत की शिक्षा प्रणाली पर इस्लामी संस्कृति और परंपराओं का प्रभाव पड़ा। इस काल में मदरसे और मक़तब शिक्षा के प्रमुख केंद्र बने। यहां अरबी, फारसी, धर्मशास्त्र, साहित्य, इतिहास, गणित और खगोलशास्त्र की शिक्षा दी जाती थी।

दूसरी ओर संस्कृत पाठशालाएं भी सक्रिय रहीं, जहां वेद, पुराण, न्यायशास्त्र, अलंकारशास्त्र और दर्शन का अध्ययन जारी रहा। इस काल में लिखित ग्रंथों और पुस्तकालयों का महत्व बढ़ा। यद्यपि शिक्षा की संरचना में परिवर्तन आया, फिर भी गुरु या उस्ताद के प्रति सम्मान और अनुशासन की परंपरा बनी रही।

5. **औपनिवेशिक शिक्षा (1757-1947):** अंग्रेजी शासन के आगमन के साथ भारतीय शिक्षा व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन हुए। 1835 में मैकाले की शिक्षा नीति के माध्यम से पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली को बढ़ावा दिया गया। आधुनिक विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई।

इस काल में अंग्रेजी भाषा, विज्ञान, गणित, इतिहास तथा प्रशासनिक विषयों को प्रमुखता मिली। शिक्षा का उद्देश्य प्रशासनिक सेवाओं के लिए प्रशिक्षित जनशक्ति तैयार करना बन गया। पारंपरिक गुरुकुल व्यवस्था धीरे-धीरे कमजोर हुई और शिक्षा अधिक औपचारिक तथा परीक्षा-केंद्रित हो गई। फिर भी समाज में गुरु के प्रति सम्मान की भावना बनी रही।

6. **स्वातंत्र्योत्तर शिक्षा (1947-2000):** स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ने लोकतांत्रिक और समावेशी शिक्षा व्यवस्था की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाए। शिक्षा को सभी नागरिकों का अधिकार

मानते हुए उसके विस्तार और सार्वभौमिकरण पर बल दिया गया।

इस काल में विभिन्न शिक्षा आयोगों और नीतियों के माध्यम से शिक्षा सुधार किए गए। प्राथमिक शिक्षा, महिला शिक्षा, तकनीकी शिक्षा तथा उच्च शिक्षा के विस्तार पर विशेष ध्यान दिया गया। शिक्षण में बाल-केंद्रित दृष्टिकोण, अनुभवात्मक अधिगम, प्रयोगात्मक कार्य और सृजनात्मकता को महत्व दिया जाने लगा। शिक्षक की भूमिका केवल ज्ञानदाता की न होकर मार्गदर्शक और प्रेरक के रूप में विकसित हुई।

7. **समकालीन डिजिटल शिक्षा (2000-वर्तमान):** इक्कीसवीं शताब्दी में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी ने शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन किए हैं। इंटरनेट, स्मार्ट कक्षाएं, ऑनलाइन शिक्षण, ई-लर्निंग, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस तथा डिजिटल संसाधनों ने शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया को अधिक सुलभ और प्रभावी बनाया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने बहुविषयक शिक्षा, अनुभवात्मक अधिगम, कौशल विकास तथा भारतीय ज्ञान परंपरा के समन्वय पर बल दिया है। वर्तमान समय में शिक्षक की भूमिका एक मार्गदर्शक (Mentor) और सुविधादाता (Facilitator) की हो गई है, जबकि विद्यार्थी शिक्षा प्रक्रिया का सक्रिय सहभागी बन गया है।

गुरु-शिष्य परंपरा के मूल्य

भारतीय संस्कृति में गुरु-शिष्य संबंध केवल शिक्षा तक सीमित नहीं रहा, बल्कि यह जीवन-मूल्यों और सामाजिक व्यवस्था का आधार भी बना। इस परंपरा ने भारतीय समाज को सत्य, धर्म, करुणा, सेवा, अनुशासन और ज्ञान जैसे उच्च आदर्श प्रदान किए।

1. **श्रद्धा और विश्वास :** गुरु-शिष्य संबंध की नींव श्रद्धा पर टिकी थी। शिष्य गुरु को केवल शिक्षक नहीं, बल्कि आध्यात्मिक मार्गदर्शक, माता-पिता और मित्र के रूप में भी मानता था।

उपनिषदों में कहा गया है— “आचार्य देवो भव” अर्थात् गुरु को देवतुल्य मानो।

शिष्य की निष्ठा और विश्वास के बिना शिक्षा का आदान-प्रदान संभव नहीं था।

2. **सेवा और समर्पण :** गुरुकुलों में शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित नहीं थी। शिष्य गुरु के आश्रम में रहकर सेवा कार्यों में भाग लेता था, जैसे— गाय चराना, लकड़ी लाना, आश्रम की सफाई करना आदि। यह केवल श्रम नहीं, बल्कि शिष्य के भीतर नम्रता और सेवा-भाव को जगाने का माध्यम था।

उदाहरण : रामायण में श्रीराम और लक्ष्मण ने महर्षि विश्वामित्र के आश्रम में रहकर उनके आदेशों का पालन किया और सेवा भाव से शिक्षा ग्रहण की।

3. **अनुशासन और आज्ञाकारिता :** गुरुकुल जीवन में अनुशासन का विशेष महत्व था। शिष्य को नियमों का पालन करना अनिवार्य था, जैसे— ब्रह्मचर्य का पालन, संयमित जीवन, गुरु की आज्ञा का पालन, समय पर अध्ययन। महाभारत में अर्जुन का उदाहरण मिलता है, जिसने गुरु द्रोणाचार्य की आज्ञाओं का अक्षरशः पालन किया और एकाग्रता से धनुर्विद्या सीखी।
4. **ज्ञान और विवेक :** गुरु का मुख्य कार्य केवल शास्त्र पढ़ाना नहीं था, बल्कि शिष्य को विवेकशील, धर्मनिष्ठ और कर्तव्यपरायण बनाना भी था। शिक्षा का ध्येय था— “सत्यं वद, धर्मं चर” अर्थात् सत्य का पालन करो और धर्म का आचरण करो। गुरु शिष्य को यह सिखाते थे कि ज्ञान तभी सार्थक है जब वह समाज और मानवता के कल्याण में प्रयुक्त हो।
5. **आत्मसंयम और चरित्र निर्माण :** शिक्षा का सबसे बड़ा मूल्य था— चरित्र निर्माण। गुरुकुल शिक्षा ने व्यक्ति को आत्मसंयम, सहनशीलता, धैर्य और संतुलित जीवन जीने की शिक्षा दी।
उदाहरण : नचिकेता (कठोपनिषद्) का प्रसंग, जहां एक छोटे से बालक ने यमराज से निडर होकर प्रश्न किए और आत्मा, मृत्यु और अमरत्व का ज्ञान प्राप्त किया। यह गुरु-शिष्य संवाद का अद्भुत उदाहरण है।
6. **कर्तव्य और त्याग :** गुरु-शिष्य परंपरा ने समाज को त्याग और कर्तव्य-परायणता की शिक्षा दी। एकलव्य का उदाहरण प्रसिद्ध है। उसने द्रोणाचार्य को बिना देखे ही शिष्य मानकर धनुर्विद्या सीखी और गुरु-दक्षिणा में अपना अंगूठा अर्पित कर दिया। यह उदाहरण दिखाता है कि गुरु के प्रति सम्मान और त्याग को कितना महत्वपूर्ण माना जाता था।

शिक्षण की पद्धतियां : पारंपरिक से आधुनिक तक

भारतीय शिक्षा व्यवस्था में शिक्षण-पद्धतियां समय और आवश्यकताओं के अनुसार विकसित होती रही हैं। प्राचीन गुरु-शिष्य परंपरा से लेकर आधुनिक डिजिटल शिक्षा तक विभिन्न पद्धतियों का उद्देश्य विद्यार्थी के ज्ञान, कौशल और व्यक्तित्व का विकास करना रहा है।

1. **श्रवण से व्याख्यान पद्धति तक:** प्राचीन काल में विद्यार्थी गुरु से सुनकर ज्ञान प्राप्त करते थे। आधुनिक शिक्षा में इसका रूप व्याख्यान पद्धति है, जिसमें शिक्षक विषय-वस्तु को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करता है।

2. **मनन से चर्चा पद्धति तक:** श्रवण के बाद ज्ञान पर चिंतन को मनन कहा जाता था। आज यह चर्चा पद्धति के रूप में विकसित हो चुका है, जहां विचार-विमर्श के माध्यम से समझ और तर्कशक्ति का विकास होता है।
3. **निदिध्यासन से परियोजना पद्धति तक:** प्राप्त ज्ञान को व्यवहार में लागू करना निदिध्यासन कहलाता था। आधुनिक शिक्षा में यह परियोजना पद्धति के रूप में दिखाई देता है, जो अनुभवात्मक अधिगम को बढ़ावा देती है।
4. **संवाद से समस्या-समाधान पद्धति तक:** गुरु-शिष्य संवाद प्राचीन शिक्षा का प्रमुख आधार था। वर्तमान में यह समस्या-समाधान पद्धति के रूप में विकसित हुआ है, जो विद्यार्थियों में विश्लेषण और निर्णय क्षमता विकसित करती है।
5. **स्वाध्याय से ई-लर्निंग तक:** स्वाध्याय की परंपरा आज ई-लर्निंग के रूप में विकसित हुई है। डिजिटल संसाधनों के माध्यम से विद्यार्थी स्वतंत्र रूप से अध्ययन कर सकते हैं।
6. **अनुकरण से सहकारी अधिगम तक:** प्राचीन शिक्षा में विद्यार्थी गुरु के आचरण का अनुकरण करते थे। आधुनिक शिक्षा में सहकारी अधिगम के माध्यम से विद्यार्थी समूह में सीखते हैं और सहयोग की भावना विकसित करते हैं।
7. **समन्वित दृष्टिकोण:** पारंपरिक पद्धतियां नैतिकता, अनुशासन और चरित्र-निर्माण पर बल देती हैं, जबकि आधुनिक पद्धतियां वैज्ञानिक दृष्टिकोण, सृजनात्मकता और तकनीकी दक्षता को प्रोत्साहित करती हैं। इसलिए दोनों का समन्वय ही शिक्षा को अधिक प्रभावी, जीवनोपयोगी और समग्र बना सकता है।

गुरु-शिष्य परंपरा और आधुनिक पद्धतियों का सामंजस्य

1. **प्राचीन परंपरा के मूल्य:** भारतीय गुरु-शिष्य परंपरा श्रद्धा, अनुशासन और आत्मीयता पर आधारित थी। गुरु केवल शिक्षक नहीं, बल्कि मार्गदर्शक और जीवन-निर्माता थे। शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान के साथ चरित्र-निर्माण और जीवन-मूल्यों का विकास करना था।
2. **आधुनिक पद्धतियों की विशेषताएं:** आधुनिक शिक्षा में विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कौशल-विकास, आलोचनात्मक चिंतन और सृजनात्मकता को विशेष महत्व दिया जाता है। इससे विद्यार्थी तर्कपूर्ण एवं व्यावहारिक दृष्टिकोण विकसित करते हैं।
3. **सामंजस्य की आवश्यकता:** केवल परंपरागत शिक्षा आधुनिक चुनौतियों का सामना नहीं कर सकती और केवल आधुनिक शिक्षा मानवीय मूल्यों को सुरक्षित नहीं रख सकती। इसलिए दोनों का संतुलित समन्वय आवश्यक है।

4. **व्यावहारिक प्रयोग:** व्याख्यान के साथ संवाद और डिजिटल साधनों का प्रयोग, व्यक्तिगत मार्गदर्शन के साथ परियोजना-आधारित अधिगम तथा अनुशासन के साथ स्वाध्याय और अनुसंधान को जोड़कर शिक्षा को अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।
5. **परिणाम:** इस समंवित दृष्टिकोण से विद्यार्थी ज्ञानवान होने के साथ-साथ नैतिक, उत्तरदायी और संवेदनशील नागरिक बनेंगे। साथ ही शिक्षा अधिक जीवनोपयोगी, व्यावहारिक और समग्र विकास की आधारशिला सिद्ध होगी।

अतः गुरु-शिष्य परंपरा के नैतिक मूल्यों और आधुनिक शिक्षण-पद्धतियों की वैज्ञानिकता का समंवय ही शिक्षा को अधिक प्रभावी, मानवीय और जीवनदायी बना सकता है।

शिक्षा व्यवस्था के समक्ष चुनौतियां

शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन और रोजगार प्राप्ति नहीं, बल्कि व्यक्तित्व निर्माण, मूल्य-स्थापन और समाज निर्माण भी है। वर्तमान समय में शिक्षा व्यवस्था अनेक चुनौतियों का सामना कर रही है।

1. **शिक्षा का व्यावसायीकरण:** आज शिक्षा सेवा के बजाय एक उद्योग का रूप लेती जा रही है। बढ़ती फीस और निजीकरण के कारण गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सभी वर्गों तक समान रूप से नहीं पहुंच पा रही है।
2. **गुरु-शिष्य संबंधों में आत्मीयता का अभाव:** आधुनिक शिक्षा में शिक्षक और विद्यार्थी का संबंध अधिक औपचारिक हो गया है। ऑनलाइन शिक्षा और बढ़ती संस्थागत व्यस्तताओं ने व्यक्तिगत मार्गदर्शन को सीमित कर दिया है।
3. **तकनीक पर बढ़ती निर्भरता:** डिजिटल शिक्षा ने नए अवसर प्रदान किए हैं, किन्तु अत्यधिक निर्भरता के कारण संवाद, स्वाध्याय और आलोचनात्मक चिंतन प्रभावित हो रहे हैं।
4. **मूल्य शिक्षा की कमी:** वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में ज्ञान और कौशल पर अधिक बल दिया जाता है, जबकि नैतिकता, संस्कार और जीवन-मूल्यों को अपेक्षित महत्व नहीं मिल पाता।
5. **प्रतियोगिता और रोजगार-केंद्रित दृष्टिकोण:** शिक्षा का उद्देश्य प्रायः रोजगार प्राप्ति तक सीमित होता जा रहा है। इससे विद्यार्थियों में तनाव बढ़ रहा है और व्यक्तित्व विकास तथा सामाजिक उत्तरदायित्व जैसे व्यापक लक्ष्य पीछे छूट रहे हैं।

अतः आवश्यक है कि शिक्षा में परंपरागत मूल्यों और आधुनिक आवश्यकताओं के बीच संतुलन स्थापित किया जाए, ताकि उसका समग्र स्वरूप सुरक्षित रह सके।

समाधान

शिक्षा किसी भी राष्ट्र की आत्मा होती है। यदि शिक्षा केवल तकनीकी दक्षता और रोजगार तक सीमित रह जाए, तो उसका उद्देश्य अधूरा रह जाता है। इसलिए शिक्षा को मानवीय मूल्यों, नैतिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ना आवश्यक है। इस दिशा में निम्न उपाय उपयोगी हो सकते हैं—

1. **मूल्य-आधारित शिक्षा का समावेश:** वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में ज्ञान और कौशल के साथ-साथ नैतिक मूल्यों पर भी बल दिया जाना चाहिए। विद्यालय स्तर से चरित्र-निर्माण, नैतिक शिक्षा और जीवन-कौशल को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया जाए। प्रोजेक्ट, समूह गतिविधियों और सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से विद्यार्थियों में मानवता, करुणा और सहिष्णुता का विकास किया जा सकता है।
2. **गुरु-शिष्य संबंध की पुनःस्थापना:** शिक्षक को केवल ज्ञानदाता नहीं, बल्कि मार्गदर्शक और प्रेरणास्रोत के रूप में स्थापित किया जाना चाहिए। विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में मेंटॉरिंग व्यवस्था विकसित की जाए, जिससे शिक्षक और विद्यार्थियों के बीच आत्मीय संवाद तथा व्यक्तिगत मार्गदर्शन को बढ़ावा मिले।
3. **तकनीक का संतुलित प्रयोग:** डिजिटल शिक्षा आधुनिक समय की आवश्यकता है, किंतु इसका उपयोग सहायक साधन के रूप में होना चाहिए। ऑनलाइन शिक्षण के साथ प्रत्यक्ष संवाद, चर्चा और सामूहिक अधिगम को भी महत्व दिया जाए, ताकि तकनीक और मानवीय संपर्क के बीच संतुलन बना रहे।
4. **प्रतिस्पर्धा और सहयोग में संतुलन:** शिक्षा में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा के साथ सहयोग की भावना का विकास भी आवश्यक है। सहकारी अधिगम, समूह-कार्य और सामूहिक परियोजनाओं के माध्यम से विद्यार्थियों में टीमवर्क, नेतृत्व और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित की जा सकती है।
5. **शिक्षा का सामाजिक उद्देश्य:** शिक्षा का लक्ष्य केवल रोजगार प्राप्त करना नहीं, बल्कि समाज और राष्ट्र के प्रति उत्तरदायित्व विकसित करना भी होना चाहिए। विद्यार्थियों को सामुदायिक सेवा, पर्यावरण संरक्षण और सामाजिक जागरूकता से जुड़े कार्यक्रमों में सक्रिय भागीदारी के अवसर दिए जाने चाहिए।
6. **परंपरा और आधुनिकता का समंवय:** भारतीय शिक्षा की परंपरा और आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण का संतुलित समंवय आवश्यक है। गुरु-शिष्य परंपरा के मूल्य, अनुशासन और आत्मीयता को आधुनिक शिक्षण-पद्धतियों, शोध, नवाचार और तकनीकी दक्षता के साथ जोड़कर शिक्षा को अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।

अतः शिक्षा का उद्देश्य केवल रोजगार उपलब्ध कराना नहीं, बल्कि ऐसे नैतिक, जागरूक और उत्तरदायी नागरिकों का निर्माण करना होना चाहिए, जो समाज और राष्ट्र के विकास में सार्थक योगदान दे सकें।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध-पत्र के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि गुरु-शिष्य परंपरा भारतीय शिक्षा व्यवस्था की मूल आधारशिला रही है। वैदिक काल से लेकर वर्तमान समय तक शिक्षा के स्वरूप और शिक्षण-पद्धतियों में अनेक परिवर्तन हुए हैं, किंतु गुरु और शिष्य के मध्य श्रद्धा, विश्वास, अनुशासन तथा ज्ञान के आदान-प्रदान की भावना निरंतर बनी रही है। भारतीय शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन नहीं, बल्कि चरित्र-निर्माण, नैतिक मूल्यों के विकास और व्यक्तित्व के समग्र निर्माण से जुड़ा रहा है।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि आधुनिक शिक्षण-पद्धतियाँ—जैसे परियोजना पद्धति, समस्या-समाधान पद्धति, सहकारी अधिगम तथा ई-लर्निंग—शिक्षा को अधिक वैज्ञानिक, व्यावहारिक और विद्यार्थी-केंद्रित बनाती हैं। वहीं गुरु-शिष्य परंपरा शिक्षा को मानवीय मूल्य, आत्मीयता, अनुशासन और नैतिक आधार प्रदान करती है।

वर्तमान समय में शिक्षा के समक्ष व्यावसायीकरण, मूल्य-संकट और तकनीक पर बढ़ती निर्भरता जैसी चुनौतियाँ मौजूद हैं। ऐसी स्थिति में गुरु-शिष्य परंपरा के आदर्शों और आधुनिक शिक्षण-पद्धतियों के नवाचारों के बीच संतुलन स्थापित करना आवश्यक है।

अतः कहा जा सकता है कि गुरु-शिष्य परंपरा और आधुनिक शिक्षण-पद्धतियाँ परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि एक-दूसरे की पूरक हैं। प्राचीन शिक्षा के मानवीय और नैतिक मूल्यों को आधुनिक शिक्षा की वैज्ञानिकता, तकनीकी दक्षता और शोधपरक दृष्टिकोण के साथ समन्वित करके ही ऐसी शिक्षा व्यवस्था का निर्माण किया जा

सकता है, जो व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के समग्र विकास में प्रभावी योगदान दे सके।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. डॉ. भास्कर मिश्र, 2011, वैदिक शिक्षा पद्धति, महर्षि संदीपनी राष्ट्रीय वेद-विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन
2. डॉ. फुलकांत मिश्र, 1996, गुरु-शिष्य संबंध, नाग प्रकाशक, प्रथम संस्करण
3. डॉ. बच्चा भारती, 2002, प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति, भारतीय विद्या संस्थान, वाराणसी
4. सुभाष शर्मा, 2010, भारत में शिक्षा व्यवस्था : अवधारणाएं समस्याएं एवं संभावनाएं, वाणी प्रकाशन
5. डॉ. मधु पाराशर, दीपा सिंह, 18 नवंबर 2021, भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं विकास, एसबीपीडी पब्लिकेशन, आगरा
6. श्याम सुंदर दुबे, पहला संस्करण 1994, दूसरी आवृत्ति 2000, शिक्षा समाज और भविष्य, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002
7. भारत सरकार, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020
8. John Dewey, Democracy and Education, The Macmillan Company, 1916.
9. John Dewey, The Child and The Curriculum, The University of Chicago Press Chicago, Illinois, 1902.
10. M.K. Gandhi, Towards New Education, Navajivan Publication House, Ahmedabad-14, 1953.

—रीना

(शोधार्थी)

हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

सुधा मूर्ति के साहित्य में पौराणिकता, आधुनिकता और सामाजिक मूल्य का समंवय

शोध-सार

सुधा मूर्ति, भारतीय साहित्य की एक प्रतिष्ठित साहित्यकार, ने अपने साहित्य के माध्यम से समकालीन भारतीय समाज के सामाजिक एवं सांस्कृतिक विमर्श को सशक्त रूप से प्रस्तुत किया है। उनकी लेखनी, जो संवेदनशीलता एवं सूझबूझ से परिपूर्ण है, भारतीय समाज की बहुस्तरीय जटिलताओं को गहराई से उद्घाटित करती है। उनकी प्रसिद्ध कृति 'महाश्वेता' में वे सामाजिक भेदभाव और वर्गभेद जैसे विषयों को प्रभावशाली ढंग से उभारते हुए हाशिए पर स्थित समुदायों की आवाज को साहित्यिक मंच प्रदान करती हैं। सुधा मूर्ति का साहित्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि सामाजिक आत्ममंथन का माध्यम है। वे अपने पाठकों को लैंगिक असमानता, बाल-विवाह, तथा परंपरा और आधुनिकता के अंतर्विरोध जैसे विषयों पर विचार करने को प्रेरित करती हैं। उनके कथानकों में पौराणिकता, लोककथाएं और भारतीय संस्कृति की गूढ़ आत्मा सहजता से समाहित होती है, जिससे उनके साहित्य को एक विशिष्ट सांस्कृतिक गहराई प्राप्त होती है। उनके पात्रों का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण सामाजिक बंधनों के प्रति गहरी समझ को दर्शाता है। यह शोधपत्र सुधा मूर्ति के साहित्य में पौराणिकता और आधुनिकता के समंवय की विशिष्टता का समीक्षात्मक अध्ययन करता है, तथा समकालीन भारतीय साहित्य में उनके योगदान को रेखांकित करता है।

बीज शब्द

भारतीय संस्कृति, पौराणिकता, लोककथाएं, भारतीय ज्ञान परंपरा, आधुनिकता, सामाजिक मूल्य, समकालीन भारतीय साहित्य।

मूल आलेख

भारतीय ज्ञान परंपरा सदियों से हमारे सांस्कृतिक, सामाजिक एवं दार्शनिक जीवन की नींव रही है। सुधा मूर्ति के साहित्य में इस परंपरा की झलक आधुनिक संदर्भों में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। भारतीय साहित्य में पौराणिक कथाएं सदियों से एक सशक्त आधार-स्तंभ के रूप में विद्यमान रही हैं। इन कथाओं ने न केवल सांस्कृतिक चेतना को दिशा दी है, अपितु पीढ़ियों को जोड़ने वाली कालातीत जीवन दृष्टि भी प्रदान की है। (चटर्जी, 2018) समकालीन साहित्यिक परिदृश्य में इन पारंपरिक पौराणिक तत्वों का आधुनिक विषयवस्तु के साथ समंवय

लेखकों के लिए भारतीय समाज की जटिलताओं और सांस्कृतिक विविधताओं को अभिव्यक्त करने का एक सशक्त माध्यम बन चुका है। इसी सृजनात्मक प्रवृत्ति में सुधा मूर्ति एक प्रमुख साहित्यकार के रूप में उभरकर सामने आती हैं, जिनकी रचनाओं में पौराणिकता और आधुनिकता का सहज और संतुलित समंवय दृष्टिगोचर होता है।

एक प्रख्यात लेखिका, समाजसेवी तथा परोपकार की भावना से ओत-प्रोत व्यक्तित्व के रूप में सुधा मूर्ति की साहित्यिक यात्रा आधुनिक भारत के परिवर्तनशील सामाजिक परिवेश के बीच विकसित हुई है। उनकी रचनाएं समय और समाज के पारंपरिक व समकालीन आयामों को एक साथ समेटती हैं। एक ओर वे भारतीय पौराणिक स्रोतों से गहरी प्रेरणा प्राप्त करती हैं, वहीं दूसरी ओर वर्तमान समय के सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक प्रश्नों से सीधा संवाद करती हैं। इस प्रकार, वे न केवल भारतीय ज्ञान परंपरा की संरक्षणकर्ता हैं, बल्कि उसे आधुनिक चेतना के आलोक में पुनर्परिभाषित भी करती हैं।

यह शोध कार्य मात्र एक शैक्षणिक परीक्षण नहीं, बल्कि सुधा मूर्ति की साहित्यिक दृष्टि, उनके शिल्प और संवेदना को समझने का एक गंभीर प्रयास है। उनकी प्रमुख रचनाओं के विश्लेषण के माध्यम से यह प्रयास किया गया है कि उन तंतुओं को उजागर किया जा सके जो प्राचीन पौराणिकता को समकालीन सामाजिक यथार्थ से जोड़ते हैं। साथ ही, सुधा मूर्ति की कथा-दृष्टि किस प्रकार समकालीन भारतीय साहित्य को एक नयी दिशा प्रदान करती है, यह भी स्पष्ट करने का प्रयास इस अध्ययन में किया गया है।

इस शोध का प्रमुख उद्देश्य सुधा मूर्ति के साहित्य में पौराणिकता और आधुनिकता के पारस्परिक संबंधों की पड़ताल करते हुए यह स्पष्ट करना है कि किस प्रकार वे भारतीय संस्कृति की गहराई को आधुनिक सामाजिक सरोकारों के साथ जोड़ने में सफल होती हैं।

भारतीय साहित्य में पौराणिकता की उपस्थिति

भारतीय साहित्य में पौराणिकता एक अत्यंत महत्वपूर्ण और सशक्त तत्व रही है, जिसकी जड़ें रामायण, महाभारत तथा पुराणों जैसे प्राचीन हिंदू ग्रंथों में गहराई से समाई हुई हैं। इन महाकाव्यात्मक आख्यानों

ने न केवल समृद्ध कथानक और वैविध्यपूर्ण चरित्र प्रदान किए हैं, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक चेतना को भी गहराई से प्रभावित किया है।

समकालीन भारतीय साहित्य में इन पौराणिक कथाओं का पुनर्पाठ एक नवीन दृष्टिकोण के साथ हो रहा है। लेखक इन ग्रंथों को आधुनिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संदर्भों में पुनः प्रस्तुत कर रहे हैं, जिससे ये प्राचीन कथाएं आज के पाठकों के लिए भी प्रासंगिक और जीवंत बनी हुई हैं।

पौराणिकता और आधुनिक कथा शिल्प के इस समंवय ने भारतीय मिथकों में एक नया प्राण फूँका है। यह पुनर्रचना केवल कल्पना की उड़ान नहीं, बल्कि अतीत और वर्तमान के बीच सेतु का कार्य करती है, जहां पुरानी कहानियां आज की ज्वलंत समस्याओं, नैतिक द्वंद्वों और अस्तित्व के प्रश्नों के उत्तर देती प्रतीत होती हैं। (इंडस, 2002)

रामायण और महाभारत जैसे ग्रंथों में निहित 'धर्म बनाम अधर्म', 'सत्य बनाम असत्य' जैसे शाश्वत विषय आज भी उतनी ही गूंज रखते हैं जितनी वे सहस्राब्दियों पूर्व रखते थे। इन ग्रंथों की नैतिक जटिलताएं, पात्रों की मनोवैज्ञानिक गहराई और जीवन-दर्शन आज भी साहित्यिक विमर्शों में प्रेरणा का स्रोत बनी हुई हैं।

भारतीय कथा साहित्य में पौराणिकता केवल विषयवस्तु भर नहीं, बल्कि वह सांस्कृतिक स्मृति, परंपरा और पहचान की वाहक है। समकालीन लेखक जब इन ग्रंथों का पुनर्पाठ करते हैं, तो वे न केवल साहित्यिक नवाचार कर रहे होते हैं, बल्कि भारतीय चेतना में गहराई से रचे-बसे मूल्यों और प्रतीकों को भी पुनः जीवंत बना रहे होते हैं।

इस प्रकार, पौराणिकता भारतीय साहित्य की आत्मा के रूप में आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी वह प्राचीन युग में थी एक जीवंत परंपरा, जो निरंतर परिवर्तनशील होते समाज में भी अपनी स्थायी उपस्थिति बनाए रखती है।

सुधा मूर्ति : एक प्रेरणास्पद व्यक्तित्व

सुधा मूर्ति का जन्म सन् 1950 में कर्नाटक राज्य के उत्तर भाग स्थित हावेरी जिले के शिगांव नामक स्थान में हुआ। उन्होंने साहित्य, शिक्षा एवं समाजसेवा के क्षेत्र में एक अद्वितीय एवं स्थायी योगदान देकर भारतीय समाज में विशिष्ट स्थान प्राप्त किया है।

शैक्षणिक रूप से वे प्रारंभ से ही अत्यंत मेधावी रहीं। बी.वी. बी. इंजीनियरिंग कॉलेज (हुबली) से इंजीनियरिंग की शिक्षा प्राप्त करते हुए उन्होंने कई प्रतिष्ठित सम्मान अर्जित किए। इसके पश्चात

भारतीय विज्ञान संस्थान (IISc), बेंगलुरु से उन्होंने स्नातकोत्तर (ME) उपाधि प्राप्त की।

सुधा मूर्ति ने अपने व्यावसायिक जीवन की शुरुआत टेलको (जो अब टाटा मोटर्स के नाम से प्रसिद्ध है) में अभियंता के रूप में की। उस समय यह कार्यक्षेत्र प्रायः पुरुषों तक ही सीमित था, अतः इस क्षेत्र में उनकी उपस्थिति ने सामाजिक रूढ़ियों को चुनौती दी।

हालांकि तकनीकी क्षेत्र में उल्लेखनीय उपलब्धियों के बावजूद उनका झुकाव साहित्य और समाज सेवा की ओर रहा। उन्होंने कन्नड़ भाषा और शिक्षा के प्रति अपनी गहरी निष्ठा को मूर्तरूप देते हुए कर्नाटक के अनेक ग्रामीण क्षेत्रों में हजारों पुस्तकालयों की स्थापना की, जिससे शिक्षा और साक्षरता के प्रसार को नयी दिशा प्राप्त हुई।

एक सशक्त लेखिका के रूप में सुधा मूर्ति ने अब तक 30 से अधिक पुस्तकें विभिन्न विधाओं में लिखी हैं जिनमें उपन्यास, लघुकथाएं, आत्मकथात्मक रचनाएं और बच्चों के लिए साहित्य सम्मिलित हैं। उनकी रचनाओं का अनेक भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ है और उन्हें पाठकों की व्यापक सराहना प्राप्त हुई है। उनकी लेखनी सरल, संवेदनशील तथा जीवन के यथार्थ से जुड़ी हुई होती है।

सुधा मूर्ति, इंफोसिस फाउंडेशन की संस्थापक-अध्यक्ष के रूप में, समाजसेवा के विविध क्षेत्रों में सक्रिय रही हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, आपदा राहत, महिला सशक्तिकरण एवं सामुदायिक विकास जैसे क्षेत्रों में उनके कार्यों ने अनगिनत लोगों के जीवन को सकारात्मक रूप से प्रभावित किया है।

भारत सरकार द्वारा उन्हें पद्मश्री तथा पद्म भूषण जैसे प्रतिष्ठित नागरिक सम्मानों से सम्मानित किया गया है। साथ ही, उन्हें भारत के राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत राज्यसभा सांसद के रूप में भी नामित किया गया है, जो उनके ज्ञान, अनुभव एवं सामाजिक योगदान की आधिकारिक मान्यता है।

उनका जीवन-संघर्ष, करुणा, निष्ठा और सेवा-भाव का प्रतीक है। वे न केवल एक प्रेरणादायी लेखिका हैं, बल्कि एक सशक्त समाजसेविका और परिवर्तन की अग्रदूत भी हैं, जिन्होंने भारतीय समाज की चेतना में एक अमिट छाप छोड़ी है।

साहित्यिक योगदान एवं प्रमुख कृतियां

सुधा मूर्ति की साहित्यिक यात्रा का आरंभ 1997 में उनके पहले कन्नड़ भाषा में लिखे गए उपन्यास 'डॉलर बहू' से हुआ। इस रचना ने उन्हें न केवल लेखन के क्षेत्र में एक सशक्त पहचान दिलाई, बल्कि भारतीय साहित्य जगत में एक नयी संवेदनशील आवाज के रूप में स्थापित किया। इसके पश्चात उन्होंने साहित्य के विविध आयामों में

अपनी विशिष्ट छाप छोड़ी और भारतीय कथा-साहित्य को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

सुधा मूर्ति के लेखन की सबसे बड़ी विशेषता है-उनकी सरल, सहज एवं प्रभावशाली भाषा, जो पाठकों को सीधे उनके हृदय से जोड़ती है। मानवीय भावनाओं की सूक्ष्म समझ, सामाजिक यथार्थ का प्रामाणिक चित्रण और नैतिक मूल्यों की पुनःस्थापना उनके साहित्य की आत्मा है। वे न केवल कहानी कहती हैं, बल्कि पाठक को सोचने, समझने और आत्मावलोकन करने के लिए प्रेरित भी करती हैं।

भारतीय साहित्य में उनका एक अमूल्य योगदान 'सामाजिक कथा साहित्य' (Social Fiction) की एक विशिष्ट विधा को प्रतिष्ठित करना रहा है। उनके उपन्यासों, लघुकथाओं और निबंधों में सामाजिक मुद्दों-जैसे वर्ग भेद, लैंगिक असमानता, पारिवारिक संघर्ष, और नैतिक द्वंद्व को अत्यंत संवेदनशीलता और यथार्थ के साथ प्रस्तुत किया गया है।

उनकी रचनाएं भाषाई सीमाओं को लांघते हुए विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनूदित हो चुकी हैं, जिससे उन्होंने देशभर के पाठकों तक पहुंच बनाई है। उनकी प्रमुख कृतियों में-

- 'वाइज एंड अदरवाइज' यह एक लघुकथा-संग्रह है, जिसमें समकालीन भारतीय समाज की विविध तस्वीरें उकेरी गई हैं। यहां जीवन के हर रंग-संघर्ष, करुणा, स्वार्थ और त्याग की झलक मिलती है।
- 'द ओल्ड मैन एंड हिज़ गॉड' इस संग्रह में मानवीय संबंधों की जटिलताओं और संवेदनशील पहलुओं को अत्यंत आत्मीयता के साथ प्रस्तुत किया गया है।
- 'द सर्पेंट्स रिवेंज' - इस कृति में सुधा मूर्ति ने भारतीय पौराणिक कथाओं को अपनी विशिष्ट शैली में पुनः गढ़ा है, जहां वे प्राचीन कथाओं को आधुनिक दृष्टिकोण से जोड़ती हैं और उन्हें समसामयिक संदर्भों में प्रस्तुत करती हैं।

सुधा मूर्ति का लेखन न केवल साहित्यिक सौंदर्य से भरपूर है, बल्कि उसमें एक सामाजिक प्रतिबद्धता भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। वे अपने शब्दों के माध्यम से समाज में सकारात्मक परिवर्तन की आकांक्षा रखती हैं, और यही उनके साहित्य की सबसे बड़ी शक्ति है।

उनके लेखन में उद्घाटित विषयवस्तु

सुधा मूर्ति के साहित्य में भारतीय समाज की परंपराओं, सांस्कृतिक मूल्यों और सामाजिक परिवर्तन का सजीव चित्रण मिलता है। वे विशेष रूप से महिलाओं की भूमिका, लिंग असमानता, पारिवारिक संघर्षों और आर्थिक बदलावों के प्रभाव को उजागर करती हैं। उनका लेखन

परंपरा और आधुनिकता के बीच चल रहे द्वंद्व को दर्शाते हुए यह दिखाता है कि कैसे बदलते समय में व्यक्ति पुराने मूल्यों को संभालते हुए नए विचारों को अपनाने की कोशिश करता है। उनकी सहज और संवेदनशील शैली पाठकों को भारतीय समाज की जटिलताओं और मानवीय अनुभवों की गहराई से रूबरू कराती है।

सुधा मूर्ति के साहित्य में पौराणिक तत्व

सुधा मूर्ति की साहित्यिक रचनाएं पौराणिक तत्वों के सूक्ष्म और प्रभावशाली समावेश से समृद्ध हैं, जहां वे प्राचीन भारतीय मिथकों को समकालीन अनुभवों के साथ इस प्रकार पिरोती हैं कि वे आज के पाठकों के लिए भी प्रासंगिक बन जाते हैं। उनके साहित्य में पौराणिक कथाएं केवल कथानक का हिस्सा नहीं होतीं, बल्कि वे पाठकों को कालातीत विषयों की गहराई तक पहुंचने हेतु एक विशेष दृष्टिकोण प्रदान करती हैं।

उनकी कृति 'द सर्पेंट्स रिवेंज' इसका एक सशक्त उदाहरण है, जिसमें सुधा मूर्ति भारतीय पौराणिक कथाओं के विविध प्रसंगों को आधुनिक दृष्टिकोण के साथ पुनः प्रस्तुत करती हैं। इस संग्रह में द्रौपदी, शकुंतला और उर्वशी जैसे पात्रों को एक नए दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है, जिससे ये चरित्र आज के पाठकों के लिए और अधिक प्रासंगिक बन जाते हैं। ये कहानियां केवल पुनर्कथन भर नहीं हैं, बल्कि उनमें नए अर्थ और आधुनिक सामाजिक संदर्भ का समावेश होता है, जो पाठकों को प्राचीन मिथकों में अंतर्निहित जीवन-दर्शन पर पुनर्विचार करने को प्रेरित करता है।

इसी प्रकार, उनकी लघुकथा संग्रह 'अंडे से निकला आदमी' में भी पौराणिक तत्वों का अत्यंत कुशलता से उपयोग किया गया है। यह संग्रह हिंदू पौराणिक कथाओं से प्रेरणा लेकर उन कम चर्चित कहानियों को प्रस्तुत करता है, जिनमें नैतिक द्वंद्व, मूल्य-निर्णय, और मानवीय संबंधों की जटिलता को केंद्र में रखा गया है। इन कथाओं के माध्यम से सुधा मूर्ति पाठकों को आमंत्रित करती हैं कि वे पौराणिक कथाओं में निहित नैतिक दृष्टिकोण को आधुनिक जीवन की दुविधाओं के संदर्भ में समझें और आत्मसात करें।

उनके साहित्य में पौराणिकता का समावेश केवल कथानक तक सीमित नहीं है, बल्कि वह सांस्कृतिक अनुष्ठानों, त्योहारों और परंपराओं में भी प्रतिबिंबित होता है। उनके उपन्यास 'महाश्वेता' में समाज में विदित ल्यूकोडर्मा (श्वेत दाग) को लेकर व्याप्त दृष्टिकोण को देवी 'महाश्वेता' की पौराणिक प्रतीकात्मकता के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार, वे समकालीन सामाजिक मुद्दों को पौराणिक संकेतों और सांस्कृतिक प्रतीकों के माध्यम से गहराई प्रदान करती हैं।

सारांशतः, सुधा मूर्ति के साहित्य में पौराणिक तत्वों का समावेश परंपरा के प्रति श्रद्धा और आधुनिक सामाजिक यथार्थ की गहन समझ इन दोनों के बीच संतुलन की भावना को दर्शाता है। उनके कथानकों के माध्यम से पाठकों को एक ऐसी यात्रा पर आमंत्रित किया जाता है जो समय की सीमाओं को पार करती है, जहां भारतीय पौराणिक ज्ञान की स्थायी प्रासंगिकता और उसकी आधुनिक चुनौतियों से गुंजती हुई आवाज गहराई से महसूस की जा सकती है।

सुधा मूर्ति के साहित्य में आधुनिकता

सुधा मूर्ति का साहित्य आधुनिक भारतीय समाज की बदलती संवेदनाओं और संरचनाओं का सजीव दर्पण है। वे परंपराओं का सम्मान करते हुए भी आधुनिक सोच, वैश्वीकरण, तकनीकी प्रगति और सामाजिक असमानताओं जैसे विषयों को अत्यंत सहजता और गहराई से प्रस्तुत करती हैं। उनके कथा-संसार में आधुनिकता केवल बाहरी परिवर्तन नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना, आत्मसम्मान और वैचारिक स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति है।

उनकी प्रसिद्ध कृति 'डॉलर बहू' में वे वैश्वीकरण और भौतिकवाद के प्रभाव को पारिवारिक संबंधों की दृष्टि से विश्लेषित करती हैं। यह उपन्यास भारत और अमेरिका की सांस्कृतिक भिन्नताओं के बीच पिसते एक परिवार की कहानी है, जहां परंपरागत भारतीय मूल्य आधुनिक आकांक्षाओं से टकराते हैं। यहां सुधा मूर्ति यह दिखाती हैं कि कैसे आर्थिक सम्पन्नता परिवार में भावनात्मक दूरी पैदा कर सकती है।

इसी प्रकार, 'महाश्वेता' उपन्यास में वे ल्यूकोडर्मा जैसी शारीरिक स्थिति के माध्यम से समाज की सोच, आत्म-सम्मान और सामाजिक बहिष्कार जैसे आधुनिक मुद्दों पर गहन संवाद स्थापित करती हैं। यह कृति नारी स्वाभिमान, शिक्षा और आत्मनिर्भरता की आवश्यकता को उजागर करती है, जो आज के समाज के लिए अत्यंत प्रासंगिक है।

तकनीक के क्षेत्र में आए बदलावों को वे अपनी रचना 'द डे आय स्टॉप्ड ड्रिंकिंग मिल्क' में उभारती हैं। एक ग्रामीण पात्र के माध्यम से कंप्यूटर और डिजिटल ज्ञान के प्रभाव को दिखाते हुए वे यह दर्शाती हैं कि तकनीकी विकास अब केवल शहरी जीवन तक सीमित नहीं, बल्कि गांवों तक अपनी पहुंच बना चुका है।

उनकी लघुकथाओं का संग्रह 'द मदर आई नेवर न्यू' आधुनिक पारिवारिक ढांचे की जटिलताओं को छूता है। यहां वे सौतेले रिश्तों, पहचान की तलाश, और भावनात्मक अस्थिरता जैसे विषयों

को मानवीय दृष्टिकोण से सामने लाती हैं। यह संग्रह पारंपरिक परिवार की अवधारणाओं को नए सामाजिक संदर्भों में पुनर्परिभाषित करता है।

सुधा मूर्ति की कहानियां केवल सामाजिक आलोचना तक सीमित नहीं, बल्कि वे प्रेरणा और बदलाव का संदेश भी देती हैं। उनकी पुस्तक 'द बर्ड विद गोल्डन विंग्स' में एक युवा लड़की के पायलट बनने के सपने के माध्यम से वे पारंपरिक लिंगभेद को चुनौती देती हैं। यह कहानी यह दर्शाती है कि नयी पीढ़ी सामाजिक रूढ़ियों को पीछे छोड़कर अपने रास्ते खुद बना रही है।

सारांशतः, सुधा मूर्ति का साहित्य आधुनिकता और परंपरा के बीच संतुलन बनाते हुए समकालीन भारतीय समाज की नब्ज को छूता है। उनके पात्र सामान्य होते हुए भी असाधारण संघर्षों और विचारों के वाहक होते हैं। वे न केवल सामाजिक यथार्थ को प्रतिबिंबित करती हैं, बल्कि पाठकों को सोचने, प्रश्न करने और बदलाव की ओर बढ़ने की प्रेरणा भी देती हैं। उनका लेखन आधुनिक भारतीय समाज का न केवल चित्रण करता है, बल्कि उसे दिशा भी प्रदान करता है।

तुलना और समंवय

सुधा मूर्ति की साहित्यिक कृतियां पौराणिकता और आधुनिकता के एक सुसंगत समंवय के रूप में उभरकर सामने आती हैं, जो उनके लेखन को एक विशिष्ट स्वरूप प्रदान करता है। वे प्राचीन मिथकों की कथाओं को समकालीन जीवन के ताने-बाने में इतनी सहजता से पिरोती हैं कि उनके कथानक केवल समय की सीमाओं को नहीं लांघते, बल्कि उनमें अर्थ की बहुलता और आधुनिक प्रासंगिकता भी समाहित हो जाती है। (गुप्ता, 2015)

इस समंवय का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि सुधा मूर्ति पौराणिक पात्रों और प्रसंगों को आधुनिक संदर्भों में प्रस्तुत करती हैं। उनकी कथा-कला में यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि किस प्रकार वे 'द सर्पेंट्स रिवेंज' और 'अंडे से निकला आदमी' जैसी कृतियों में द्रौपदी, उर्वशी जैसे पौराणिक पात्रों को आधुनिक संघर्षों और दुविधाओं से जोड़ देती हैं। ये पात्र अब केवल ऐतिहासिक या धार्मिक प्रतीक नहीं रह जाते, बल्कि ऐसे चरित्र बन जाते हैं जो आज के पाठक की संवेदनाओं से प्रत्यक्ष रूप से संवाद करते हैं।

सुधा मूर्ति की रचनाओं में दैवीय और सांसारिक तत्वों के मिलन का चित्रण भी अत्यंत प्रभावशाली रूप में सामने आता है। वे देवी-देवताओं को मनुष्यों के जैसे परिवेश और चुनौतियों में रखकर यह सीमा रेखा धुंधली कर देती हैं कि ईश्वरीय और लौकिक में कोई स्पष्ट अंतर हो। इस प्रक्रिया से वे पौराणिक पात्रों का मानवीकरण

करती हैं और पाठकों को यह संदेश देती हैं कि प्राचीन ज्ञान आज के सामाजिक और व्यक्तिगत संघर्षों में भी मार्गदर्शक सिद्ध हो सकता है।

पौराणिकता और आधुनिकता का यह समंवय केवल पात्रों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह सांस्कृतिक अनुष्ठानों और परंपराओं में भी परिलक्षित होता है। 'महाश्वेता' में देवी महाश्वेता के प्रतीकात्मक अर्थों का उपयोग सामाजिक कलंक की अवधारणाओं को उजागर करने हेतु किया गया है, जबकि 'द डे आय स्टॉप्ड ड्रिंकिंग मिल्क' में सांस्कृतिक परंपराओं और आधुनिक तकनीकी अनुभवों का संगम दर्शाया गया है। ये द्वैत भाव न केवल परंपरा की निरंतरता को दर्शाते हैं, बल्कि यह भी सिद्ध करते हैं कि आधुनिकता के प्रवाह में भी सांस्कृतिक मूल्यों का स्थान सुरक्षित है।

सुधा मूर्ति की रचनाओं में पौराणिकता और आधुनिकता का यह समंवय द्वैतीय उद्देश्य को पूरा करता है। एक ओर यह पाठकों को भारतीय सभ्यता की सांस्कृतिक विरासत और कालातीत कथाओं से जोड़ता है, वहीं दूसरी ओर यह उन्हें यह सोचने पर प्रेरित करता है कि इन प्राचीन ज्ञानों और आदर्शों की आज के जीवन में क्या प्रासंगिकता हो सकती है। उनके कथानक एक ऐसे कैनवास में परिवर्तित हो जाते हैं जहां पौराणिक आदर्शों और आधुनिक जीवन के संघर्षों का सुंदर संगम देखने को मिलता है। (कपूर, 2015)

सारांशतः, सुधा मूर्ति के साहित्य में पौराणिकता और आधुनिकता का संतुलित समावेश एक ऐसा कथा-संसार रचता है, जहां अतीत की प्रतिध्वनियां वर्तमान की लय के साथ सुसंगत रूप से गूंजती हैं। यह समंवय न केवल पाठकीय अनुभव को समृद्ध करता है, बल्कि यह भी दर्शाता है कि कैसे प्राचीन ज्ञान आज के मानवीय अनुभवों की गहराई को समझने में सहायक हो सकता है। सुधा मूर्ति के इस साहित्यिक दृष्टिकोण से स्पष्ट होता है कि वे परंपरा में निहित मूल्यों को आधुनिक जीवन की धड़कनों के साथ किस सूझ-बूझ से जोड़ती हैं।

समकालीन भारतीय साहित्य पर प्रभाव

सुधा मूर्ति का समकालीन भारतीय साहित्य, विशेष रूप से बाल साहित्य के क्षेत्र में, उल्लेखनीय प्रभाव रहा है। उनकी रचनाएं विभिन्न आयु वर्गों के पाठकों के साथ गहराई से जुड़ती हैं, जहां वे करुणा, दया, मित्रता और सामाजिक सरोकारों जैसे विषयों को इस प्रकार प्रस्तुत करती हैं कि वे बच्चों के लिए भी सहज एवं बोधगम्य बन जाएं। अपनी कथा-शैली के माध्यम से, मूर्ति न केवल बाल पाठकों में आलोचनात्मक चिंतन और सहानुभूति का विकास करती हैं, बल्कि उनमें सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना भी उत्पन्न करती हैं।

उनके साहित्य का एक केन्द्रीय तत्व यह है कि वे भारतीय समाज में परंपरा और आधुनिकता के बीच व्याप्त द्वंद्व को उजागर करती हैं। यह विशेष रूप से 'महाश्वेता' जैसी कृतियों में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है, जहां वे भारतीय सामाजिक संरचनाओं की जटिलताओं की पड़ताल करती हैं जैसे भेदभाव, सामाजिक श्रेणियां, और पहचान की खोज और यह सब परंपरागत मूल्यों तथा आधुनिक प्रभावों के बीच संतुलन स्थापित करते हुए करती हैं।

सुधा मूर्ति का साहित्यिक योगदान केवल बाल साहित्य तक सीमित नहीं है। वे अपने लेखन के माध्यम से सामाजिक मुद्दों, सांस्कृतिक बारीकियों, पारिवारिक संबंधों, और भारतीय समाज में स्त्री विमर्श जैसे विविध विषयों को समाहित करती हैं। उनका लेखन भारतीय संस्कृति और सामाजिक मान्यताओं की जटिलताओं की सूक्ष्म समझ को प्रतिबिंबित करता है, जहां वे नारीवादी आदर्शों की वकालत करते हुए अपनी महिला पात्रों को प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझने में समर्थ और दृढ़ बनाती हैं।

सारांशतः, सुधा मूर्ति का समकालीन भारतीय साहित्य पर प्रभाव अत्यंत गहरा और दूरगामी है। यह प्रभाव उनके सामाजिक मुद्दों की कुशल पड़ताल, सहानुभूति एवं सामाजिक चेतना के प्रसार, और ऐसे पात्रों के निर्माण में परिलक्षित होता है जो प्रचलित मानदंडों को चुनौती देते हैं। वे न केवल हाशिये पर खड़ी आवाजों को मुख्यधारा में स्थान देती हैं, बल्कि पाठकों को भारतीय समाज को प्रभावित करने वाले ज्वलंत मुद्दों पर गंभीरता से विचार करने के लिए प्रेरित भी करती हैं। इस प्रकार, सुधा मूर्ति एक रूपांतरकारी कथाकार के रूप में स्थापित होती हैं, जिनका साहित्य भारतीय समाज की आत्मा से गहराई से संवाद करता है।

निष्कर्ष

सुधा मूर्ति समकालीन भारतीय साहित्य की एक प्रमुख साहित्यकार के रूप में उभरती हैं, जिनका योगदान भारतीय साहित्य के परिदृश्य को गहराई से प्रभावित करता है। मिथकों और आधुनिकता के सूक्ष्म समंवय के माध्यम से, उन्होंने ऐसी कथाएं रची हैं जो काल की सीमाओं को पार कर जाती हैं और पाठकों को एक गतिशील विश्व में शाश्वत विषयों की गहन पड़ताल प्रदान करती हैं। उनके कार्यों में प्राचीन ज्ञान और समकालीन जीवन की जटिलताओं का सम्मिश्रण एक विशिष्ट साहित्यिक वस्त्र बनाता है, जो भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को प्रतिबिंबित करता है तथा सामाजिक, सांस्कृतिक और तकनीकी मुद्दों को भी उजागर करता है।

सुधा मूर्ति का प्रभाव केवल साहित्य तक सीमित नहीं है; उनका सामाजिक कथा साहित्य में अग्रणी योगदान सामाजिक चुनौतियों

पर संवाद को समृद्ध करता है और समकालीन भारतीय लेखकों में सामाजिक मुद्दों को प्रमुखता से प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा देता है। इसके अतिरिक्त, मिथकीय कथाओं को पुनः कल्पित करने में उनकी अनूठी दृष्टि ने सांस्कृतिक विरासत के आधुनिक संदर्भ में विश्लेषण के लिए एक नया मार्ग प्रशस्त किया है, जो कई लेखकों को पारंपरिक कथाओं से प्रेरणा लेने के लिए प्रेरित करती है।

साहित्यिक क्षेत्र से परे, सुधा मूर्ति की सामाजिक और जनकल्याणकारी प्रतिबद्धताएं साहित्य और वास्तविक दुनिया के सक्रियता के बीच गहरे सम्बंध को दर्शाती हैं। उनके कार्य कथा साहित्य और सामाजिक परिवर्तन के बीच सेतु का काम करते हैं, जो साहित्य की परिवर्तनकारी क्षमता पर समग्र दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करते हैं। उनकी सहज लेखन शैली ने भारतीय साहित्य के लिए व्यापक पाठक वर्ग का निर्माण किया है, जिससे विविध समुदायों में कहानी सुनाने के प्रति प्रेम और रुचि बढ़ी है।

संक्षेप में कहा जाए तो, सुधा मूर्ति का समकालीन भारतीय साहित्य पर प्रभाव केवल उनकी कहानियों तक सीमित नहीं है, बल्कि उनके कथा-शैली के सामाजिक और सांस्कृतिक सरोकारों में भी गहराई से दृष्टिगोचर होता है। अपनी साहित्यिक प्रतिभा के माध्यम से, वे पाठकों को परंपरा और आधुनिकता, मिथक और वास्तविकता के संगम में मार्गदर्शन करती हैं, और एक बदलते विश्व के संदर्भ में साहित्य के शाश्वत ज्ञान पर चिंतन के लिए प्रेरित करती हैं। सुधा मूर्ति की विरासत पन्नों तक सीमित न रहकर उन पाठकों के हृदय और मस्तिष्क में गूंजती है, जो उनके कार्यों में समकालीन भारतीय जीवन की जटिलताओं और सौंदर्य का प्रतिबिंब पाते हैं।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. चटर्जी, अनन्या भारतीय साहित्य में समकालीन प्रवृत्तियां : सुधा मूर्ति का साहित्यिक परिदृश्य पर प्रभाव, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2018

2. डूंडस, पॉल, भारतीय मिथक : एक पाठक हेतु चयना रूटलेज, 2002
3. गुप्ता, राकेश, सुधा मूर्ति : समकालीन भारतीय साहित्य में मिथक और आधुनिकता के मध्य सेतु, दक्षिण एशियाई साहित्य पत्रिका, खंड 45, अंक 2, 2020, पृष्ठ 198-215
4. कपूर, गीता, मिथक का आधुनिकीकरण : भारतीय साहित्य में मिथकों के समकालीन दृष्टिकोण, हार्पर कॉलिन्स, 2015
5. मूर्ति, सुधा, डॉ. लर बहू, नयी दिल्ली : प्रभात प्रकाशन, संस्करण 2024
6. मूर्ति, सुधा, महाश्वेता, नयी दिल्ली : प्रभात प्रकाशन, संस्करण 2023
7. मूर्ति, सुधा, अंडे से निकला आदमी (पुराणिक भारत की कथाएं)। नयी दिल्ली : प्रभात प्रकाशन, संस्करण 2021
8. मूर्ति, सुधा, वाइज़ एंड अदरवाइज़ा, नयी दिल्ली : पेंगुइन बुक्स, संस्करण 2023
9. मूर्ति, सुधा, द ओल्ड मैन एंड हिज गांडा, नयी दिल्ली : पेंगुइन बुक्स, संस्करण 2023
10. मूर्ति, सुधा, द डे आय स्टॉप्ड ड्रिंकिंग मिल्का, नयी दिल्ली : पेंगुइन बुक्स, संस्करण 2023
11. मूर्ति, सुधा, द मदर आय नेवर न्यू, नयी दिल्ली : पेंगुइन बुक्स, संस्करण 2014
12. मूर्ति, सुधा, द सर्पेंट्स रिवेज, नयी दिल्ली : पेंगुइन बुक्स, संस्करण 2016
13. मूर्ति, सुधा, द बर्ड विथ गोल्डन विंग्स, नयी दिल्ली : पेंगुइन बुक्स, संस्करण 2016

- शिखा राय

(पीएचडी शोधार्थी)

हिंदी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग

लखनऊ विश्वविद्यालय

लोक कवि पंडित लख्मीचंद एवं भारतीय ज्ञान परंपरा

भारत ज्ञान परंपरा से समृद्ध देश है। वेद, उपनिषद्, दर्शनशास्त्र, आयुर्वेद, महाकाव्य, ज्योतिष, योग भारतीय वांगमय के असीम भंडार हैं। इन सब में जीवन और संस्कृति के आदर्श रूप का प्रकटीकरण दृष्टिगोचर होता है। विश्व की प्राचीनतम संस्कृति होने के कारण, भारतीय ज्ञान परंपरा, विश्व के लिए आधार स्तंभ की भूमिका निभाती है। रामायण एवं महाभारत आदि महाकाव्य सार्वभौमिकता एवं संबंधों की समग्रता का प्रस्तुतीकरण करते हैं। तुलसी, कबीर और मीरा जैसे महान साहित्यकार अपनी अद्वितीय रचनाओं से भारतीय ज्ञान परंपरा की पताका को और अधिक उन्नत करते हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा के अथाह समुद्र में धार्मिक ग्रंथों की वाणी काव्य, संगीत, विज्ञान, खगोल के साथ-साथ लोक साहित्य की सरिता का समागम भी अपनी विशिष्टता के दर्शन कराता है।

लोक साहित्य के अंतर्गत लोक जीवन का मौखिक रूप से अभिव्यक्तिकरण भी होता है। लोक साहित्य में लोक जीवन की विविधता एवं सहजता के दर्शन होते हैं। इसमें महानगरीय औपचारिकता का सर्वथा अभाव देखने को मिलता है। इस प्रकार इसमें अभिजात्य के विपरीत जन सामान्य की संस्कृति की विविध झांकियों के दर्शन मिलते हैं।

हिंदी साहित्य कोश के अनुसार

“लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढ़ी हो, पर आज जिसे सामान्य लोक समूह अपना मानता है और जिसमें लोक की युग युगीन वाणी की साधना समाहित रहती है, जिसमें लोक मानस प्रतिबिंबित रहता है।”¹

यदि लोक साहित्य को समझना है तो सर्वप्रथम लोक संस्कृति को निकट से आत्मसात करना होगा। लोक संस्कृति का क्षेत्र अत्यंत व्यापक होता है। लोक साहित्य तो उस संस्कृति से कुछ अंश ग्रहण कर अपना निर्माण करता है। लोक संस्कृति को यदि वास्तव में जानना है तो उसमें अंतर्निहित लोक विश्वास, लोक परंपराओं को गहनता से जानना होगा। जिसमें न केवल वनस्पति जगत, पशु जगत एवं मनुष्य आते हैं बल्कि शगुन-अपशगुन, चमत्कार, जादू टोने आदि लोक विश्वास भी समाहित होते हैं जिन पर विश्वास कर आगे बढ़ना होगा। लोक जीवन के व्रत त्यौहार, प्रचलित रीति-रिवाज, प्रथाएं सभी लोक

संस्कृति का अभिन्न हिस्सा हैं। लोक साहित्य तो लोक संस्कृति का एक हिस्सा भर है जिसमें लोकगीत एवं लोक कथाएं तथा लोक में प्रचलित शब्दावली, मुहावरे आदि आते हैं। लोक संस्कृति एवं लोक साहित्य को और अधिक समझते हुए डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय लिखते हैं

“यदि लोक संस्कृति की उपमा किसी विशाल वट वृक्ष से की जाए तो लोक साहित्य को उसकी एक शाखा मात्रा समझना चाहिए। यदि लोक संस्कृति शरीर है तो लोक साहित्य उसका एक अवयव है। लोक संस्कृति का क्षेत्र विस्तार अत्यंत व्यापक है परंतु लोक साहित्य का विस्तार संकुचित है। लोक संस्कृति की व्यापकता जनजीवन के समस्त व्यापारों में उपलब्ध होती है परंतु लोक साहित्य जनता के गीतों, कथाओं, गाथाओं, मुहावरों तक ही सीमित है। एक का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है तो दूसरे का सीमित तथा संकुचित। लोक साहित्य अंग है तो लोक संस्कृति अंगी”²

भारतीय ज्ञान परंपरा में गुरु एवं शिष्य के संबंध को अत्यंत आधार के साथ स्वीकार किया जाता है। मौखिक साहित्य परंपरा में लोक कवि लख्मी चंद की सांग कला बहुत ही प्रसिद्ध रही है। गुरु शिष्य परंपरा की ही प्रमुख कड़ी को दृढ़ता प्रदान करने वाले पंडित लख्मीचंद का जन्म सन 1901 में हरियाणा के सोनीपत जिले के जाटी कला गांव में हुआ। पिता पंडित उम्मीद राम एक साधारण किसान थे और उन्होंने अपने पुत्र लख्मीचंद को गोचरण का कार्य सौंप दिया। यहीं से प्रारंभ होता है मौखिक साहित्य में सांग की अभिवृद्धि का। निरक्षर होने के बाद भी उन्होंने ग्वालों के साथ-साथ घूम घूम कर गीतों की रचना की। उन्होंने प्रज्ञा चक्षु लोक कवि मानसिंह को अपना गुरु बनाया और पूरी श्रद्धा और निष्ठा से अपने गुरु से गीत-संगीत की दीक्षा प्राप्त की।

“पढ़े-लिखे और भाव बिना मनै छंद का बेरा न सै।

पर गावण और बजावण का मनै बालकपण तै चा सै।

इब तेरे केसे लख्मीचंद हजार बणे हांडे सै॥”³

गुरु शिष्य के इस प्रेम के लिए हरियाणा के विद्वान श्री कृष्ण चंद्र शर्मा लिखते हैं-

“वैसे तो मानसिंह अपने जमाने के साधारण कवि थे, परंतु शिष्य का लगाव और श्रद्धा इतनी गहरी थी कि गुरु प्रभाव उतना ही

फलदायक हुआ, जितना सीधे-सादे सुकरात का प्रभाव अपने शिष्य प्लेटो पर। लख्मीचंद का सारा जीवन गुरुमय रहा।”⁴

पंडित लख्मीचंद की इसी गुरु शिष्य परंपरा को आगे बढ़ाया उनके सांगी शिष्य पंडित मांगेराम ने। उन्होंने अपने गुरु पंडित लख्मीचंद की प्रतिभा एवं ज्ञान गरिमा का उल्लेख करते हुए कहा है

**“लख्मीचंद ज्ञान का गोला।
गुरु मिल्या मनै सादा भोला॥”**

पंडित लख्मीचंद ने गुरु मानसिंह को अपना ब्रह्मा, विष्णु महेश सब कुछ माना और अपने सांग में उनके नाम की वंदना की। लख्मीचंद के लिए उनके गुरु भक्ति सर्वोपरि रही। उनके पूरण भगत सांग में वे कहते हैं

**“गुरु मान सिंह जी थारै-ए गावण का सै सिर सेहरा।
इस लख्मीचंद नै कुछ और नहीं थारा-ए शरणा लेर्या।
मनै तुम ही ब्रह्मा, तुम ही विष्णु, समझ पिता और मांल्युं।
पूरणमल के बारे में, मैं कसम ज्यान की खा ल्युं॥”**

भारतीय ज्ञान परंपरा में अतिथि को भगवान का रूप माना गया है। हरियाणा में इस परंपरा में लोक जीवन की विविध झांकियों के दर्शन होते हैं। कवि लख्मीचंद अतिथि सत्कार को एक आदर्श भावना मानते हैं और कहते हैं कि ‘अतिथि यह तो नियति का ही एक रूप होता है जो अतिथि के रूप में हमारे समक्ष भोजन ग्रहण करने के निमित्त किसी का आगमन होता है।

**“आए का आदर करते, चलते नै शीश निवावै।
तुलसी इसे बंदया तै ईश्वर रोज मिलावै।
आए गए की टहल करै नर परम पदी फल पावै।
गुरुमानसिंह शिष्यलख्मीचंद नै सहज-सहज समझावै॥”**

भारतीय आचरण परंपरा के सर्वोच्च स्वरूप के दर्शन पंडित लख्मीचंद की रागनियों में होते हैं। गऊ को माता के समान महत्व भारत में दिया गया है यहां वह कोई पशु के रूप में उपयोगी नहीं मानी जाती बल्कि उनमें 33 करोड़ देवी-देवताओं का निवास स्थान माना जाता है। भारत के प्रत्येक नर-नारी को गौ माता की सेवा की प्रेरणा, पंडित लख्मीचंद जी देते हैं। लोक साहित्य परंपरा में उनके द्वारा गाई गई रागनियां, भारतवासियों के समक्ष ज्ञान की धारा के अजस्र स्रोत के रूप में प्रवाहित होती हैं।

**“गौ माता की सेवा करियो भारत के नर नारी।
चारों वेद बड़ाई करते ऋषि मुनि ब्रह्मचारी।
तैंतीस करोड़ देवता सारे गौ माता मैं रहते।
तैंतीस मुख्य देवता हों वै भली बुरी नै लहते।
उपनिषद और मनुस्मृति छःहों शास्त्र कहते।
गौ माता के हृदय के मैं सात समुंदर रहते॥”**

विवाह को भारत में एक पावन बंधन माना गया है और उससे संबंधित सभी कर्तव्यों का स्त्री और पुरुष दोनों को ही निर्वाह करना चाहिए। समाज की नारी से अधिक अपेक्षाएं होती हैं। ‘चापसिंह’ रागिनी में पंडित लख्मीचंद ने पतिव्रता नारी के गुणों को बड़े ही सुंदर एवं प्रभावी ढंग से व्यक्त किया है।

**“सासससुर और नणद, पतिसब जगह समझती तुमनै।
मैं पतिव्रता बीर सजन जाणू सूं धर्म किस्म नै॥
बखत उठ कै धंधा कर ले पति नै न्हुवा कै न्हाणा।
धोती करकै करै रसोई तो पतिव्रता का बाणा।
बालिम नै परमेश्वर समझै सजना के गुण गाणा।
जीम झूठ कै पति चल्या जा पाछै भोजन खाणा॥”**

पंडित लख्मीचंद धर्म मार्ग को सर्वोपरि बताते हैं। हर व्यक्ति सांसारिक कर्तव्यों को निभाते हुए धर्म का निर्वाह करता है। भारतीय परंपरा में धर्म को सर्वप्रथम मानते हुए सभी कार्यकलापों को किया जाता है। कुछ व्यक्ति कुसंगति में पड़कर धर्माचरण का परित्याग कर देते हैं। ‘सेठ ताराचंद’ की गाथा के माध्यम से भी पंडित लख्मीचंद ने यही संदेश दिया है। सेठ ताराचंद, सेठ हरिराम की संगति में पड़कर धर्म भ्रष्ट हो जाते हैं और अपने पुत्र तक को गिरवी रख देते हैं। तब एक साधु के ज्ञान से सेठ ताराचंद को अपनी भूल का एहसास होता है और वे पुनः धर्म के मार्ग को अपनाते हैं। पंडित लख्मीचंद ने इस किस्से के द्वारा धर्म की रीति नीति के विषय में बताया है।

**“गऊ ब्राह्मण साधु की सेवा अतिथि टहल बजाणे से।
तीन जन्म के पाप कटेंगे ईश्वर के गुण गाणे से॥
आपस के मैं रलमिल के तुम धर्म कर्म मर्याद करो।
समुद्र के सी झाल झूलग्ये फेर धर्म नै याद करो।
गऊ ब्राह्मण साधु सेवा मैं न कदे वाद विवाद करो॥”**

पंडित लख्मीचंद ने धर्म परायण व्यक्ति को ही श्रेष्ठ माना है। वेद विरोधी मनुष्य मुक्ति मार्ग को प्राप्त नहीं कर सकता।

उन्होंने अपनी रागनियों में सनातन धर्म के मार्ग पर चलने का समर्थन किया है। उसकी परंपरा रीति नीतियां सद् मार्ग पर मनुष्य को प्रशस्त करती हैं। धर्म विहीन व्यक्ति की उन्होंने निंदा की है। जब मनुष्य अधर्म का साथ देने लगता है तो वह जीवन के आदर्श मार्ग से भी विमुख हो जाता है और अन्याय का साथ देना प्रारंभ कर देता है। छल कपट और पापाचार का अनुसरण करने लगता है।

**“श्री कृष्ण जी अवतार धार कै गऊ चराया करते।
गऊ के दूध नै अमृत करकै पीया खाया करते।
राजा दलीप धर्म के कारण सुकर्म के फल बोग्या।
गऊ के बदले शरीर सौंप दिया मुक्ति मार्ग टोहग्या।
गऊ सेवा कर पाण्डों ने बड़ा-बड़ा सुख भोग्या।
कुछ सत्संग ऋषि मुनियों का कुछ कृष्ण संग होग्या॥”**

भारतीय ज्ञान परंपरा में स्वार्थ और लोभ को सर्वथा त्याज्य माना गया है, उसी का समर्थन करते हुए पंडित लख्मीचंद का भी मानना है कि सांसारिक मोह माया समाज कल्याण के समक्ष तुच्छ है। वह तो केवल एक कल्पना मात्र है। उसकी चमत्कृत दुनिया में व्यक्ति अपना वास्तविक धर्म भुला देता है जबकि संसार तो नश्वर है और उसके बंधनों के पीछे-पीछे मनुष्य काम, क्रोध और विकारों में फंस जाता है। उन्होंने ब्रह्म की सत्यता के विषय में भी अपने सांगों में उल्लेख किया है।

**“कल्पना से बण्णा नर घर और बार डेरा।
कल्पना करे तै पांचो तत्वों नै लाया फेरा।
कल्पना तजे तै तेरा मन सुखधाम है।
कल्पना के माता-पिता कल्पना के सुत दारा।
कल्पना का लख्मीचंद और कल्पना का जगसारा।
प्रभु वेद नै उचारया थारा नाम सुंदर श्याम है।”**

लोक साहित्य में लोक जीवन को विश्वास एवं लोक मर्यादा को धर्म की संज्ञा दी जाती है। उसमें व्यक्तिगत सुख के स्थान पर सामूहिक कल्याण को प्राथमिकता देने का विधान है। मानव अहंकार के वशीभूत होकर सांसारिक मोह माया में फंस जाता है। इसी कारण वह अपने परिवार को ही सुख समृद्धि देने हेतु धन संग्रह करने लगता है। किंतु वह यह भूल जाता है कि मरते समय उसके द्वारा किए गए धार्मिक कार्य ही उसका साथ देंगे। इसके अलावा यह संसार मिथ्या है जो मृत्यु के समय उसके साथ नहीं जाएगा। ऐसी धर्म की महिमा के विषय में पंडित लख्मीचंद बताते हैं।

**“लख्मीचंद सतगुरु के आगे क्युं घणी अंघाई करता।
मात-पिता, सुत बूआ बहाते बहू भाई भाई करता।
इस कुणबे के मोह में फंसकै नर खूब कमाई करता
पर मरती बरियां बंदे की एक धर्म सहाई करता।”**

धर्म के मार्ग पर चलने की रीति के मध्य जो सांसारिक बाधाएं आती हैं उनका शांत भाव से त्याग करना होगा। योग साधना सांसारिक कर्तव्यों को निभाते हुए भी की जा सकती है। उसके लिए बाह्य आडंबरों की आवश्यकता नहीं होती। भौतिकता और भोग विलास की चकाचौंध मानव को सही मार्ग से भटका सकती है। अतः सहज साधारण रूप से कर्तव्यों का पालन करते हुए भी धर्म का पालन किया जा सकता है। पंडित लख्मीचंद ने ‘मीराबाई’ नामक सांग में भक्ति की महत्ता को सुंदर ढंग से व्यक्त किया है। इस सांग के माध्यम से उन्होंने भजन को और धर्म को सभी माया मोह से ऊपर माना है। वैवाहिक जीवन के सुख को भी वे भक्ति रूपी सुख के समक्ष बेमानी मानते हैं। मीराबाई सांसारिक आकर्षणों में नहीं पड़ना चाहती और

वे अपनी मां को अपने विवाह के प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए भक्ति के विषय में बताती हैं।

**“ब्याह शादी की नहीं जरूरत परम शांति मन मैं।
तेरी बेटी की ज्ञान-ध्यान से लौ लगरी हरिभजन मैं॥
कर्म किया हुआ इस दुनिया में हरगिज नहीं टलैगा।
पाप पुण्य किया इस माणस का हरदम साथ चलैगा।
बिन सत्संग उपदेश धर्म बिन गल मैं झाड़ु घलैगा।
ज्ञान रूप की अग्नि बिन नहीं कर्म का ढेर जलैगा।
भजन करै तै राम मिलैगा, घरा रहो चाहे बन मैं॥”**

पंडित लख्मीचंद के सांग मौखिक रूप से भारतीय ज्ञान परंपरा को लोक मानस तक संप्रेषित करते हैं। लोक साहित्य में कृत्रिमता का कोई स्थान नहीं होता। वह जनता के चित्त को वाणी देने का काम करता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में

“ऐसा मान लिया जा सकता है कि जो चीजें लोकचित्त से सीधी उत्पन्न होकर सर्वसाधारण को आंदोलित, चालित और प्रभावित करती हैं वे ही लोकसाहित्य, लोकशिल्प, लोककथानक आदि नाम से पुकारी जा सकती हैं। लोकचित्त से तात्पर्य उस जनता के चित्त से है जो परंपरा-पृथित और बौद्धिक विवेचनापरक शास्त्रों और उन पर की गई टीका-टिप्पणियों के साहित्य से अपरिचित होता है।”⁵

लोकजीवन और उस पर आधारित लोक साहित्य प्रकृति से जुड़ा होता है। उसमें प्रकृति का मानवीकरण करके ज्ञान की बातों को प्रस्तुत किया जाता है। जिससे सांसारिक व्यक्ति, आत्मा-परमात्मा के अटूट संबंध को जानकर स्वार्थ और लोभ जैसी बुराइयों का त्याग कर सके। पंडित लख्मीचंद ने भी अपने सांग में परमात्मा के इस माया-मोह जन्य सांसारिक जाल को प्रकृति के माध्यम से व्यक्त किया है।

**“सुंदर बाग लगा दिया करके खूब निगाह माली नै।
जड़ चेतन की जोट मिला दी जोत जगा माली नै॥
दर्जेवार दर्शा द्यूंगा उस बागवान की करणी।
जगत पिता नै जगत रचाया कोए जगत विधि से वरणी।
अगन गगन और पवन जल से पीछे निपजी धरणी।
एक माटी का बण्णा पुतला प्रकृति मन हरणी।
जिसनै देख्या आंख्य खोल कैदी भूख भगा माली नै॥”**

भारतीय ज्ञान परंपरा सामाजिक, शाश्वत मूल्यों का सम्मिश्रित रूप है। इसके अंतर्गत संपूर्ण भारतवर्ष अपना विशिष्ट स्थान रखता है और लोक संस्कृति भारत की आत्मा है। भारतीय आत्मा की वाणी के रूप में पंडित लख्मीचंद का लोक साहित्य अपनी विशिष्ट भूमिका निभाता है। वसुधैव कुटुंबकम की भावना के साथ भारतीय ज्ञान परंपरा

समाज के समक्ष अपने आदर्शों का एक अनूठा संगम प्रस्तुत करती है। अपनी बहुरंगी विविधता में, सांसारिक कर्तव्यों को निभाते हुए, भारतीय संस्कृति अपनी विशालता में भी एक मैत्रीपूर्ण सरल भाव के साथ, संपूर्ण समाज को संगठित करने का संदेश देती है।

पंडित मदन मोहन मालवीय के शब्दों में

“भारतीय सभ्यता और संस्कृति की विशालता और उसकी महत्ता तो संपूर्ण मानव के साथ तादात्म्य संबंध स्थापित करने अर्थात् ‘वसुधैव कुटुंबकम्’ की पवित्र भावना में निहित है”।

यदि मनुष्य किसी देश का बोध करना चाहता है तो उसे उस देश के संस्कृति को आत्मसात करना होगा क्योंकि संस्कृति ही देश को प्रतिबिंब होती है। यह प्रतिबिंब उस देश के तीज त्योहार में, वहां के साहित्य में स्पष्ट रूप से झलकता है।

किसी भवन की सुंदरता केवल उसके बाहरी आवरण पर निर्भर नहीं होती। उसका सौंदर्य, उसकी सुदृढ़ता की आधारशिला पर ही आश्रित होता है। यही उसे स्थाई तो प्रदान करता है। भारतीय ज्ञान परंपरा की सुदृढ़ता उसकी लोक संस्कृति की जड़ों में अपने आप को संजोए हुए हैं यही उसकी सनातनता का मूल मंत्र है।

बाह्य कृत्रिमता की अपेक्षा किसी भाव को आत्मसात करना और अपनी जीवन शैली में चरितार्थ करना उसे सार्वभौमिक बनाता है। भारतीय ज्ञान परंपरा के आदर्श भारतीय समाज की आत्मा में रचे बसे हैं। यही कारण है कि किसी भी वैश्विक संकट के समक्ष भारत संघर्ष के साथ, अडिग रूप से, अपने आप को सदियों से स्थापित किए हुए

हैं। जो देश अपने आप को आभासी संसार में डुबाने में लगे हुए हैं वास्तव में वे मानसिक और शारीरिक रूप से अशांति और जटिलता के जंजाल में फंसे जा रहे हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा भावनात्मक रूप से एक दूसरे को जोड़ने पर बल देती है। वह संगठन में विश्वास रखती है न कि विखंडन में। वह अपनी समस्याओं का समाधान बाहर की दुनिया में नहीं खोजती बल्कि अपने संपूर्ण देश को अपना परिवार मानते हुए उसके दुख-सुख में उसका सहारा बनती है। भारतीय ज्ञान कोष असीमित है जिसकी तलहटी में आध्यात्मिकता का अथाह भंडार विद्यमान हो वह सदैव स्वयं संपूर्ण है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. हिंदी साहित्य कोश, प्रथम खंड, संपादक डॉ. धीरेंद्र वर्मा, पृष्ठ 682
2. लोक साहित्य की भूमिका, डॉ. कृष्ण देव उपाध्याय, पृष्ठ 19
3. काव्य विविधा रागिनी, नंबर 59
4. हरियाणा के कवि सूर्य लखमीचंद (1983), कृष्ण चंद्र शर्मा पृष्ठ 22-23
5. हिंदी साहित्य का बृहद इतिहास, भाग 16, राहुल सांकृत्यायन, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
6. पंडित लखमीचंद ग्रंथावली, संपादक डॉ. पूर्णचंद शर्मा, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़

- डॉ. प्रवीण भारद्वाज

(सहायक आचार्य)

शिवाजी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

भारतीय ज्ञान परंपरा के विकास में भारतीय भाषाओं का महत्व

शोध-सार

भाषा शब्द संस्कृत के 'भाष्' धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है— 'भाष व्यक्तायां वाचि' अर्थात् व्यक्त वाणी तथा 'भाष्येत् व्यक्तवाङ्' रूपेण अभिव्यज्यते इति भाषा' अर्थात् भाषा उसे कहते हैं, जो व्यक्त वाणी के रूप में संप्रेषित की जाती हो। भारत की भाषाएं केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि ज्ञान, संस्कृति और बौद्धिक परंपरा की संवाहक रही हैं। संस्कृत को भारतीय ज्ञान-परंपरा की मूल भाषा माना गया, जिसमें वेद, उपनिषद्, दर्शन, गणित, खगोल और विज्ञान के महत्वपूर्ण ग्रंथ रचे गए। बौद्ध एवं जैन परंपराओं में पालि और प्राकृत भाषाओं का विशेष योगदान रहा। हिंदी तथा उसकी उपभाषाओं— अवधी, ब्रज, मैथिली, भोजपुरी, राजस्थानी आदि में साहित्य, दर्शन और सामाजिक चेतना का व्यापक विकास हुआ। दक्षिण भारत में तमिल भाषा के संगम साहित्य, तिरुक्कुरल, आयुर्वेद, गणित, खगोल और रसायन विज्ञान से संबंधित ग्रंथों ने ज्ञान-विज्ञान को समृद्ध किया। इसी प्रकार बंगला, ओड़िया, कन्नड़, मलयालम, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं में दर्शन, भक्ति, लोकज्ञान और विज्ञान से जुड़े महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना हुई। अतः भारतीय भाषाएं भारतीय ज्ञान-विज्ञान की जीवंत परंपरा का आधार हैं, जिन्होंने विज्ञान, दर्शन, चिकित्सा, गणित और संस्कृति को पीढ़ी-दर-पीढ़ी संरक्षित एवं विकसित किया।

बीज शब्द

भारतीय भाषाएं, ज्ञान-विज्ञान, संस्कृत, तमिल, हिंदी, लोकज्ञान, दर्शन, गणित, खगोल विज्ञान, आयुर्वेद इत्यादि।

मूल आलेख

भाषा मनुष्य की सबसे सशक्त सामाजिक उपलब्धि है। भाषा के माध्यम से मनुष्य अपने अनुभव, विचार, भावनाएं और ज्ञान एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाता है। मानव जाति का सारा ज्ञान भाषा के माध्यम से ही विकसित हुआ। भारत जैसे बहुभाषी देश में भाषा केवल संचार का साधन नहीं, बल्कि संस्कृति, परंपरा, इतिहास और सामूहिक चेतना की वाहक है। भारतीय संविधान ने भारत को एक बहुभाषी राष्ट्र के रूप में स्वीकार किया है, जहां सैकड़ों भाषाएं और बोलियां सह-अस्तित्व में हैं। यह भाषायी बहुलता भारत की

सांस्कृतिक समृद्धि और सामाजिक संरचना की गहराई को दर्शाती है। किसी भी देश की संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग भाषा है। भाषा जन्मजात न होकर बल्कि समाजीकरण का अनिवार्य हिस्सा है, जिसमें परिवार, शिक्षा संस्थानों से लेकर समाज की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भारतीय भाषाएं देश की सांस्कृतिक विरासत का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं और शिक्षा में उनका महत्व अतुलनीय है। भारतीय भाषाओं में संपूर्ण सभ्यता और संस्कृति की पहचान रची-बसी है। भाषा के अर्थ को स्पष्ट करते हुए देवेंद्रनाथ शर्मा ने कहा है कि “भाषा’ शब्द संस्कृत के ‘भाष्’ धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है ‘व्यक्त वाणी’ एक प्रकार से इस धातु के अर्थ में ही भाषा का लक्षण विद्यमान है।”¹ अर्थात् भाषा उसे कहते हैं, जो व्यक्त वाणी के रूप में संप्रेषित की जाती हो। भारतीय भाषाओं में देश की संस्कृति, सभ्यता, साहित्य और समाज की संपूर्ण जानकारी निहित होती है। वे हमारी परंपराओं, रीति-रिवाजों और मूल्यों को प्रतिबिंबित करती हैं। मैथिल कोकिल ‘विद्यापति’ ने भी कहा कि देशी भाषा (बोलचाल की भाषा) सबको मीठी लगती है अर्थात् “देसिल बअना सब जन मिट्टा। तें तैंसन जंपओं अवहट्टा।”² भाषा संस्कृति की संवाहिका होती है और सामाजिक गतिविधियों को सूत्रबद्ध भी करती है। भाषा और संस्कृति का घनिष्ठ संबंध है। भाषा काठ की मूर्ति में प्राण प्रतिष्ठा है। भाषा मनुष्य को संस्कारवान् बनाती है। कोई भी मनुष्य बिना भाषा संस्कार के जीवन के व्यापक परिवेश को आत्मसात नहीं कर सकता। जिस देश की भाषा संस्कार व्यापक और सुदृढ़ होता है वही देश आर्थिक, सामाजिक, साहित्यिक, दार्शनिक और सांस्कृतिक दृष्टि से सर्वांगीण विकास करता है। हिंदी के अनन्य साधक और आधुनिक हिंदी के निर्माता भारतेन्दु हरिश्चंद्र की भाषा के संबंध में लिखी गई ये पंक्तियां आज भी भारतीय भाषाओं के लिए प्रासंगिक हैं।

(“निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल, बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल।”³)

भारतीय भाषाओं का व्यवस्थित स्वरूप जॉर्ज ग्रियर्सन के ‘लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया’ (सन् 1928) से स्पष्ट हुआ। इसमें कोई संदेह नहीं कि इससे कुछ भ्रांतियां भी उत्पन्न हो गयीं, जो आज तक चली आ रही हैं। लेकिन इससे पूर्व जॉन बीम्स की पुस्तक ‘आउट लाइन्स ऑफ़ इंडियन फिजोलॉजी’ (सन् 1866)

के प्रथम अध्याय में भारतीय भाषाओं का विधिवत् विभाजन प्रस्तुत हुआ, जिसके अनुसार आर्य-वर्ग में 11 भाषाएं, ईरानी वर्ग में 5 भाषाएं, तूरानी परिवार के तीन वर्गों में 56 भाषाएं, कोल वर्ग में 9 भाषाएं तथा द्रविड़ वर्ग में 12 भाषाएं परिगणित की गयी थीं। भारतीय भाषाओं के विकास क्रम में संस्कृत, पालि, प्राकृत अपभ्रंश और अवहट्ट का अतिप्राचीन इतिहास रहा है। इन सभी भाषाओं के विकास क्रम के पश्चात आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास भी समृद्ध हुआ। हिंदी को संवैधानिक सर्व सहमति से 14 सितंबर 1949 को संविधान सभा ने संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया। भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में 22 भाषाओं को मान्यता दी गई है। इन भाषाओं को संविधान के भाग-17 के अनुच्छेद 343 से 351 में शामिल किया गया है। आठवीं अनुसूची में शामिल भाषाएं : असमिया, बंगाली, गुजराती, हिंदी, कन्नड़, कश्मीरी, कोंकणी, मलयालम, मणिपुरी, मराठी, नेपाली, उड़िया, पंजाबी, संस्कृत, सिंधी, तमिल, तेलुगू, उर्दू, बोडो, संथाली, मैथिली और डोगरी अनुच्छेद 343 (1) के तहत हिंदी संघ की राजभाषा बनी और लिपि देवनागरी बनी।

भारतीय भाषाओं में ही हमारे धार्मिक ग्रंथ, लोककथाएं, कहावतें, रीति-रिवाज, लोकगीत और जीवन-दर्शन सुरक्षित हैं। यदि भारतीय भाषाएं उपेक्षित होंगी, तो उनके साथ जुड़ी संस्कृति, नैतिक मूल्य, परंपराएं और सामाजिक समरसता भी कमजोर पड़ जाएंगी। भारतीय भाषाएं ही विविधता के बीच एकता की भावना को सुदृढ़ करती हैं और विभिन्न धर्म, जाति व पंथों के लोगों को जोड़ने का कार्य करती हैं। इसलिए यह कहना उचित है कि भारतीय भाषाओं का संरक्षण और संवर्धन ही भारतीय संस्कृति की रक्षा का सबसे सशक्त माध्यम है। आज प्रत्येक देश आधुनिकता की दौड़ में अनेक भाषाओं की जरूरतों पर अपनी राजभाषा या मातृभाषा भूल रहा है या प्राथमिक भाषा के दर्जे को छीन रहा है। लेकिन हम भारतीयों ने आज भी अपनी भाषाएं, परंपराओं और मूल्यों को नहीं छोड़ा है। भाषा एक प्रतीक है, माध्यम है, सभ्यता और संस्कृति की पहचान है। भाषा के बिना मनुष्य का जीवन संभव नहीं है। भाषा में हम सपने देखते हैं और सपने बुनते हैं। भाषा के माध्यम से ही हम अपने विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। भारतीय भाषाओं के उत्थान के लिए 'भारतेंदु हरिश्चंद्र' की लेखनी बरबस बोल पड़ती है— "पढ़ो लिखो कोउ लाख बिध भाषा बहुत प्रकार। पै जबही कछु सोचिहो निज भाषा अनुसार।"⁴ देश की एकता के लिए भारतीय भाषाओं का महत्व अत्यंत आवश्यक है। जैसे सूर्यमुखी के फूल की पंखुड़ियों के अस्तित्व की वजह से सूरजमुखी का फूल, फूल है। उसी प्रकार कई भारतीय भाषाओं के संगुम्फन की वजह से भारतीय भाषाओं

का अस्तित्व है। भारतीय भाषाएं मूलतः संस्कृत एवं देवनागरी लिपि के कारण ही वृहद भारत से जुड़ी हुई हैं।

भारत अपनी सांस्कृतिक चेतना एवं सभ्यता के कारण ही निरन्तर प्रकाशमान है। भारतीय भाषाओं का जुड़ाव उसकी सभ्यता और प्राचीन संस्कृति से है। भाषा मानव के व्यवहार का मुख्य आयाम है, मनुष्य के समस्त विचार एवं आचरण भाषा के माध्यम से ही संपन्न होते हैं। गांधी भी स्वदेशी विचार और भाषा को लेकर एक विशिष्ट विचार प्रकट किए हैं— "हमें अपनी सभी भाषाओं को उज्ज्वल-शानदार बनाना चाहिए। हमें अपनी भाषा में ही शिक्षा लेनी चाहिए-इसके क्या मानी है, इसे ज्यादा समझाने का यह स्थान नहीं है। जो अंग्रेजी पुस्तकें काम की हैं, उनका हमें अपनी भाषा में अनुवाद करना होगा। बहुत से शास्त्र सीखने का दंभ और वहम हमें छोड़ना होगा। सबसे पहले तो धर्म की शिक्षा या नीति की शिक्षा दी जानी चाहिए। हर एक पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानी को अपनी भाषा का, हिंदू को संस्कृत का, मुसलमान को अरबी का, पारसी को फारसी का और सबको हिंदी का ज्ञान होना चाहिए। कुछ हिन्दुओं को अरबी और कुछ मुसलमानों और पारसियों को संस्कृत सीखनी चाहिए। सारे हिन्दुस्तान के लिए जो भाषा चाहिए, वह तो हिंदी ही होनी चाहिए।"⁵ भारत एक विविध भाषाई देश है, जहां कई भाषाएं बोली जाती हैं। इन भाषाओं का महत्व शिक्षा के लिए अनिवार्य है। भारत में विविध तरह के भाषा बोलने वाले लोग रहते हैं और अपनी भाषा में ही अपने भावों और विचारों को प्रस्तुत करते हैं। भाषाएं नदी के प्रवाह की तरह होती हैं। कबीर ने ठीक ही कहा है 'संस्कृत है कूपजल, भाखा बहता नीर'।

भाषा मात्र ध्वनियों, अक्षर और शब्द भंडार की व्यवस्था नहीं है बल्कि वह अपने साथ अनेक विचार भी लाती है। भाषा संपूर्ण सृष्टि को देखने का एक दृष्टिकोण प्रदान करती है। उसी समाज, जाति अथवा राष्ट्र को उन्नत समझा जाता है जिसका साहित्य श्रेष्ठ कोटि का होता है। समाज के जैसे विचार होंगे, भावनाएं होंगी, उसी प्रकार का साहित्य भी होगा। बिना भाषा के माध्यम के हम उच्च कोटि के साहित्य का सृजन नहीं कर सकते हैं। अपनी संस्कृति के संरक्षण हेतु अपनी भाषाओं का अस्तित्व बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है। बिना भाषा के संस्कृति का विकास और निर्माण संभव नहीं है। फलस्वरूप भाषा और संस्कृति का अभिन्न संबंध है। भारतीय भाषा के उन्नायक और उसका प्रचार प्रसार करने वालों में 'भारतेंदु हरिश्चंद्र' का नाम अत्यंत आदरपूर्वक लिया जाता है। वह कहते हैं कि "परदेशी वस्तु और परदेशी भाषा का भरोसा मत रखो। अपने देश में अपनी भाषा में उन्नति करो।"⁶

यह सर्वविदित सत्य है कि एकता में ही शक्ति निहित होती है। हमारा भारत देश विभिन्नता में एकता की एक मिसाल है। राष्ट्रीय

एकता ही वह भावना है जो भारत में विभिन्न धर्मों, जातियों, भाषा, सभ्यता व संस्कृति के अनुयायियों को एक सूत्र में पिरोए रखती है। भारतीय भाषाओं का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। संस्कृत को भारतीय भाषाओं की मूल भाषा माना जाता है। ऋग्वेद (लगभग 1500 ई.पू.) संस्कृत भाषा का प्राचीनतम प्रमाण है। भारतीय जीवन धारा में धार्मिक, सामाजिक कार्य, अनुष्ठानों और संस्कारों की भाषा संस्कृत ही है। भारत के साहित्यिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, आध्यात्मिक और राजनीतिक जीवन की पूरी व्याख्या संस्कृत भाषा के वाङ्मय में समाविष्ट है। देववाणी संस्कृत साहित्य की विशालता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है। संस्कृत भाषा के कारण ही भारत जगतगुरु कहलाया। बौद्ध और जैन परंपरा में पालि और प्राकृत भाषाओं का विकास हुआ, जिससे जनसाधारण तक धर्म और दर्शन पहुंचा। मध्यकाल में संस्कृत से अपभ्रंश भाषाएं विकसित हुईं, जिनसे आधुनिक भारतीय भाषाओं की नींव पड़ी। इस काल में अवधी, ब्रज, मैथिली जैसी भाषाओं में भक्ति साहित्य रचा गया। विद्यापति, कबीरदास, तुलसीदास, सूरदास, मीरा, बिहारी, पद्माकर जैसे कवियों ने भारतीय भाषाओं को जनभाषा का स्वरूप दिया। औपनिवेशिक काल में भारतीय भाषाओं का मानकीकरण हुआ। मुद्रण कला, शिक्षा और पत्रकारिता के विकास ने भाषाओं को नयी दिशा दी। हिंदी, बंगला, मराठी, तमिल, तेलुगु आदि भाषाओं में आधुनिक साहित्य का विकास हुआ। वर्तमान समय में आज बहुत सारी भाषाओं ने अपने पैर पसारे हैं लेकिन संस्कृत भाषा ही हमारी अन्य भारतीय भाषाओं की जननी रही है, इस तथ्य को नजरंदाज नहीं किया जा सकता है। इस संदर्भ में राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' लिखते हैं "हिंदी, उर्दू, बंगला, मराठी, गुजराती, उड़िया, पंजाबी, असमी, गुरखाली और कश्मीरी आदि भाषाएं आर्य-भाषाएं हैं जो संस्कृत की परंपरा से उत्पन्न हुई हैं।"⁷

भारत में कई भाषाएं, उपभाषाएं एवं बोलियां बोली जाती हैं, जो देश की भाषाई विविधता को दर्शाती हैं। यह विविधता हमारी सांस्कृतिक पहचान का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। इन भारतीय भाषाओं का महत्व शिक्षा, व्यापार क्षेत्र में अत्यंत आवश्यक है। शिक्षा के माध्यम से ही भारतीय भाषाओं को बढ़ावा मिलेगा। वे छात्रों को अपनी मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करने में मदद करती हैं, जिससे उन्हें अपने विषय को बेहतर ढंग से समझने में मदद मिलती है। भारतीय भाषाओं का अध्ययन करना और फिर उसको शिक्षा के क्षेत्र में बढ़ावा देना, यह भी देश की एकता के लिए महत्वपूर्ण है। भारतीय भाषाओं से साहित्य और संस्कृति को बढ़ावा मिलता है। इससे उन्हें अपनी सांस्कृतिक धरोहर और विरासत की अस्मिता का ज्ञान होता है। भारतेंदु लिखते हैं "अंग्रेजी पढ़ि के जदपि सब गुन होत प्रवीन। ये निज भाषा ज्ञान बिन रहत हीन के हीन"⁸

दक्षिण भारत में तमिलनाडु की तमिल एक प्राचीन द्रविड़ भाषा है, जिसमें संगम साहित्य और थिरुक्कुरल जैसे महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे गए हैं। कन्नड़ भाषा में मध्वाचार्य ने बहुत ही महत्वपूर्ण ग्रंथ 'सर्व मूल ग्रंथ' की रचना की है जिसमें दर्शन और विज्ञान के सिद्धांतों का वर्णन है। इसी प्रकार उड़िया में सरलादास द्वारा लिखित 'सरला महाभारत', रूप गोस्वामी द्वारा लिखित 'जगन्नाथ वल्लभ नाटक' तथा जगन्नाथ दास द्वारा लिखित 'भागवत' ग्रंथ महत्वपूर्ण हैं। तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, मराठी, बांग्ला, गुजराती, उड़िया आदि सभी भाषाओं का ज्ञान-विज्ञान भारतीय संस्कृति और साहित्य की धरोहर है। जिनमें अद्वितीय काव्य, दर्शन, लोक कथाएं, धर्मग्रंथ और जीवन व्यवहार के ज्ञान विज्ञान के विभिन्न ग्रंथों की रचना हुई है।

भारतीय ज्ञान परंपरा और भारतीय शिक्षा प्रणाली के क्षेत्र में भारतीय भाषाओं का अध्ययन भारत की एकता के लिए महत्वपूर्ण है। भारतीय भाषाओं के अस्तित्व की वजह से ही संपूर्ण देश की विरासत कायम है। इसलिए अध्ययन के क्षेत्र में इन भाषाओं का योगदान अतुलनीय है। "भाषा की शक्ति कठिन नहीं, आसान शब्दों के प्रयोग से निखरती है। भाषा का सौन्दर्य तब बढ़ता है, जब लेखक उन सभी शब्दों को सहानुभूति से देखता है जो जनता की जीभ पर चढ़े हुए हैं। कोई भी शब्द केवल इसीलिए ग्राह्य नहीं होता कि वह संस्कृत-भंडार का है, न शब्दों का अनादर केवल इसलिए उचित है कि वे अरबी या फारसी के भंडार से आए हैं। जो भी शब्द प्रचलित भाषा में चल रहे हैं, जो भी शब्द सुगम, सुन्दर और अर्थपूर्ण हैं, साहित्यिक भाषा भी उन्हीं शब्दों को लेकर काम करती है, यह विचार आज भी समीचीन समझा जाता है।"⁹

भारतीय भाषाएं, न सिर्फ भारतीय समाज का अभिन्न हिस्सा है, बल्कि भारतीय प्रवासियों द्वारा सीमापार न केवल संवाद का माध्यम है अपितु ये हमारी सांस्कृतिक और ऐतिहासिक धरोहर के प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। भारत में भारतीय भाषाओं के संरक्षण का एक अहम हिस्सा भारतीय शिक्षा प्रणाली है। मातृभाषा की चिंता व्यक्त करते हुए आधुनिक हिंदी के विशिष्ट कवि केदारनाथ सिंह लिखते हैं— "ओ मेरी भाषा मैं लौटता हूं तुममें जब चुप रहते-रहते अकड़ जाती है मेरी जीभ दुखने लगती है मेरी आत्मा"¹⁰

आज के तकनीकी युग में भारतीय भाषाओं का संरक्षण अवश्य ही चुनौतीपूर्ण है। दूसरी तरफ अंग्रेजी भाषा का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। आज के समय में हिंदी भाषा की चिंता व्यक्त करते हुए कवि 'रघुवीर सहाय' अपनी कविता में खेद व्यक्त करते हैं कि "अंग्रेजों ने अंग्रेजी पढ़ाकर प्रजा बनाई अंग्रेजी पढ़ाकर अब हम राजा बना रहे हैं।"¹¹ लेकिन आज ऐसे कई तकनीकी विकास हो रहे हैं, जो भारतीय भाषाओं को डिजिटल रूप प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा

रहे हैं। इंटरनेट और डिजिटल मीडिया ने भारतीय भाषाओं के विकास और निर्माण के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' में भी भारतीय भाषाओं का शिक्षा में महत्व को लेकर विशेष ध्यान दिया गया। भारतीय भाषाएं भारत की सांस्कृतिक और धार्मिक विविधता का प्रमुख हिस्सा हैं। भारतीय भाषाएं हमारे वर्तमान और अतीत को भविष्य का आकार देती हैं, साथ ही अतीत को समझने की दृष्टि। भारतीय भाषाओं का संरक्षण प्रचार और प्रसार भारतीय समाज की एकता, विविधता, और समृद्धि का आधार है। भारतीय भाषाएं समाज की विविधता को बढ़ावा देती हैं। भारतीय भाषाओं का संरक्षण कर ही भारत अपनी सांस्कृतिक पहचान को वैश्विक मंच पर सशक्त कर 'विकसित भारत' के लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगा।

संदर्भ-ग्रंथ सूची:

1. देवेन्द्र नाथ शर्मा, भाषा विज्ञान की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, ग्यारहवां संस्करण 2018, पृष्ठ संख्या 20
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, संस्करण नवीनतम, पृष्ठ संख्या 18
3. संपादक ओमप्रकाश सिंह, भारतेन्दु हरिश्चंद्र ग्रंथावली - 4, प्रकाशन संस्थान, 2008, पृष्ठ संख्या 377
4. संपादक ओमप्रकाश सिंह, भारतेन्दु हरिश्चंद्र ग्रंथावली - 4, प्रकाशन संस्थान, 2008, पृष्ठ संख्या 378
5. महात्मा गांधी, हिंद स्वराज, शिक्षा भारती, संस्करण 2013, पृष्ठ संख्या 69
6. संपादक ओमप्रकाश सिंह, भारतेन्दु हरिश्चंद्र ग्रंथावली - 6, प्रकाशन संस्थान, 2008, पृष्ठ संख्या 71
7. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, तीसरा संस्करण 2020, पृष्ठ संख्या 28
8. संपादक ओमप्रकाश सिंह, भारतेन्दु हरिश्चंद्र ग्रंथावली - 4, प्रकाशन संस्थान, 2008, पृष्ठ संख्या 377
9. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, तीसरा संस्करण पुनरावृत्ति 2020, पृष्ठ संख्या 325
10. संपादक परमानंद श्रीवास्तव और अनिल त्रिपाठी, प्रतिनिधि कविताएं केदारनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन, बारहवां संस्करण 2019, पृष्ठ संख्या 13
11. संपादक सुरेश शर्मा, प्रतिनिधि कविताएं रघुवीर सहाय, राजकमल प्रकाशन, आठवां संस्करण 2018, पृष्ठ संख्या 149

-राम भुआल

(शोधार्थी)

हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

राम भक्ति काव्य में भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल्य (विशेष संदर्भ रामचरितमानस)

मध्यकालीन भारत का इतिहास सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक उथल-पुथल से भरा हुआ था। विदेशी सत्ता की छाया, जातीय विघटन और सामाजिक असमानताओं ने जनजीवन को असंतुलित कर दिया था। ऐसे समय में एक ऐसी धारा की आवश्यकता थी जो समाज को न केवल धार्मिक दृष्टि से बल्कि नैतिक और मानवीय दृष्टि से भी नयी चेतना प्रदान करे। इसी पृष्ठभूमि में भक्ति आंदोलन का उदय हुआ। इस आंदोलन ने शास्त्राधारित कठोरता और रूढ़ियों को चुनौती देते हुए ईश्वर से सीधे संबंध की राह खोली। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कथन है कि “भक्ति आंदोलन ने केवल धार्मिक ही नहीं, बल्कि सामाजिक क्रांति का भी मार्ग प्रशस्त किया।”¹ इससे स्पष्ट होता है कि यह आंदोलन लोकमानस में नयी शक्ति और विश्वास जगाने का माध्यम बना।

रामभक्ति काव्य भक्ति आंदोलन की प्रमुख काव्यधारा थी। इसमें भगवान राम के आदर्श जीवन के माध्यम से मर्यादा, सत्य, धर्म और करुणा जैसे मूल्यों को स्थापित किया गया। तुलसीदास ने अपने ‘रामचरितमानस’ में राम को केवल ईश्वर के रूप में नहीं, बल्कि एक ऐसे लोकनायक के रूप में चित्रित किया जिनका जीवन समाज के लिए आदर्श है। उन्होंने संस्कृत जैसी दुरूह भाषा के बजाय अवधी जैसी लोकभाषा का चयन किया, ताकि सामान्य जन भी ज्ञान और भक्ति की गहराई को समझ सके। रामचरितमानस के आरंभ में ही तुलसीदास अपने काव्य का मूल आधार बताते हुए लिखते हैं— “भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ। याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्॥” (रामचरितमानस, बालकांड, मंगलाचरण)

यह मंगलाचरण भक्ति के दो प्रमुख स्तंभों—श्रद्धा और विश्वास—को ज्ञान की अनिवार्य शर्त बताता है। तुलसी के लिए ज्ञान मात्र बौद्धिक साधना नहीं, बल्कि विश्वास और श्रद्धा से ओतप्रोत जीवन का मार्ग है। इसी से उनका काव्य जनमानस में गहराई से प्रतिष्ठित हुआ। तुलसी का समाज-दर्शन भारतीय संस्कृति के आदर्श मूल्यों की पुनःस्थापना है, जिसमें मर्यादा और करुणा को जीवन के केंद्र में रखा गया है। इस दृष्टि से प्रस्तावना स्पष्ट करती है कि रामचरितमानस केवल कथा-काव्य नहीं, बल्कि भारतीय ज्ञान परंपरा और भक्ति आंदोलन दोनों का संगम है। यह ग्रंथ उस समय के समाज के लिए जीवन का दिशा-निर्देशक बना और आज भी अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए है।

भारतीय ज्ञान परंपरा की जड़ें वेद-उपनिषद, गीता और आचार-ग्रंथों में निहित हैं। उपनिषदों ने ब्रह्म को सत्य और ज्ञान का स्वरूप बताया, गीता ने कर्म, ज्ञान और भक्ति को एकीकृत मार्ग के रूप में प्रस्तुत किया और आचार-ग्रंथों ने धर्म-मर्यादा के जीवनोपयोगी नियम बताए। यही परंपरा मध्यकालीन संत कवियों के माध्यम से लोकजीवन में पुनः प्रवाहित हुई। तुलसीदास ने इसी अखंड परंपरा को अपने मानस में समाहित किया और लोकभाषा में उसे मूर्त रूप दिया।

तुलसी का काव्य भारतीय परंपरा के तीन मूल तत्वों—ज्ञान, भक्ति और वैराग्य—का संगम है, जो उन्हें अन्य कवियों से अलग स्थान देता है। इस कथन से स्पष्ट है कि तुलसीदास ने भारतीय परंपरा के गूढ़ दार्शनिक तत्वों को साधारण भाषा और सरल शैली में समाज के हर वर्ग तक पहुंचाया।

रामचरितमानस में ज्ञान को शुष्क बौद्धिक तर्क के रूप में नहीं, बल्कि हृदयगत अनुभव और आचरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अरण्यकांड का प्रसिद्ध दोहा इसका प्रमाण है— “रामहि केवल प्रेम पियारा। जानि लेउ जो जाननिहारा॥” (रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा 117)

यह दोहा स्पष्ट करता है कि परमात्मा की प्राप्ति का सर्वोच्च साधन केवल ज्ञान या वैराग्य नहीं, बल्कि प्रेम है। ज्ञान का वास्तविक स्वरूप वही है जो भक्ति और करुणा के साथ जुड़कर आत्मा को ईश्वर से जोड़ दे।

सत्य और मर्यादा को भी भारतीय ज्ञान परंपरा का मूल माना गया है। रामचरितमानस में राम के चरित्र को इस रूप में चित्रित किया गया है— “सत्य प्रतिज्ञ रघुकुल रीती। चलहिं प्रान जेहि लागि प्रीती॥” (रामचरितमानस, अयोध्याकांड, चौपाई 131/2)

राम का जीवन यह शिक्षा देता है कि ज्ञान की कसौटी केवल चिंतन नहीं, बल्कि आचरण है। यही कारण है कि रामचरितमानस का पाठ केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं बल्कि नैतिकता का पाठ भी है। भक्ति आंदोलन की सबसे बड़ी देन यह रही कि उसने ज्ञान को करुणा और मानवीयता से जोड़ा और उसे जीवन के व्यावहारिक पक्ष में उतारा। यह विचार स्पष्ट करता है कि तुलसी का ज्ञान-दर्शन केवल अध्यात्म तक सीमित नहीं, बल्कि समाज और संस्कृति दोनों

को समृद्ध करने वाला है। इस प्रकार भारतीय ज्ञान परंपरा का स्वरूप रामचरितमानस में सत्य, धर्म, मर्यादा और करुणा जैसे मूल्यों के रूप में प्रकट होता है। तुलसी ने वेद-उपनिषद् और गीता की गूढ़ शिक्षाओं को लोकभाषा में सहज कर दिया। यही कारण है कि रामचरितमानस भारतीय ज्ञान परंपरा का दर्पण माना जाता है।

मध्यकालीन भारत में भक्ति आंदोलन ने सामाजिक और धार्मिक जीवन को नयी दिशा प्रदान की। यह आंदोलन केवल वैचारिक क्रांति नहीं था, बल्कि जन-जन की आस्था और संवेदना का प्रतिनिधित्व करता था। निर्गुण और सगुण-दो धाराओं में बंटा यह आंदोलन ईश्वर-भक्ति का सहज और सुलभ मार्ग प्रस्तुत करता है। निर्गुण धारा में कबीर, दादू, रैदास आदि संतों ने निराकार परमात्मा की उपासना को महत्व दिया, वहीं सगुण धारा में तुलसीदास, सूरदास और मीराबाई ने साकार ईश्वर के प्रेम और भक्ति की गाथा गाई। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है—“भक्ति आंदोलन ने भारतीय समाज को शास्त्रीय ग्रंथों की सीमाओं से मुक्त कर ईश्वर तक पहुंचने का सरल मार्ग दिया।”⁵

रामभक्ति काव्य सगुण भक्ति की विशेष शाखा है। इसमें भगवान राम को आदर्श पुरुष, धर्मनिष्ठ राजा और करुणा-सागर के रूप में प्रस्तुत किया गया। रामभक्ति धारा ने समाज को केवल धार्मिक आस्था ही नहीं दी, बल्कि सामाजिक और नैतिक जीवन के आदर्श भी दिए। गोस्वामी तुलसीदास इस धारा के सर्वोच्च कवि हैं। उन्होंने रामचरितमानस में लोकभाषा के माध्यम से ज्ञान, भक्ति और नीति का ऐसा समंजस किया कि यह काव्य जनमानस का धर्मग्रंथ बन गया। तुलसी लिखते हैं - “सिया राममय सब जग जानी। करऊँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥” (रामचरितमानस, अरण्यकांड, चौपाई 7/1) इस चौपाई से स्पष्ट होता है कि तुलसी का दृष्टिकोण संपूर्ण जगत में रामत्व की अनुभूति कराना था। यह केवल काव्य की सीमा नहीं, बल्कि भक्ति आंदोलन की सबसे बड़ी देन थी।

लोकभाषा में काव्य रचना भक्ति आंदोलन की एक प्रमुख विशेषता रही। संस्कृत के कठिन शास्त्रों की जगह अवधी, ब्रज और राजस्थानी जैसी भाषाओं ने समाज के सभी वर्गों को धर्म-ज्ञान का सहभागी बनाया। भक्ति काव्य ने समाज में धार्मिक चेतना को लोकभाषा का सहारा देकर जन-साधारण तक पहुंचाया और यही इसकी सबसे बड़ी क्रांति थी। इस दृष्टि से रामचरितमानस एक लोकधर्मी ग्रंथ है जो भक्ति आंदोलन की आत्मा को प्रकट करता है।

तुलसीदास ने अन्य राम कवियों की अपेक्षा समाज-दर्शन को अधिक महत्व दिया। सूरदास ने जहां प्रेममय भक्ति को केंद्र में रखा, वहीं तुलसी ने नीति, धर्म और मर्यादा को रामकथा के माध्यम से स्थापित किया। इस प्रकार भक्ति आंदोलन और रामभक्ति काव्य

भारतीय समाज की सांस्कृतिक चेतना को पुनर्जीवित करने का साधन बने।

रामचरितमानस केवल रामकथा का पुनर्लेखन नहीं है, बल्कि यह भारतीय ज्ञान परंपरा का दर्पण है। तुलसीदास ने ज्ञान, भक्ति और वैराग्य के त्रिवेणी मार्ग को अपनी काव्य-चेतना में समाहित कर समाज के लिए एक आदर्श प्रस्तुत किया। उनका उद्देश्य केवल धार्मिक कथा सुनाना नहीं था, बल्कि लोकजीवन को नीति और मूल्य का मार्गदर्शन देना भी था। तुलसी का काव्य केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि भारतीय समाज की आत्मा का महाकाव्य है।

रामचरितमानस में अनेक स्थानों पर ज्ञान, नीति और धर्म के सूत्र मिलते हैं। अयोध्याकांड में राम और भरत के संवाद को देखें, तो वहां भाई-भाई का प्रेम और राज्य-मर्यादा का आदर्श प्रकट होता है। तुलसी ने लिखा— “सब नर परस्पर करहिं प्रीति। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति॥” (रामचरितमानस, अयोध्याकांड, चौपाई 131/3) यह चौपाई बताती है कि ज्ञान और नीति तभी सार्थक हैं जब वह पारिवारिक और सामाजिक संबंधों को सुदृढ़ करे। यही भारतीय ज्ञान परंपरा का जीवंत स्वरूप है।

रामचरितमानस में लोकशिक्षण का भी विशेष महत्व है। अवधी भाषा में रचा गया यह महाकाव्य समाज के प्रत्येक वर्ग तक पहुंचा। राम के चरित्र में मर्यादा, सत्य और करुणा का जो आदर्श प्रस्तुत हुआ, वह भारतीय ज्ञान परंपरा की आत्मा है। तुलसी कहते हैं— “नर मुनि अनुचित एकहु न करई। सुनि सिय राम चरित मन हरई॥” (रामचरितमानस, बालकांड, चौपाई 34/2) इस कथन में स्पष्ट है कि रामकथा का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि आचरण में शुद्धता और नीति का बोध कराना है।

तुलसीदास ने मानस के माध्यम से ज्ञान परंपरा के सत्य, धर्म, करुणा और मर्यादा जैसे मूल्यों को लोकजीवन में पुनः प्रतिष्ठित किया। यही कारण है कि रामचरितमानस भारतीय समाज का नैतिक और आध्यात्मिक दर्पण बन गया। तुलसी का ज्ञान-दर्शन केवल धर्म की सीमाओं में नहीं बंधा, बल्कि उसमें समाज, राज्य और परिवार सबके लिए आदर्श मूल्य उपस्थित हैं। इस दृष्टि से रामचरितमानस भारतीय ज्ञान परंपरा के आदर्शों का जीवंत दस्तावेज है।

भारतीय समाज के निर्माण में नीति और सामाजिक मूल्यों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास ने रामकथा के माध्यम से इन मूल्यों को स्पष्ट किया। सत्य, मर्यादा, न्याय, दया और करुणा मानस के प्रमुख नीतिमूल्य हैं, जो व्यक्ति और समाज दोनों के लिए आदर्श मार्ग प्रस्तुत करते हैं। राम के जीवन में वचन-पालन और सत्य के प्रति अडिग

निष्ठा रघुकुल की मर्यादा के रूप में दिखाई देती है— “सत्य प्रतिज्ञ रघुकुल रीती। चलहिं प्रान जेहि लागि प्रीती॥” (रामचरितमानस, अयोध्याकांड, चौपाई 131/2) यह चौपाई स्पष्ट करती है कि राजवंश की वास्तविक प्रतिष्ठा सत्यनिष्ठा में निहित है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार—“तुलसीदास ने राम के माध्यम से भारतीय समाज के लिए सत्य और मर्यादा का आदर्श स्थापित किया, जिसने आगे की पीढ़ियों के लिए आचरण की कसौटी निर्धारित की।”⁶

सामाजिक मूल्यों की दृष्टि से राम-भरत संवाद और राम-हनुमान संबंध विशेष महत्व रखते हैं। अयोध्याकांड में भरत का राम के प्रति समर्पण भाई-भाई के संबंधों की मर्यादा को दर्शाता है। इसी प्रकार हनुमान का विनम्र सेवाभाव गुरु-शिष्य और सेवक-स्वामी संबंधों की आदर्श मिसाल है। तुलसीदास ने लिखा— “राम काज कीन्हें बिनु मोहि कहां विश्राम।” (रामचरितमानस, सुंदरकांड, चौपाई 35/4) यह चौपाई हनुमान की निष्काम सेवा-भावना का प्रतीक है। यह भक्ति आंदोलन की एक उपलब्धि है जहां भक्ति का सच्चा मूल्य तभी है जब वह नीति और सेवा के रूप में समाज में प्रतिफलित हो।

परिवार, समाज और राज्य की दृष्टि से रामचरितमानस में आदर्श प्रस्तुत किए गए हैं। राजा-प्रजा संबंधों में राम को ‘लोकपाल’ के रूप में चित्रित किया गया है, जो धर्म और न्याय पर आधारित शासन चलाते हैं। तुलसीदास ने रामराज्य का चित्रण करते हुए कहा— “दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहीं काहुहि व्यापा॥” (रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा 21)

यह रामराज्य समाज में समता, सुरक्षा और न्याय के आदर्श मूल्यों का प्रत्यक्ष रूप है। रामराज्य तुलसी की समाज-दृष्टि का सर्वोच्च आदर्श है, जिसमें धर्म और नीति का पूर्ण सामंजस्य है। इस प्रकार नीतिमूल्य और सामाजिक मूल्य मानस में भारतीय संस्कृति के जीवंत प्रतीक बनकर सामने आते हैं।

रामचरितमानस केवल नीति और सामाजिक आदर्शों का ग्रंथ नहीं, बल्कि यह गहन आध्यात्मिक और दार्शनिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। तुलसीदास ने भक्ति और ज्ञान का अद्वैत समंजस किया। गीता की तरह उन्होंने भी यह संदेश दिया कि ज्ञान और भक्ति परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि पूरक हैं। तुलसी की भक्ति अद्वैत दर्शन के साथ गुंथी हुई है, जहां आत्मा और परमात्मा का संबंध प्रेम में विलीन हो जाता है। अरण्यकांड का यह प्रसिद्ध दोहा इस दृष्टि का प्रमाण है— “रामहि केवल प्रेम पियारा। जानि लेउ जो जाननिहारा॥” (रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा 117) यहां भक्ति को ज्ञान से श्रेष्ठ बताते हुए भी उसका वास्तविक अर्थ प्रेम बताया गया है। ज्ञान यदि प्रेम से रहित हो तो वह केवल बौद्धिक अभ्यास है, पर प्रेममय

भक्ति आत्मा को परमात्मा से जोड़ देती है। यही आध्यात्मिक मूल्य मानस की आत्मा है।

रामचरितमानस में ईश्वर-भक्ति और आत्मा-परमात्मा का संबंध स्पष्ट रूप से चित्रित है। राम को सगुण-निर्गुण दोनों रूपों में स्वीकार करते हुए तुलसी ने अद्वैत-भक्ति की दृष्टि को प्रस्तुत किया। तुलसी स्वयं कहते हैं— “सगुनहि अगुनहि नहीं कछु भेदा। गावत भेद करइ जे वेदा॥” (रामचरितमानस, बालकांड, चौपाई 117/4) यह चौपाई बताती है कि सगुण और निर्गुण में कोई भेद नहीं है। तुलसी का दर्शन अद्वैत की भूमि पर खड़ा है, जहां भक्ति और ज्ञान का अंतर मिट जाता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से रामचरितमानस आत्म-परिष्कार और ईश्वर-भक्ति का मार्गदर्शक है। इसका उद्देश्य केवल मोक्ष नहीं, बल्कि जीवन को धर्म, सत्य और करुणा से ओतप्रोत करना है। रामचरितमानस में प्रस्तुत आध्यात्मिक मूल्य केवल संन्यासियों के लिए नहीं, बल्कि गृहस्थ समाज के लिए भी उतने ही आवश्यक हैं।

दार्शनिक दृष्टि से मानस अद्वैत भक्ति का ग्रंथ है। इसमें आत्मा और परमात्मा का संबंध द्वैत से ऊपर उठकर प्रेम और भक्ति में परिणत होता है। तुलसीदास ने यह स्थापित किया कि ज्ञान, भक्ति और वैराग्य तीनों मिलकर ही मानव जीवन को पूर्णता प्रदान करते हैं। यही कारण है कि मानस आज भी भारतीय दार्शनिक परंपरा का एक जीवंत दर्पण है।

रामचरितमानस की शिक्षाएं केवल मध्यकालीन समाज तक सीमित नहीं रहीं, बल्कि आज के समय में भी समान रूप से प्रासंगिक हैं। वर्तमान समाज राजनीतिक अस्थिरता, नैतिक पतन और सांस्कृतिक विघटन से जूझ रहा है। ऐसे समय में तुलसीदास का यह ग्रंथ सत्य, मर्यादा, करुणा और न्याय जैसे मूल्यों को पुनः स्मरण कराता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कथन है कि “तुलसी के आदर्श केवल धार्मिक नहीं, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक जीवन के लिए भी दिशा-निर्देशक हैं।”⁷

रामराज्य का आदर्श आज के लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए भी प्रेरणास्रोत है। उत्तरकांड में तुलसी ने रामराज्य का चित्रण करते हुए कहा— “दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहीं काहुहि व्यापा॥” (रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा 21) यह केवल धार्मिक कल्पना नहीं, बल्कि एक ऐसे समाज का आदर्श है जहां न्याय, समता और सुरक्षा सबको समान रूप से प्राप्त हों। समकालीन राजनीति और शासन प्रणाली के लिए यह संदेश आज भी उतना ही महत्वपूर्ण है।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखें तो रामचरितमानस परिवार और समाज के भीतर नैतिक मूल्यों को स्थापित करता है। भरत और राम

का भाई-भाई का प्रेम, हनुमान की सेवा भावना और सीता की मर्यादा नारी आदर्श को आज भी नयी दृष्टि प्रदान करते हैं। तुलसी के चरित्र चित्रण में जो मूल्य हैं, वे आज के समाज में नैतिकता और शिक्षा के क्षेत्र में विशेष उपयोगी हैं।

सांस्कृतिक दृष्टि से भी मानस आज की पीढ़ी को अपनी जड़ों से जोड़ता है। वैश्वीकरण और आधुनिकता के प्रभाव में जब भारतीय समाज अपनी परंपराओं से दूर होता जा रहा है, तब रामचरितमानस सांस्कृतिक निरंतरता और राष्ट्रीय चेतना का स्रोत बनता है। नामवर मिश्र के अनुसार— “तुलसी का काव्य भारतीय अस्मिता का आधार है, जिसमें सांस्कृतिक समरसता और राष्ट्रीय एकता का अद्वितीय स्वरूप मिलता है।”⁸

मध्यकालीन रामभक्ति काव्य और भारतीय ज्ञान परंपरा का गहरा संबंध रामचरितमानस के माध्यम से प्रत्यक्ष होता है। तुलसीदास ने अपने काव्य में सत्य, धर्म, करुणा, मर्यादा और न्याय जैसे मूल्यों को केवल दार्शनिक विमर्श तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उन्हें लोकजीवन में आचरण का आधार बनाया। यही कारण है कि यह काव्य आज भी भारतीय समाज का नैतिक और सांस्कृतिक दर्पण माना जाता है।

तुलसी ने वेद उपनिषद् और गीता की गूढ़ शिक्षाओं को अवधी भाषा के सहज रूप में प्रस्तुत किया। ज्ञान, भक्ति और वैराग्य के त्रिवेणी मार्ग को उन्होंने सरल लोकभाषा में उतारकर जनमानस तक पहुंचाया। यह कार्य भारतीय संस्कृति की उस परंपरा का पुनर्जीवन है, जो शास्त्रों की कठिनता के कारण आमजन से दूर हो गई थी। भक्ति आंदोलन की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि उसने समाज को धार्मिक और नैतिक मूल्यों से पुनः जोड़कर जीवन का नया आयाम दिया।

समकालीन संदर्भ में भी रामचरितमानस की उपयोगिता निर्विवाद है। जब आधुनिक समाज नैतिक संकट, भौतिकवाद और सांस्कृतिक विघटन से जूझ रहा है, तब तुलसी का यह ग्रंथ आस्था, विश्वास और

मानवीयता का संबल प्रदान करता है। रामराज्य का आदर्श राजनीति को दिशा देता है, राम-भरत संबंध पारिवारिक आदर्श प्रस्तुत करते हैं, और राम-हनुमान संवाद सेवा-भावना की मिसाल देते हैं।

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि रामचरितमानस भारतीय ज्ञान परंपरा का अद्वितीय ग्रंथ है। यह केवल धार्मिक महाकाव्य नहीं, बल्कि समाज और संस्कृति के लिए मूल्य-दर्शन का आधार है। इसकी शिक्षाएं शाश्वत हैं और आज भी भारतीय समाज को नैतिक शक्ति और सांस्कृतिक पहचान प्रदान करती हैं।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. गोस्वामी तुलसीदास; श्री रामचरितमानस, गीता प्रेस, गोरखपुर, संस्करण 2011
2. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र; हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 2009
3. त्रिपाठी, विश्वनाथ; लोकवादी तुलसीदास, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2021
4. कुमार, डॉ. नरेश; तुलसी काव्य में लोक मर्यादा, सतीश बुक डिपो, दिल्ली, 2004
5. श्रोत्रिय, प्रभाकर; कवि परंपरा तुलसी से त्रिलोचन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2018
6. सिंह, उदयभानु; तुलसी, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2018
7. सिंह, डॉ. श्रीकांत; तुलसी साहित्य में लोक सौंदर्य, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, 2025
8. देव, अरुण; तुलसी-साहित्य का पुनरावलोकन : भारतरत्न भार्गव, समालोचन, 2022, जून 14, <https://samalochan.com/tulsidas-2/>

- राहुल गर्ग
(शोधार्थी)

हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

इक्कीसवीं सदी के हिंदी नाटक एवं स्त्री संघर्ष

शोध-सार

इक्कीसवीं सदी का हिंदी नाटक स्त्री-विमर्श की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण मोड़ को रेखांकित करता है। यह केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं रहा, अपितु सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक संघर्षों का जीवंत दस्तावेज़ बन गया है। इस शोध आलेख में 21वीं सदी के प्रमुख हिंदी नाटकों में निरूपित स्त्री संघर्ष चेतना का विस्तृत विवेचन किया गया है। नाटककारों ने पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की पीड़ा, उसके विद्रोह, उसकी अस्मिता की खोज और उसके सशक्तीकरण को जिस कलात्मक संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है, वह हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि है। प्रस्तुत आलेख में स्त्री-मुक्ति, घरेलू हिंसा, यौन शोषण, पहचान की राजनीति और आधुनिक समाज में स्त्री की बदलती भूमिका जैसे विषयों का नाट्य-साहित्य के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण किया गया है।

बीज शब्द

स्त्री-विमर्श, पितृसत्ता, नाट्य-साहित्य, स्त्री संघर्ष, अस्मिता, सशक्तीकरण, हिंदी नाटक

मूल आलेख

हिंदी साहित्य में नाटक विधा सदैव समाज का दर्पण रही है। भारतेंदु हरिश्चंद्र के युग से लेकर जयशंकर प्रसाद, मोहन राकेश और सुरेंद्र वर्मा तक हिंदी नाटककारों ने समाज की विसंगतियों, राजनीतिक उथल-पुथल और मानवीय संबंधों को अपने नाटकों में बड़ी कुशलता से उकेरा है। किंतु 21वीं सदी के प्रारंभ के साथ ही हिंदी नाट्य-साहित्य में एक नयी चेतना का उदय हुआ- स्त्री संघर्ष चेतना।

इस सदी के नाटककारों ने स्त्री को केवल पात्र के रूप में नहीं, बल्कि विचार और संघर्ष के केंद्र के रूप में प्रस्तुत किया। स्त्री अब केवल त्याग, सहनशीलता और पुरुष की छाया में जीने वाली नहीं रही; वह प्रश्न करती है, विद्रोह करती है, अपने अधिकारों की मांग करती है और पितृसत्तात्मक व्यवस्था को चुनौती देती है। नाटक के मंच पर यह संघर्ष एक नयी ऊर्जा के साथ प्रकट होता है।

21वीं सदी का भारतीय समाज अनेक अंतर्विरोधों से घिरा है। एक ओर वैश्वीकरण और आधुनिकता की चमक है, दूसरी ओर जाति, वर्ग और लिंग-भेद की सड़ी हुई जड़ें। इन्हीं अंतर्विरोधों में

स्त्री का संघर्ष और अधिक गहरा और बहुआयामी हो गया है। हिंदी नाटककारों ने इस जटिल सत्य को अपने नाटकों में पकड़ने की सार्थक कोशिश की है।

स्त्री-विमर्श की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

हिंदी साहित्य में स्त्री-विमर्श का आरंभ भले ही बहुत पुराना न हो, किंतु स्त्री-चेतना की अभिव्यक्ति साहित्य में सदैव किसी न किसी रूप में विद्यमान रही है। मध्यकाल की मीराबाई के पदों में जहां सामाजिक बंधनों से मुक्ति की आकांक्षा है, वहीं आधुनिक काल में महादेवी वर्मा की कविताओं में स्त्री-वेदना का मार्मिक चित्रण मिलता है।

नाट्य-साहित्य की बात करें तो भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'भारत-दुर्दशा' में स्त्री की पराधीनता को संकेतित किया। प्रसाद जी के नाटकों में स्त्री-पात्र मुख्यतः आदर्श और भावनात्मक धरातल पर खड़े हैं। मोहन राकेश के 'आषाढ़ का एक दिन' में मल्लिका का चरित्र स्त्री के त्याग और पीड़ा को रेखांकित करता है, परंतु वह सक्रिय विद्रोह का प्रतीक नहीं है।

20वीं सदी के उत्तरार्ध में स्त्रीवादी आंदोलनों के प्रभाव से हिंदी साहित्य में भी स्त्री-विमर्श को नयी ऊर्जा मिली। सुधा अरोड़ा, मन्नु भंडारी और मृदुला गर्ग जैसी लेखिकाओं ने कहानी और उपन्यास में स्त्री-अनुभव को केंद्र में रखा। नाट्य-विधा में यह परिवर्तन 21वीं सदी में अधिक मुखर और संगठित रूप में सामने आया।

21वीं सदी का हिंदी नाटक : प्रवृत्तियां एवं विशेषताएं

• नाटक में स्त्री-पात्रों की बदलती भूमिका

21वीं सदी के हिंदी नाटकों की सबसे उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इनमें स्त्री-पात्र केंद्रीय शक्ति के रूप में उभरे हैं। अब स्त्री केवल पुरुष पात्रों की सहायक नहीं रही; वह अपने अनुभव, विचार और संघर्ष को स्वयं परिभाषित करती है। नाटककारों ने उसे 'वॉयस' दी है- एक ऐसी आवाज जो न केवल दर्द को व्यक्त करती है, बल्कि बदलाव की मांग भी करती है।

रंगमंच पर स्त्री की यह सक्रियता वास्तव में व्यापक सामाजिक परिवर्तनों का प्रतिबिंब है। शिक्षा, रोजगार और मीडिया के विस्तार से स्त्री की चेतना जाग्रत हुई है। हिंदी नाटककारों ने इस जागृति को अपनी रचनाओं का आधार बनाया और स्त्री को उसकी संपूर्ण जटिलता के साथ मंच पर उपस्थित किया।

• पितृसत्ता का प्रतिरोध

पितृसत्तात्मक व्यवस्था का प्रतिरोध 21वीं सदी के हिंदी नाटकों का मूल स्वर है। इन नाटकों में पुरुष-प्रधान परिवार, समाज और संस्थाओं को चुनौती दी गई है। नाटककारों ने दिखाया है कि किस तरह पितृसत्ता न केवल घर की दीवारों में, बल्कि कार्यक्षेत्र, धर्म, कानून और भाषा में भी अपनी जड़ें जमाए हुए है।

विभिन्न नाटकों में यह प्रतिरोध अलग-अलग रूपों में प्रकट होता है— कहीं खुला विद्रोह है, कहीं मूक प्रतिरोध, कहीं व्यंग्य और कहीं दार्शनिक प्रश्नाकुलता। किंतु हर जगह स्त्री यह कहती नज़र आती है कि वह स्वयं अपनी शर्तों पर जीना चाहती है।

प्रमुख नाटककार और उनकी रचनाएं

• असगर वजाहत और स्त्री-विमर्श

असगर वजाहत 21वीं सदी के हिंदी नाट्य-साहित्य के महत्वपूर्ण स्तंभ हैं। उनके नाटकों में स्त्री-पात्र विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'जिस लाहौर नयी देख्या ओ जम्या ई नयी' में स्त्री-पात्रों के माध्यम से साम्प्रदायिकता और विभाजन की त्रासदी को मार्मिकता से उकेरा गया है। इन पात्रों में स्त्री की वह शक्ति दिखती है जो विषम परिस्थितियों में भी मानवता को बचाए रखती है।

वजाहत के नाटक 'गोडसे@गांधी.कॉम' में भी स्त्री-चेतना के तत्त्व दिखाई देते हैं। वे स्त्री को राजनीतिक और सामाजिक संदर्भों में रखकर देखते हैं और उसकी पीड़ा को सामूहिक संघर्ष से जोड़ते हैं।

• महेश आनंद और स्त्री की अस्मिता

महेश आनंद के नाटकों में स्त्री की अस्मिता का प्रश्न केंद्रीय है। उनकी रचनाएं उस स्त्री की कहानी कहती हैं जो अपनी पहचान खोजने के लिए संघर्षरत है। समाज, परिवार और परंपरा के दबाव में दबी स्त्री की आवाज़ को उन्होंने नाटक के माध्यम से बुलंद किया है। उनके नाटकों में घरेलू हिंसा, विवाह-संस्था की सीमाएं और स्त्री की स्वायत्तता की मांग प्रमुखता से उभरती है।

• मंजुल भारद्वाज और रंगमंच का सामाजिक सरोकार

मंजुल भारद्वाज ने 'थिएटर ऑफ रिलेवेंस' के माध्यम से रंगमंच को सामाजिक परिवर्तन का हथियार बनाया। उनके नाटकों में स्त्री-विमर्श को एक क्रांतिकारी परिप्रेक्ष्य दिया गया है। 'न्याय के भंवर में भंवरी' जैसी रचनाओं में उन्होंने ग्रामीण स्त्री के संघर्ष और न्याय-व्यवस्था की विफलता को मंच पर उजागर किया। भंवरी देवी का प्रसंग उनके नाट्य-विमर्श में स्त्री के सामाजिक और कानूनी संघर्ष का प्रतीक बनकर आता है।

मंजुल भारद्वाज के नाटकों की विशेषता यह है कि वे स्त्री को केवल पीड़ित के रूप में नहीं दिखाते; वह एक लड़ाकू है, एक जागरूक नागरिक है जो व्यवस्था से टकराने का साहस रखती है। उनके रंगमंच में दर्शक केवल दर्शक नहीं रहता— वह संघर्ष का हिस्सा बन जाता है।

• त्रिपुरारि शरण और सामाजिक यथार्थ

त्रिपुरारि शरण के नाटकों में सामाजिक यथार्थ की जमीन पर स्त्री-संघर्ष की कहानी बुनी गई है। उनकी रचनाओं में शहरी और ग्रामीण— दोनों परिवेशों की स्त्री के अनुभव मिलते हैं। वे दिखाते हैं कि स्त्री का शोषण केवल किसी एक वर्ग या क्षेत्र तक सीमित नहीं; यह एक सर्वव्यापी सामाजिक समस्या है।

स्त्री संघर्ष के प्रमुख आयाम

• घरेलू हिंसा और वैवाहिक बंधन

21वीं सदी के हिंदी नाटकों में घरेलू हिंसा एक प्रमुख विषय के रूप में उभरी है। पति द्वारा पत्नी पर शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक अत्याचार को नाटककारों ने बेबाकी से मंच पर लाया है। इन नाटकों में दहेज-प्रताड़ना, पति का अत्याचार और सास-ससुर के उत्पीड़न का यथार्थ चित्रण मिलता है। विशेष बात यह है कि नाटककारों ने स्त्री की चुप्पी को केवल दुर्भाग्य के रूप में नहीं, बल्कि एक सामाजिक निर्माण के रूप में दिखाया है। समाज, परिवार और धर्म— सभी मिलकर स्त्री को 'चुप रहो' की सीख देते हैं। जब नाटक की नायिका इस चुप्पी को तोड़ती है, तो यह एक व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामूहिक मुक्ति का संदेश बन जाता है।

• यौन शोषण और उसका प्रतिकार

2012 के निर्भया कांड के बाद भारतीय समाज में यौन हिंसा के प्रति सार्वजनिक चेतना में जो जागृति आई, उसका हिंदी रंगमंच पर भी गहरा प्रभाव पड़ा। अनेक नाटककारों ने इस त्रासदी को अपनी रचनाओं का विषय बनाया। यौन हिंसा को केवल एक आपराधिक घटना के रूप में नहीं, बल्कि एक गहरी सामाजिक बीमारी के लक्षण के रूप में प्रस्तुत किया गया।

इन नाटकों में पीड़ित स्त्री केंद्र में हैं, किंतु वह केवल पीड़ित नहीं— वह न्याय की मांग करने वाली एक सशक्त आवाज़ भी है। नाटककारों ने यह भी दिखाया कि किस तरह न्याय-व्यवस्था, पुलिस और समाज स्वयं पीड़ित स्त्री के विरुद्ध खड़े हो जाते हैं। यह नाटक 'पीड़ित को दोष देना' (victim-blaming) की संस्कृति पर करारा व्यंग्य करते हैं।

• जाति, वर्ग और लिंग का अंतःसंबंध

21वीं सदी के प्रगतिशील हिंदी नाटककारों ने स्त्री-संघर्ष को जाति और वर्ग के अंतःसंबंध में देखने की कोशिश की है। दलित स्त्री का संघर्ष सवर्ण स्त्री से भिन्न है; उसे जातिवादी उत्पीड़न और लैंगिक शोषण— दोनों का एक साथ सामना करना पड़ता है। नाटककारों ने इस 'दोहरे संघर्ष' को उभारकर स्त्री-विमर्श को अधिक समावेशी बनाया है।

भंवरी देवी प्रकरण, मथुरा बलात्कार कांड जैसी ऐतिहासिक घटनाओं को आधार बनाकर नाटककारों ने दलित और आदिवासी स्त्री की विशेष पीड़ा को रेखांकित किया है। यह नाटक स्त्री-विमर्श की संकुचित सीमाओं को तोड़कर उसे व्यापक सामाजिक न्याय के आंदोलन से जोड़ते हैं।

• पहचान की राजनीति और स्वायत्तता

पहचान की राजनीति 21वीं सदी के हिंदी नाटकों का एक महत्वपूर्ण आयाम है। स्त्री को हमेशा किसी की पत्नी, मां, बेटी या बहन के रूप में पहचाना गया है— अपनी स्वतंत्र पहचान शायद ही कभी मिली। इन नाटकों में स्त्री-पात्र अपनी 'स्वयं की' पहचान की मांग करते हैं। वे पूछती हैं— 'मैं कौन हूँ?' केवल किसी की पत्नी या मां— या अपने आप में एक संपूर्ण इंसान?

यह प्रश्न सरल लगता है, किंतु इसके निहितार्थ गहरे हैं। स्वायत्तता की यह मांग पितृसत्तात्मक व्यवस्था के मूल को चुनौती देती है। नाटककारों ने इस आंतरिक संघर्ष को बड़ी संवेदनशीलता के साथ चित्रित किया है।

• कार्यक्षेत्र में स्त्री का संघर्ष

21वीं सदी की स्त्री केवल घर की चारदीवारी में नहीं रही; वह ऑफिस, कारखाने, खेत और प्रयोगशाला— हर जगह अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है। किंतु इस उपस्थिति के साथ नयी चुनौतियां भी आई हैं। कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न, असमान वेतन, पदोन्नति में भेदभाव और 'ग्लास सीलिंग' जैसी समस्याओं को हिंदी नाटककारों ने मंच पर उठाया है।

इन नाटकों में वह स्त्री भी है जो घर और ऑफिस— दोनों मोर्चों पर एक साथ लड़ रही है। उसे 'अच्छी गृहिणी' और 'सफल कर्मचारी'— दोनों साबित करना पड़ता है। इस दोहरे दबाव को नाटककारों ने बड़ी कुशलता से उजागर किया है।

• नाट्य-तकनीक और स्त्री-चेतना का प्रस्तुतीकरण

21वीं सदी के हिंदी नाटककारों ने स्त्री-संघर्ष को प्रस्तुत करने के लिए नवीन नाट्य-तकनीकों का सहारा लिया है। पारंपरिक कथा-ढांचे

को तोड़कर वे प्रयोगात्मक शैलियों की ओर मुड़े हैं। एपिक थिएटर, डॉक्यूमेंट्री थिएटर, मोनोलॉग और सामूहिक प्रस्तुतियां— इन सबका उपयोग स्त्री-संघर्ष को अधिक प्रभावी ढंग से व्यक्त करने के लिए किया गया है।

स्त्री-केंद्रित मोनोलॉग (एकालाप) एक विशेष रूप से प्रभावशाली तकनीक रही है। इसमें स्त्री अपने अनुभव को सीधे दर्शकों से साझा करती है— बिना किसी मध्यस्थ के। यह तकनीक स्त्री को उसकी अपनी 'वॉयस' देती है। 'द वेजाइना मोनोलॉग्स' जैसी पश्चिमी कृतियों से प्रेरित होकर भारतीय रंगमंच पर भी ऐसे प्रयोग हुए जिनमें स्त्री का शरीर, यौनिकता और अनुभव बिना शर्म के अभिव्यक्ति पाते हैं।

डॉक्यूमेंट्री थिएटर के माध्यम से नाटककारों ने वास्तविक घटनाओं और स्त्री-पात्रों के जीवन को मंच पर पुनर्जीवित किया है। भंवरी देवी, बिलकिस बानो, मथुरा— ये वास्तविक महिलाएं हिंदी रंगमंच पर स्त्री-संघर्ष के प्रतीक बनकर उभरीं।

• स्त्री नाटककारों का योगदान

यह आलेख अधूरा होगा यदि हम स्त्री नाटककारों के योगदान की चर्चा न करें। 21वीं सदी में अनेक महिला नाटककार हिंदी रंगमंच पर सशक्त उपस्थिति के साथ आई हैं। उन्होंने स्त्री-अनुभव को 'भीतर से' देखने का अवसर साहित्य को दिया।

महिला नाटककारों की रचनाओं में वह 'इनसाइडर पर्सपेक्टिव' होता है जो पुरुष लेखक के लिए कभी-कभी पहुंचना कठिन होता है। स्त्री की चुप्पी, उसका भय, उसकी इच्छाएं, उसके सपने— ये सब उनके नाटकों में एक अलग ही प्रामाणिकता के साथ उभरते हैं। विभावरी देशपांडे, अनुराधा कपूर जैसी निर्देशिकाओं ने भी रंगमंच को स्त्री-दृष्टि से समृद्ध किया है।

महिला नाटककारों ने न केवल स्त्री-केंद्रित कहानियां लिखीं, बल्कि नाटक की पूरी संरचना और भाषा को भी स्त्री-दृष्टिकोण से पुनर्परिभाषित किया। उनके नाटकों में संवाद की भाषा, मंच की व्यवस्था और पात्रों के बीच के संबंध— सब कुछ एक नयी स्त्री-संवेदना से निर्मित हैं।

सीमाएं और आलोचनात्मक दृष्टि

21वीं सदी के हिंदी नाटकों में स्त्री-संघर्ष के चित्रण की जितनी सराहना की जाए, उतनी कम है; किंतु एक आलोचनात्मक दृष्टि भी ज़रूरी है। अनेक आलोचकों का मानना है कि कुछ नाटकों में स्त्री को 'बेचारी' और 'शिकार' के रूप में ही प्रस्तुत किया जाता है— उसकी शक्ति और एजेंसी को पर्याप्त स्थान नहीं मिलता।

इसके अलावा, मध्यवर्गीय और शहरी स्त्री के अनुभव को ही मुख्यधारा मानने की प्रवृत्ति भी देखी जाती है। ग्रामीण, दलित, आदिवासी और अल्पसंख्यक स्त्री के संघर्ष को अभी भी उतना प्रतिनिधित्व नहीं मिला जितना मिलना चाहिए। बाजारवाद के दबाव में कुछ नाटक 'स्त्री-मुक्ति' को एक उत्पाद की तरह प्रस्तुत करने लगते हैं, जो वास्तविक संघर्ष को उथला बना देता है।

भाषा के स्तर पर भी कुछ नाटकों में स्त्री-विमर्श की चर्चा इतनी जटिल और अकादमिक हो जाती है कि आम दर्शक से उसका संवाद टूट जाता है। प्रभावी स्त्री-विमर्श वह है जो शोषित स्त्री तक पहुंचे, न केवल साहित्य के मंचों पर बहस का विषय बने।

समकालीन प्रासंगिकता और भविष्य की दिशा

आज जब #MeToo आंदोलन, बेटा बचाओ-बेटी पढ़ाओ जैसी सरकारी योजनाएं, महिला आरक्षण विधेयक और विभिन्न सामाजिक आंदोलन एक साथ चल रहे हैं, ऐसे में हिंदी नाटकों का स्त्री-विमर्श और अधिक प्रासंगिक हो गया है। नाटक न केवल समाज की वास्तविकता का आईना दिखाता है, बल्कि भविष्य का रास्ता भी सुझाता है।

डिजिटल माध्यमों के विस्तार के साथ हिंदी नाटक अब यू-ट्यूब, ओटीटी प्लेटफॉर्म और सोशल मीडिया के जरिए भी दर्शकों तक पहुंच रहा है। इससे स्त्री-विमर्श का संदेश एक व्यापक समाज तक फैल रहा है। युवा नाटककारों और निर्देशकों की एक नयी पीढ़ी इस परंपरा को आगे बढ़ा रही है, जो और भी अधिक साहसी और समावेशी है।

भविष्य में हिंदी नाट्य-साहित्य से यह अपेक्षा है कि वह स्त्री-संघर्ष को और अधिक विविध और बहुस्तरीय रूप में प्रस्तुत करे। ट्रांसजेंडर स्त्री, विकलांग स्त्री, वृद्ध स्त्री और अल्पसंख्यक समुदाय की स्त्री— इन सभी के अनुभव को मंच पर जगह मिलनी चाहिए।

21वीं सदी का हिंदी नाटक स्त्री-संघर्ष चेतना की अभिव्यक्ति में एक ऐतिहासिक भूमिका निभा रहा है। इस काल के नाटककारों ने स्त्री को उसकी समग्रता में— उसकी पीड़ा, विद्रोह, प्रेम, साहस और बुद्धि सहित— मंच पर उतारा है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था को चुनौती देते हुए, घरेलू हिंसा का पर्दाफाश करते हुए, यौन शोषण के विरुद्ध आवाज उठाते हुए और स्त्री की स्वायत्त पहचान की मांग करते हुए ये नाटक केवल साहित्यिक कृतियां नहीं, सामाजिक दस्तावेज बन गए हैं।

स्त्री संघर्ष की यह चेतना नाटक में तभी फलवती होगी जब वह मंच से उतरकर वास्तविक जीवन में परिवर्तन का माध्यम बने। हिंदी नाटक का यह सामाजिक सरोकार ही उसे महान बनाता है। जब तक समाज में स्त्री को समान अधिकार, सम्मान और अवसर नहीं मिलते, तब तक यह संघर्ष जारी रहेगा— और हिंदी नाटक इस संघर्ष का सशक्त सहयात्री बना रहेगा।

अंत में यही कहा जा सकता है कि 21वीं सदी के हिंदी नाटकों में स्त्री-संघर्ष चेतना का जो स्वर उभरा है, वह न केवल हिंदी साहित्य की गरिमा को बढ़ाता है, बल्कि एक न्यायपूर्ण, समतामूलक और मानवीय समाज के निर्माण की दिशा में एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक हस्तक्षेप भी है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. वर्मा, सुरेंद्र; नाटक का नाटक, नेशनल बुक ट्रस्ट, नयी दिल्ली, 2003.
2. वजाहत, असगर; जिस लाहौर नयी देख्या, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2008.
3. भारद्वाज, मंजुल; थिएटर ऑफ रिलेवेंस : सिद्धांत एवं प्रयोग, मुंबई, 2010.
4. त्रिपाठी, रामस्वरूप; हिंदी नाटक और रंगमंच, हिंदी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, 2012.
5. शर्मा, जयदेव; समकालीन हिंदी नाटक में स्त्री-विमर्श, साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली, 2015.
6. गुप्त, नेमीचंद्र; 21वीं सदी का हिंदी रंगमंच, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2016.
7. मिश्र, विद्यानिवास; हिंदी साहित्य का स्त्रीवादी पाठ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2017.
8. सिंह, अर्चना; स्त्री-विमर्श और हिंदी नाटक, आधार प्रकाशन, पंचकुला, 2019.
9. Tendulkar, Vijay Collected Plays, Oxford University Press, New Delhi, 2001.
10. Bharucha, Rustom, The Theatre of Kanhaiyalal, Seagull Books, Kolkata, 2009.

— पूजा कुमारी
(शोधार्थी)

हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

समाज सुधार आंदोलन और स्त्री संघर्ष के विभिन्न पहलू

शोध-सार

भारत में समाज सुधार आंदोलन का आधार स्त्री संबंधी भारतीय जड़ता थी, जिसने कभी भी स्त्री की क्षमताओं को न तो स्वीकार किया न ही उसे स्वयं इसका अहसास होने दिया। परिणामस्वरूप भारतीय स्त्री सदियों से अपनी स्थिति के प्रति उदासीन बनी रही और इसी स्थिति को अपनी नियति में परिवर्तित होते देखती रही। भारतीय समाज सुधारकों ने उसकी नियति की इस जड़ता पर प्रहार किया और भारतीय सामाजिक ढांचे को हिला कर रख दिया। उनका यह प्रयास स्त्री की परंपरागत भूमिका को चुनौती दे रहा था। साथ ही स्त्री संबंधी मृत मान्यताओं को भी दफ़ना रही थी। समाज सुधारकों ने इस बात को बखूबी स्वीकार किया कि शिक्षा ही स्त्री की स्थिति और उससे जुड़ी परंपराओं से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त कर सकती है। स्त्री संघर्ष के इन पहलुओं को समाज सुधारकों ने आंदोलन का आधार बनाया और विभिन्न स्तरों पर स्त्री की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किए जो आगे चलकर भारतीय स्त्री स्वतंत्रता आंदोलन की पृष्ठभूमि बना और पहली लहर भी। यह आलेख इन संकेतों को विस्तार से प्रस्तुत करने का प्रयास है।

बीज शब्द

स्त्री-स्वतंत्रता, स्त्री-शिक्षा, समानता, आधुनिकता, समाज सुधार, संघर्ष, सामाजिक अधिकार।

मूल आलेख

भारतीय संदर्भों में आधुनिकता के साथ स्त्रियों की समस्याओं पर विचार-विमर्श प्रारंभ हुआ, जिसमें यह तथ्य सामने आए कि भारतीय स्त्री समाज में सदियों से प्रताड़ित है। इस उत्पीड़न को उसने सहज ही अपने जीवन की नियति स्वीकार कर लिया था। समाज ने भी उसे इसी नियति में जीने को ही उसका अंतिम सत्य मान लिया था। इन संदर्भों में आधुनिकता का आगमन भारतीय स्त्री के लिए साधारण परिवर्तन नहीं था। “जिसे हम आधुनिकता कहते हैं, वह एक प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया अंधविश्वास से बाहर निकलने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया नैतिकता में उदारता बरतने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया बुनियादी बनने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया धर्म से सही रूप में पहुंचने की प्रक्रिया है। आधुनिक वह है, जो मनुष्य की ऊंचाई उसकी जाति या गोत्र से

नहीं बल्कि उसके कर्म से नापता है। आधुनिक वह है, जो मनुष्य-मनुष्य को समान समझता है।”¹ इस आधार पर आधुनिक मनुष्य मृत परंपराओं, रूढ़ियों, अंधविश्वासों एवं सांस्कृतिक वर्जनाओं को तोड़ता हुआ नवीन अर्थपूर्ण एवं सारगर्भित मूल्यों की तलाश, स्थापना एवं विकास की ओर उन्मुख होता है। इस नवीन क्रांतिकारी मूल्य मीमांसा ने स्त्री-समूह की समस्याओं के समाधान एवं आधारभूत आवश्यकताओं जैसे जागृति, शिक्षा, समानता, न्याय आदि के अधिकारों के प्रति सजगता प्रकट की।

इस प्रकार आधुनिकता के आगमन से वैज्ञानिक संस्कृति एवं भारतीय धार्मिक संस्कृति की टकराहट के परिणामस्वरूप भारत में 19 वीं शताब्दी के आरंभ में धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक धरातल पर पुनर्जागरण की नींव पड़ी। यहीं से भारत में स्त्री-मुद्दों को रेखांकित किया गया। आधुनिक विचारक रमणिका गुप्ता का इस संदर्भ में कहना है, “आधुनिक परिदृश्य में नारी मुक्ति का मुद्दा भारत में 1975 से शुरू हुआ माना जा सकता है, जब भारत से स्त्रियों का बहुत बड़ा जत्था बर्लिन में प्रथम विश्वस्तरीय महिला कॉफ्रेंस में भाग लेने गया था। वैसे स्त्री-मुक्ति के विभिन्न मुद्दे चाहे वे सती-प्रथा, बाल-विवाह, पर्दा प्रथा के हों या विधवा-विवाह, तलाक, संपत्ति का अधिकार व स्त्री-शिक्षा के, बहुत पहले से ही उठाए जाते रहे हैं। महाराष्ट्र में ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले, रमाबाई, गुजरात में स्वामी दयानंद और बंगाल में ईश्वरचंद्र विद्यासागर, राजा राममोहन राय व स्वामी विवेकानंद ने स्त्रियों के सामाजिक अधिकारों के पक्ष में अभियान छेड़ दिया था।”² इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारत में स्त्री-मुद्दों पर आधारित आंदोलन राष्ट्रीय आंदोलन के साथ जुड़ा हुआ था। स्त्री-स्वातंत्र्य से संबंधित आंदोलन के क्षेत्र में ब्रह्म समाज, आर्य समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन आदि का प्रमुख योगदान रहा है। भारत में स्त्री-मुक्ति आंदोलन की पहली लहर 19 वीं शताब्दी के समाज सुधार आंदोलन से जुड़ी थी। “समाज-सुधार के आंदोलनों ने मुख्यतः दो लक्ष्यों को पूरा करने के प्रयास किए: (अ) स्त्रियों की मुक्ति तथा उनको समान अधिकार देना, तथा (ब) जाति-प्रथा की जड़ताओं को समाप्त करना तथा खासकर छुआछूत का खात्मा।”³ 19वीं सदी में मानवतावादी व समानतावादी विचारों से प्रेरित होकर समाज-सुधारकों ने स्त्रियों की दशा सुधारने के लिए एक शक्तिशाली आंदोलन छेड़ा। सुधारकों के एक वर्ग ने,

व्यक्तिवाद तथा समानता के सिद्धान्तों का सहारा लिया। इसके लिए समाज सुधार समितियों एवं धार्मिक संगठनों ने स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार करने, विधवाओं के पुनर्विवाह को प्रोत्साहन देने, विधवाओं की दशा सुधारने, बाल-विवाह रोकने, स्त्रियों को पर्दे से बाहर लाने, एक पत्नी-प्रथा प्रचलित करने और मध्यवर्गीय स्त्रियों को व्यवसाय या सरकारी रोजगार में जाने के योग्य बनाने के लिए प्रयास किए।

समाज-सुधार को लक्ष्य कर भारत में राष्ट्रीय चेतना के उदय का श्रेय सर्वप्रथम राजा राममोहन राय को दिया जाता है। “राजा राममोहन विशेष रूप से नारीवादी थे।... उन्होंने शास्त्रों से उदाहरण जुटाकर यह दिखाने की कोशिश की कि नारी के सती होने का कहीं कोई विधान नहीं है। उन्होंने इसके लिए 1818 में ‘सतीदाह के सम्बन्ध में प्रवर्तक संवाद: सतीदाह प्रसंग’ नाम से एक पुस्तक की रचना की। राममोहन ने सिद्ध कर दिया है कि अगर शास्त्रों का गहराई से अध्ययन किया जाए तो उनमें कहीं भी सतीदाह का प्रावधान नहीं है।”⁴ भारतीय स्त्रियों की जीवन स्थिति को सुधारने के उनके प्रयासों को और अधिक स्पष्ट करते हुए विपिन चंद्र का कहना है, “वे महिलाओं के पक्के समर्थक थे। उन्होंने महिलाओं की परवशता की निंदा की तथा इस प्रचलित विचार का विरोध किया कि महिलाएं पुरुषों से बुद्धि में या नैतिक दृष्टि से निकृष्ट हैं। उन्होंने बहु-विवाह तथा विधवाओं की अनवरत स्थिति की आलोचना की। महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए उन्होंने मांग की कि उन्हें विरासत और संपत्ति सम्बन्धी अधिकार दिए जाएं।”⁵ इसके लिए उन्होंने 1829 में ब्रह्म समाज नाम की एक नयी धार्मिक संस्था की स्थापना की। ब्रह्म समाज ने मानवीय प्रतिष्ठा पर जोर दिया तथा सती प्रथा जैसी कुरीतियों की आलोचना की। “जिस तरह उन्होंने धर्म की आलोचना की थी, उसी तरह यह तर्क और बुद्धि के द्वारा समझाने की कोशिश की, कि यह जो स्वर्ग का कामना है, वह नारी के ऊपर अत्याचार है और कुछ नहीं। समाज के इस पाप को दूर करना होगा। दूर करने के लिए शास्त्रों पर विचार करना होगा। शास्त्रों की आलोचना के द्वारा ही इस अत्याचार, इस पाप के बारे में लोगों को आसानी से समझाया जा सकता है।... जबरदस्ती बांधकर, बांस से पीटकर चिता में मार डालने की प्रथा थी और मिशनरी के लोगों ने इसे लक्ष्य बनाया और स्वयं लार्ड वेलेजली द्वारा इसे रोकने की कोशिश के बावजूद यह प्रथा कम होने की बजाय बढ़ती ही जा रही थी। 1815 में 253, 1816 में 269, 1817 में 442 और 1818 में 544 महिलाओं के सती होने के मामले प्रकाश में आए, लेकिन यह सिर्फ सरकारी आंकड़ा है। इसके अलावा गांवों मुहल्लों में ऐसी कितनी असहाय महिलाएं सती हो चुकी थीं।”⁶ इसके बाद उन्होंने 1818 में ही सती प्रथा के प्रश्न पर जनमत तैयार किया। उन्होंने एक ओर सती प्रथा के विरुद्ध हिंदू धर्म के शास्त्रों के प्रमाण दिया करते

थे, दूसरी ओर कलकत्ता के श्मशान घाटों पर जाकर विधवाओं के आत्मदाह तथा विधवाओं को सती होने के लिए मजबूर करने की हर कोशिश को रोकने का प्रयास किया। इन प्रयासों की सबसे बड़ी उपलब्धि थी, “1829 में सती प्रथा को गैर कानूनी घोषित करने की कार्यवाही। विलियम बैंटिक ने घोषित किया कि पति की चिता पर विधवा के जल मरने की कार्यवाही में जो भी सहयोगी होंगे, उन्हें अपराधी माना जाएगा। इससे पहले ब्रिटिश शासकों ने सती प्रथा को रोकने के प्रश्न पर उदासीन रुख अपनाया था।”⁷

स्त्रियों के संदर्भ में समाज सुधारकों की कड़ी में दूसरा महत्वपूर्ण कार्य पंडित ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने किया था। उन्होंने विधवा पुनर्विवाह के लिए एक लम्बा संघर्ष चलाया। 1855 में उनके नेतृत्व में विधवा पुनर्विवाह के पक्ष में देशव्यापी आंदोलन हुआ। 1855 के अंतिम दिनों में बंगाल, मद्रास, बंबई, नागपुर और भारत के अन्य शहरों से विधवाओं के पुनर्विवाह को कानूनी मान्यता प्राप्त करवाने के लिए एक एक्ट पास करने के अनुरोध स्वरूप बड़ी संख्या में याचिकाएं दायर की गईं। “भारत सरकार ने 1856 में हिंदू विधवाओं के पुनर्विवाह के लिए कानून पास किया। सरकार ने पंडित ईश्वरचंद्र विद्यासागर और अन्य सुधारकों द्वारा इसके पक्ष में लगातार आंदोलन चलाने के बाद यह कार्यवाही की।”⁸ पहला कानूनी हिंदू विधवा पुनर्विवाह कलकत्ता में 7 दिसंबर 1856 को ईश्वरचंद्र विद्यासागर की उपस्थिति में हुआ। उनके इस कार्य से 1855-1860 के बीच 25 विधवा पुनर्विवाह हुए। इतना ही नहीं ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने 1850 से बाल विवाह, बहुविवाह का विरोध एवं स्त्री-शिक्षा के पक्ष में भी आवाज उठाई। ‘स्कूलों के सरकारी निरीक्षक की हैसियत से उन्होंने 35 बालिका विद्यालयों की स्थापना की, जिनमें से कई को उन्होंने अपने खर्च से चलाया।”⁹

1849 में कलकत्ता में स्थापित बेथुन स्कूल उच्च स्त्री-शिक्षा के लिए 19वीं सदी के पांचवें और छठे दशक में चलाए गए आंदोलनों का पहला परिणाम था। ईश्वरचंद्र विद्यासागर इस स्कूल के मंत्री थे। इसके साथ-साथ वे उच्च स्त्री-शिक्षा के आंदोलन के अग्रदूत भी थे। इसके अतिरिक्त 1849 में महाराष्ट्र में ‘परमहंस मंडली’ की स्थापना की गई। विधवा विवाह और स्त्री-शिक्षा में भी वे विश्वास करते थे। इस मंडली की शाखाएं पूना, सतारा और महाराष्ट्र के कई नगरों में स्थापित की गई थीं। महिलाओं की शिक्षा के लिए विद्यालय स्थापित करना इस संस्था का सर्वोपरि लक्ष्य था।

स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में ज्योतिबा फुले और उनकी पत्नी सावित्रीबाई फुले का योगदान भी विशेष उल्लेखनीय है। ज्योतिबा फुले शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का एक सशक्त माध्यम मानते

थे। इसके लिए उन्होंने पहला कदम अपने घर में ही उठाया। उनकी पत्नी सावित्रीबाई निरक्षर थीं। उन्होंने अपनी पत्नी को पढ़ाया-लिखाया और इस योग्य बनाया कि वे शिक्षक का काम कर सकें। ज्योतिबा फुले का मानना था दलित-पिछड़े वर्ग की लड़कियों का शिक्षित होना जरूरी है। अगर वे शिक्षित होंगी तो उनकी संतानें स्वतः शिक्षित हो जाएंगी। इन्हीं विचारों को आधार बनाकर उन्होंने 1848 में निम्न जातियों की लड़कियों के लिए पहला स्कूल खोला। स्त्री-शिक्षा की ओर उनके और उनकी पत्नी के इस कदम का परंपरावादी ब्राह्मणों ने विरोध किया। परंपरावादी ब्राह्मणों के विरोध, आर्थिक समस्या एवं शिक्षकों की कमी के कारण यह स्कूल 6 महीने में बन्द हो गया। इसके पश्चात् ज्योतिबा फुले 1851 में एक अन्य स्कूल पूना के अन्ना साहेब वासुदेव चिपलूणकर भवन में खोला। इसी तरह “ज्योतिबा फुले ने 1851 में ‘फीमेल एज्युकेशन सोसायटी’ तथा 1853 में ‘सोसायटी फॉर प्रमोटिंग दी एज्युकेशन ऑफ महारस एंड मांगस’ की स्थापना करके शिक्षा प्रबंधन के क्षेत्र में बहुत महत्वपूर्ण योगदान किया।”¹⁰ ज्योतिबा फुले के इस अविस्मरणीय कार्य की सफलता में उनकी पत्नी सावित्रीबाई फुले का योगदान भी महत्वपूर्ण रहा है। “महाराष्ट्र राज्य के पुणे नगर में शुरू की गयी सामाजिक क्रांति की जननी सावित्रीबाई फुले ने रूढ़िपंथियों द्वारा किए गए घोर विरोध तथा उनके द्वारा डाली गई दुर्लभ बाधाओं के बावजूद प्रथम महिला विद्यालय की नींव रखी।”¹¹ इन दोनों के इस कार्य को विशेष सराहा गया और “कन्या शिक्षा के क्षेत्र में ऐतिहासिक योगदान के कारण बंबई महाराष्ट्र सरकार की ओर से उन्हें पुणे के संस्कृत कॉलेज के प्राचार्य मेजर कैंडी ने 16 नवम्बर, 1952 को 193 रुपये के दो शॉल भेंट कर सम्मानित किया गया।”¹²

सावित्रीबाई फुले ने अपने पति को शिक्षा सम्बन्धी गतिविधियों में सहयोग देने के अतिरिक्त उनके द्वारा छेड़े गए प्रत्येक सामाजिक संघर्ष में उनका साथ दिया। ज्योतिबा फुले ने विधवाओं का भी समर्थन किया। इतना ही नहीं “सन् 1863 में बाल हत्या प्रतिबंधक गृह तथा विधवा प्रसूति गृह खोला जिसका मूल मकसद यह था कि गर्भवती विधवाएं चुपचाप प्रसव कर सकें।”¹³ भारतीय समाज में विधवाओं को श्रृंगार की अनुमति नहीं थी। विधवा होने पर साज-श्रृंगार के साथ-साथ विधवा स्त्री को अपने बालों का भी त्याग करना पड़ता था। “सावित्रीबाई और ज्योतिबा का हृदय ऐसी विधवाओं की दयनीय दशा पर द्रवित हो उठा। उन्होंने नाइयों को धिक्कारा तथा नाइयों की हड़ताल का संगठन किया और उन्हें इस बात के लिए तैयार किया कि वे विधवाओं के सिर मुंडन न करें। यह अपने ढंग की पहली और अनूठी हड़ताल थी।”¹⁴ इस प्रकार ज्योतिबा फुले और सावित्रीबाई फुले समस्त प्रकार के स्त्री-विरोधी सामाजिक पक्षपात के

विरुद्ध थे। निम्नजात की स्त्रियां की सामाजिक स्थिति को सुधारने में इनका विशेष योगदान रहा। इतना ही नहीं सावित्रीबाई प्रथम महिला शिक्षिका भी बनी थीं।

दलित स्त्रियों के अधिकारों के क्षेत्र में डॉ. बाबा साहेब अंबेडकर का योगदान भी विशेष उल्लेखनीय है। 1891 से 1956 तक डॉ. अंबेडकर ने दलित महिलाओं तथा बच्चों को शिक्षित करने के लिए प्रोत्साहित किया। 1927 में महाड में चावदार टंकी में दलितों को पानी लेने के अधिकार को लेकर आंदोलन किया। सैकड़ों दलित महिलाएं विशाल सत्याग्रह में शामिल हुईं। मार्च, 1930 में महाराष्ट्र के नासिक के कालाराम मंदिर में प्रवेश तथा पूजा करने के दावे को लेकर आंदोलन किया। इस आंदोलन में हजारों दलित महिलाओं ने सक्रिय भागीदारी दर्ज की थी। कई महिलाओं को कैद की सजा भी मिली थी। इतना ही नहीं बाबा साहेब अंबेडकर ने देवदासी प्रथा के खिलाफ भी आंदोलन किया था, जिसके तहत दलित महिलाओं को देवदासी के नाम पर वेश्यावृत्ति में जबरन धकेला जाता था। इतना ही नहीं उन्होंने संविधान के निर्माण के समय 1948 में ‘हिंदू कोड बिल’ का प्रारूप तैयार किया, जिसे सरकार ने अस्वीकार कर दिया था। इसके पश्चात् उन्होंने हिंदू धर्म त्यागकर बौद्ध धर्म अपनाया और इनसे प्रभावित होकर कई महिलाएं समाज-सेवा के उद्देश्य से उनके साथ बौद्ध भिक्षुणी बनीं।

राजा राममोहन राय, दयानंद सरस्वती, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, स्वामी विवेकानंद, ऐनी बिसेंट आदि ने सुधारवादी आंदोलनों के माध्यम से स्त्री-जीवन से जुड़ी कुप्रथाओं की समाप्ति के लिए प्रयास किए। इन्होंने सती-प्रथा, बाल-विवाह पर रोक, विधवा पुनर्विवाह, स्त्री-शिक्षा आदि मुद्दों पर पुरजोर तरीके से आवाज उठाकर समाज में जागृति लाने का प्रयास किया। इस क्षेत्र में पंडिता रमाबाई, आनंदीबाई जोशी, रुक्माबाई आदि ने भी सराहनीय कार्य किए। इस संदर्भ में ए. आर. देसाई का कहना है कि, “औपनिवेशिक सामाजिक संरचना के आंतरिक अंतर्विरोधों के विकास और एक नयी राष्ट्रीय जनवादी चेतना के प्रादुर्भाव के साथ ही, उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध तक मध्यमवर्ग के ऊपरी और अधिक शिक्षित तबके की स्त्रियों में और फिर इस सदी के प्रारम्भ में, विशेषकर स्वदेशी आंदोलन के दौरान आम मध्यवर्ग की स्त्रियों में भी एक नया प्रबोधन-एक नयी मुक्ति चेतना, सामाजिक अधिकारों एवं समानता की एक नयी आकांक्षा संचारित होने लगी थी। उन्नीसवीं सदी के अंतिम चतुर्थांश में, स्त्रियों के नेतृत्व में स्त्री-अधिकार आंदोलन कतिपय सामाजिक सुधार आंदोलनों के रूप में और विभिन्न स्त्री-कल्याणकारी संस्थाओं की स्थापना के माध्यम से प. रमाबाई, रमाबाई रानाडे, आनंदीबाई जोशी, फ्रानना सरोबजी, ऐनी जगन्नाथन और रुक्माबाई आदि के प्रयासों से शुरू हुआ।”¹⁵

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि समाज सुधारकों ने स्त्री की परवशता के कारण भारतीय समाज की जड़ता में खोजकर उसके निवारण के प्रयास पूरी ईमानदारी से किए। इनकी ईमानदार पहल का ही यह परिणाम रहा कि इन समाज सुधार आंदोलनों ने भारत में आगे आने वाले स्त्री-आंदोलन की पृष्ठभूमि तैयार की थी, जिस पर परवर्ती भारतीय स्त्री-आंदोलन आधारित था, जो स्त्री-स्वतंत्रता से जुड़े तमाम पहलुओं की जांच पड़ताल में सक्रिय था।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. रामधारी सिंह दिनकर, आधुनिक बोध, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1989, पृष्ठ संख्या 28
2. रमणिका गुप्ता, स्त्री मुक्ति संघर्ष और इतिहास, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012, पृष्ठ संख्या 24-25
3. विपिन चंद्र, आधुनिक भारत का इतिहास, ओरिएंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड, प्रथम संस्करण 2008, पृष्ठ संख्या 232
4. विजित कुमार दत्त, राजा राममोहन राय, अनुवाद, सूर्यनाथ सिंह, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, प्रथम संस्करण 2000, पृष्ठ संख्या 47
5. विपिन चंद्र, आधुनिक भारत का इतिहास, ओरिएंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड, प्रथम संस्करण 2008, पृष्ठ संख्या 118
6. विजित कुमार दत्त, राजाराममोहन राय, अनुवाद, सूर्यनाथ सिंह, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, प्रथम संस्करण 2000, पृष्ठ संख्या 45-47
7. विपिन चंद्र, आधुनिक भारत का इतिहास, ओरिएंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड, प्रथम संस्करण 2008, पृष्ठ संख्या 108
8. विपिन चंद्र, आधुनिक भारत का इतिहास, ओरिएंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड, प्रथम संस्करण 2008, पृष्ठ संख्या 108
9. वही, पृष्ठ संख्या 125
10. डॉ. नामदेव, जोतिबा फुले : आधुनिक सामाजिक क्रांति के अग्रदूत, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, प्रथम संस्करण 2012, पृष्ठ संख्या 23
11. प्रमिला दंडवते, सावित्रीबाई फुले 1831-1897 (लेख), सुशीला नैयर; कमला मनकेकर, संपादक, भारतीय पुनर्जागरण में अग्रणी महिलाएं : मानस पर उभरी स्मृतियां, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, प्रथम संस्करण 2005, पृष्ठ संख्या 48
12. डॉ. नामदेव, जोतिबा फुले : आधुनिक सामाजिक क्रांति के अग्रदूत, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, प्रथम संस्करण 2012, पृष्ठ संख्या 23
13. वही, पृष्ठ संख्या 27
14. प्रमिला दंडवते, सावित्रीबाई फुले : 1831-1897 (लेख), सुशीला नैयर; कमला मनकेकर, संपादक, भारतीय पुनर्जागरण में अग्रणी महिलाएं : मानस पर उभरी स्मृतियां, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, प्रथम संस्करण 2005, पृष्ठ संख्या 51
15. ए.आर.देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, मैकमिलन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1977, पृष्ठ संख्या 220-221

- डॉ. मधु

(सहायक आचार्य)

हिंदी विभाग, मिरांडा हाउस, दिल्ली विश्वविद्यालय

साहित्य एवं कला से भेंट

सत्य के हाथों से पाखंड का दीपक जलने वाले युग में आप केवल अंधियारा बनकर दिखते हैं। जिसकी रोशनी सबको ज्ञात है पर जिसकी छाया से सबका जीवन अज्ञात है, अज्ञात था और शायद अज्ञात ही रह जाएगा। इतिहास में न जाने कितने ही ऊंचे से ऊंचे आदर्श वाले नयी चेतना नया गीत नये राग गाने वाले व्यक्तित्व रहें किन्तु कभी आप उन्हें लेकर सामान्य के लोगों बीच जाएं।

उनकी रोशनी उनका आदर्श उनकी चेतना का पवित्र से पवित्र रूप, अर्थ और व्यापक दृष्टिकोण का स्तर गिरा दिया जाता है। साहित्य पढ़ने वाले गढ़ने वाले चरित्र समाज में होकर भी समाज से कट जाते हैं कट जाता है उनके साथ उनका वो आईना जिसमें अपनी शक्ल देखकर समाज खुद को अपमानित मानता है, समाज खुद की आलोचना पर पर्दा रखने की अपनी प्रवृत्ति पर किसी भी प्रकार का प्रश्न-चिह्न नहीं चाहता?

कबीर उस खोखले प्रवृत्ति उस पदों से हमें पार देखने को कहते हैं प्रश्न खड़ा करते हैं यहां कबीर एक व्यापक अर्थ में हैं कबीर यहां साहित्य की रोशनी है कबीर यहां साहित्य का संसार है। क्यों एक रचनाकार, साहित्यकार की विधा प्रतिष्ठा योग्य नहीं है इसलिए कि वे खोखला, पाखंडी, या आप में सामान्यतः मिलने से कतराता है? क्या अपराध है प्रेमचंद का कि उन तक समाज का हर चरित्र तो पहुंचा मगर समाज के हर चरित्र तक वो अपनी चेतना, अपना आदर्श, अपना चरित्र नहीं पहुंचा सके?

साहित्य की व्यापकता के लिए, प्रचार के लिए समाज के पैर का कट जाना सत्य के हाथों से पाखंड का दीपक जलाने जैसा ही तो है किसका प्रचार अपने हाथों में लेकर कर रहें हो? किस के हक में दलीले दें रहें हो? किसकी आंखों से भयभीत हो रहें हो? कौन-सी चेतना तुम पर हावी है? किस बाजार में देन-लेन करते हो? क्यों केवल तुम्हें स्वयं से मोह है अनुराग है।

किसी भी साहित्य विधा के अपमान से पूर्व समाज को इन प्रश्नों से गुजरना चाहिए। ये कहने से पूर्व की आपका साहित्य तो बेहद सामान्य सरल एवं साधारण है। यह कोई पेशा थोड़ी है मन बहलाने की वस्तु भर है हमारे बाजार में साहित्य की हर विधा के लिए तो समाज हमेशा ही दरिया रहा जिसमें गोताखोरी करना हमारा

पेशा है। समाज से दरकिनार हुआ साहित्य की गज़ल एवं शायरी की दुनिया का एक फनकार कलमकार कहता है "हैरत है कि हम लोग भी टुकराए हुए हैं हम जैसे तो सीने से लगाने के लिए थे" क्या ये दो पंक्तियां केवल व्यक्तिगत ही हो सकती हैं?

क्या किसी ने केवल अपने व्यक्तिगत दुःख में लिखा होगा? वास्तविकता तो यह है कि ये दो पंक्तियां हर साहित्य की विधा में कार्यरत कलाकारों के समाज में रहकर भी हाशिए पर जीवन व्यतीत करने की मनोव्यथा है। मेरी दृष्टि में कला और साहित्य वह पेशा है जिसमें आने के बाद व्यक्ति प्रतिबिंब बन जाता है एक समाज के रूप में अपनी ही छवि को देखकर उस समाज के गोताखोर से किस बात की ईर्ष्या हो जाती है क्यों आपको उसका कद ऊंचा नहीं लगता?

आपको और आपके चरित्र को आपकी दुनिया को आपके समाज को चंद शब्दों व तनिक किन्तु सराबोर करने वाली कल्पना में कैद करने का हुनर जब आप में नहीं है तो उसे किसी में तो जीवित रहने दें दोस्त नजर में बसना नहीं है उनका मकसद गुजरते हैं। जो दिलों को लेकर तुम्हारी मेहफिल से मानव जीवन का एकमात्र ऐसा पेशा साहित्य की विधाएं हैं जो मनुष्य के हृदय के सबसे समीप होती हैं।

किसी भी अन्य पेशे में व्यक्ति स्वयं से दो-चार होने से रह जाता है हम जो होते हैं वही हमारा साहित्य बन जाता है। एक मृत व्यक्ति को भी बचाने के लिए सांस दी जाती है। उसकी बेहद कदर की जाती है देखभाल की जाती है जबकि हम इस तथ्य के जानकार होते हैं कि वह अब नहीं बचेगा किन्तु एक जीवित साहित्यकार, कलाकार के जीवनकाल में हम अपने जरा से अहंकार से उसकी रोशनी उसका आदर्श उसकी नवीन चेतना को आत्महत्या करने पर मजबूर कर देते हैं सिर्फ इसलिए कि उससे ज्यादा हमें उसकी कला और साहित्य का बोध होने का ऐब होता है अहंकार होता है।

मेरा मानना है कि असली सितारे जमीन पर लाजमी होते हैं रोशनी के लिए न जाने इतनी हैसियत कैसे हो जाती है? कैसे आ जाता है ये गुमान कि हम सिखाने लायक हो गए क्या एक कलाकार को कला सिखाई भी जा सकती है? क्या साहित्यकार को साहित्य पढ़ाया भी जा सकता है? वास्तव में ये निर्भर करता है बिल्कुल निर्भर करता है किन्तु किस नियत से सिखाने चलें हो?

कई बार सिखाने वाले की नियत से ज्यादा साफ सीखने वाले की नियत होती है और सीखने वाला सीखाने वाले से ज्यादा समाज को आईना बेच पाता है साहित्यकार एवं कलाकार होने के लिए वाणी का साधु, हृदय का निर्मल, चेतना का आत्मीय आदि होना मेरी दृष्टि में सर्वप्रथम गुण है और इसलिए हम सब साहित्य एवं कला के इर्द-गिर्द होते हैं किन्तु इस विधा के समीप और इससे भेंट करने का सौभाग्य बहुत ही शेष चरित्रों को मिलता है।

वह चरित्र मैं भी नहीं हूँ वह चरित्र आप भी नहीं है वो चरित्र हृदय में आता है उसे रोशनी बोझ लगती है और अंधेरा प्यारा होता है साधारण दुनिया में तो इसे ऐसे समझा जा सकता है कि जीत गए पर हार हुए से क्यों लगते हो क्यों रहते हो क्यों बनते हो? इसी क्यों का उत्तर है क्योंकि हारे हुए लोग अधिक हैं जीते हुए कम और हारे हुए लोग जीते हुए लोगों का पीछा करते हैं और मैं (साहित्यकार, कलाकार) नहीं चाहता कि कोई मेरे पीछे रहें मैं चाहता हूँ या तो कदम मिलाएं या फिर मेरे साथ गिर जाए या मुझसे आगे जाए यही सच्चे साहित्यकार, कलाकार के गुण होने चाहिए और शायद यही गुण भी औरों से उनको अलग कर देते हैं लोग उनमें ईश्वर भी देखने लगते हैं विचार कीजिए वह चरित्र कितना महान और बड़ा होगा जिसने अपने जीवन में हारे हुए लोगों को पनाह दी है। उनके साथ अपनी जिंदगी गुजारी है जो खुद जिंदगी को पाने के लिए तरसते हैं।

जबकि उस व्यक्ति की काबिलियत उसकी योग्यता इतनी ज्यादा है कि उसे रोशनी से डर लगता है और अंधेरों में खुद को ढूँढना उसका पेशा बन गया है प्रकाश उसके जितने समीप आता है वह उतना ही अंधेरो में रहना चाहता है और यकीन मानिए वो अज्ञात नहीं होगा क्योंकि वह प्रकाश जो उसका पीछा नहीं छोड़ रहा है वह उसने अर्जित किया है अपनी कमाई पर हक नहीं जताना मासूमियत नहीं है बेवकूफी नहीं है बल्कि अहंकार उस इंसान का जो कागज के नोटों की दुनिया में मनुष्य की तरह खुद को देखने लगा है उसकी तनिक-सी जरूरतें हैं इधर खत्म हुई कि उधर जरूरतमंदों पर उसकी दृष्टि चली जाती है।

मैंने साहित्य और कला दुनिया में ऐसे चरित्रों से भेंट की इसलिए मैं स्वयं पर गर्व करता हूँ हर साहित्यकार के कई रंग होते

रचना करते हुए कुछ चेहरे समाज को नहीं छोड़ते, कुछ चेहरे अपनी पृष्ठभूमि की समस्या को, कुछ अपनी आप-बीती को, तो कुछ जग-बीती को कुछ आध्यात्मिक होते हैं कुछ मनोवैज्ञानिक कुछ प्रकृति के किनारे तो कुछ दर्शन के निकट कुछ बहुविषयक कुछ बहुमूल्यक साहित्यकारों एवं कलाकारों के गलियारों में जाकर समाज ने अपनी ही आंखों में कभी खुदको गिरते देखा तो कभी ऊंचाई पर उठते देखा।

मैं एक व्यावहारिक दुनिया को संवेदनशीलता, मानवता, आत्मीयता से भरे साहित्यकार, कलाकार जैसे फरिश्तों के बीच देखकर हर्षोल्लास से खिल उठता हूँ किन्तु मेरा चेहरा उदासी और आंसू से तब भर जाता है जब लोग आंसूओं के मध्य अंतर करते हैं जब लोग सुख को गीत और दुःखों को भजन मानते हैं। साहित्य और कला समाज में व्याप्त संवेदनाओं के अपहरण पर चुप्पी तोड़ती हुई कलमों की आवाजे हैं इन्हें अनसुना या अनपढ़ा नहीं होना चाहिए इसलिए हर साहित्यकार एवं कलाकार संवेदनाओं को अग्रिम रखना चाहता है।

उनके दुःख भजन नहीं हैं उनके दुःख सार्वभौमिक और हम सबकी पीड़ाओं का अंश है। साहित्यकार एवं कलाकार बढ़ते आधुनिक युग के व्यवहारिक दुनिया में संवेदनाओं से भरे वो सादे मुस्कराते चेहरे हैं, जिनसे उपहार में आधुनिक युग की व्यावहारिक दुनिया आचरण एवं मानवीय गुण का बोध प्रेरणा के स्त्रोत के रूप में उधार ले सकती है वह चेहरे समाज में आईने बेचने से कतराने हेतु इच्छुक नहीं बल्कि उन्हें मूल्यों को किताबों में नहीं प्रतिमानों में रूपांतरित कर मनुष्य हृदय के कण-कण में पुनः जागृत करना है।

साहित्य और कला अनकहे मनुष्य के जड़बातों के बिंब भी हैं और रेखाचित्र भी हैं। मार्मिक और हृदय-स्पर्शी साहित्य की गद्य विधाओं में शब्दों, कल्पनाओं और शैली से युक्त हम सबके अश्रुओं की सांसारिक जीवन-यात्राओं का अनुभव दृष्टिगत होता है। इन गद्य विधाओं से पृथक रहने वाला व्यक्ति समाज में जीवनभर संवेदनाओं के पत्थरीकरण को प्रोत्साहित करता रहता है।

- अंकित उपाध्याय
नजफगढ़, दिल्ली

जीवनीपरक उपन्यासकार रांगेय राघव

अपनी अभिव्यक्ति के लिए नयी राहों के अन्वेषी रांगेय राघव का नाम हिंदी साहित्य में श्रेष्ठ गद्यकारों की श्रेणी में लिया जाता है। राघव ने हिंदी साहित्य को न केवल समृद्ध किया बल्कि हिंदी साहित्य और भाषा की सेवा करके हिंदी के शेक्सपियर की संज्ञा भी ग्रहण की। राजेंद्र यादव भी संभवतः रांगेय राघव की लेखनी के प्रशंसक थे; वे रांगेय राघव के लेखनी के विषय में कहते हैं- "उनकी लेखकीय प्रतिभा का ही कमाल था कि सुबह यदि आद्यैतिहासिक विषय पर लिख रहे होते तो शाम को आप उन्हें उसी प्रवाह से आधुनिक इतिहास पर टिप्पणी लिखते देख सकते थे।" रांगेय राघव जी विद्यार्थी जीवन से ही साहित्य में रुचि रखते थे। उन्होंने 'गुरु गोरखनाथ और उनका युग' पर शोध किया था। उनका परिवार भी भाषा प्रेमी था जिसका प्रभाव रांगेय राघव के जीवन पर बहुत पड़ा। उनके पिता संस्कृत और तमिल भाषा के विद्वान थे तो वहीं माता कन्नड़, तमिल और ब्रज भाषा में भी रुचि रखती थी। रांगेय राघव जी को चित्रकारी अपने नाना जी से विरासत में मिली थी। यह चित्रकारी सर्वप्रथम रांगेय जी के लिए कविता लिखने की प्रेरणा बनी। वे स्वयं साहित्य के क्षेत्र में प्रवृत्त होने के विषय में कहते हैं- "चित्रकला का अभ्यास कुछ छूट गया था। 1938 की बात है, तब ही मैंने कविता लिखना प्रारंभ किया। एक दिन रंगीन आकाश को देखकर कुछ लिखा था- वह सब खो गया है और तब से बहुत संकोच से मन ने स्वीकार किया कि मैं कविता कर सकता हूँ। प्रेरणा कैसे हुई? का पृष्ठ लिखना अत्यंत दुरुह है। इतना ही कह सकता हूँ कि चित्रों से ही कविता प्रारंभ हुई थी और एक प्रकार की बेचैनी उसका मूल थी।"²

रांगेय राघव का व्यक्तित्व जितना निराला और आकर्षक था, उनका कृतित्व भी उतना ही अनूठा था। उनके लिखने की गति बहुत तेज थी। वे बहुत ही कम समय में प्रभावी साहित्य लिख देते थे। राघव जी साहित्य की लगभग सभी विधाओं यथा उपन्यास, कविता, कहानी, नाटक, निबंध, आलोचना, रिपोतार्ज में अपनी लेखनी चलायी। उनके उपन्यास हैं 'घरौंदा', 'विषाद मठ', 'मुर्दों का टीला', 'सीधा-साधा रास्ता', 'चीवर', 'हुजूर', 'काका', 'अंधेरे के जुगनू', 'उबाल', 'देवकी का बेटा', 'यशोधरा जीत गई', 'लोई का ताना', 'रत्ना की बात', 'कब तक पुकारूं', 'बंदूक और बीन', 'राई और पर्वत', 'छोटी सी बात' आदि। उनकी कुछ कहानियां- 'साम्राज्य का

वैभव', 'जीवन के दाने', 'अधूरी मूरत', 'इंसान पैदा हुआ', 'एक छोड़ एक', 'मेरी प्रिय कहानियां', 'देवदासी', 'समुद्र के फेन', 'अंगारे न बुझे', 'ऐय्याश मुर्दे'। उनकी कविताएं हैं- 'मेधावी', 'पिघलते पत्थर', 'पांचाली', 'बंधन मुक्ता', 'काव्य कलश', 'उत्तरायण', 'यात्रा के फल', 'मृत्युंजय ज्वाला' आदि।

राघव जी ने विदेशी साहित्य को हिंदी साहित्य के माध्यम से हिंदी भाषी जनता तक पहुंचाने का अनूठा कार्य किया। उन्होंने बहुत सारे उपन्यास लिखे। प्रेमचंद के बाद रांगेय राघव जी युग प्रवर्तक लेखक के रूप में जाने जाते हैं। उनके उपन्यासों की यह खासियत रही है कि उन्होंने जीवनी परक उपन्यास लिखने की शुरुआत की। जीवनी उपन्यास को जीवंत करने में रांगेय जी का विशेष योगदान रहा है। उन्होंने दर्जनों जीवनी उपन्यास लिखकर कई जीवन चरित्रों को जीवंत कर दिया। लेखक ने जीवनी उपन्यासों के माध्यम से वर्तमान समाज को स्वमूल्यांकन के लिए प्रेरित किया।

'भारती का सपूत' उपन्यास भारतेन्दु हरिश्चंद्र के जीवन पर आधारित है। यह हिंदी साहित्य क्षेत्र का प्रथम जीवनी परक उपन्यास माना जाता है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने भारतेन्दु हरिश्चंद्र के संपूर्ण जीवन के वर्णन के साथ ही बाल विवाह की समस्या को भी प्रस्तुत किया है। उपन्यास में भारतेन्दु की प्रेम कथा का विस्तार से वर्णन हुआ है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र को 'आधुनिक हिंदी का पितामह' कहा जाता है। कवि जगन्नाथ दास रत्नाकर जी ने भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी को 'भारती का सपूत' कहा था। उपन्यास में भारतेन्दु की कर्मठता और सेवा भाव को लेखक ने दिखाया है। भारतेन्दु सामंती जीवन की अच्छाइयों और बुराइयों को जानते थे इसीलिए उन्होंने अपने अल्प जीवन में भी साहित्य को समृद्ध कर दिया। लेखक ने भारतेन्दु के जीवन को इतिहास सम्मत और सत्यता के साथ चित्रित किया है।

'देवकी का बेटा' उपन्यास रांगेय जी का ऐसा उपन्यास है जिसमें कृष्ण के विशाल जीवन के कुछ अंश चित्रित हैं। इसमें कृष्ण जन्म से लेकर कंस वध तक की घटनाएं चित्रित हैं। लेखक ने इस उपन्यास में कृष्ण को एक सामान्य मानव के रूप में चित्रित किया है। इतना ही नहीं उन्होंने कृष्ण के जीवन के अलौकिक प्रसंगों को निकालकर उनके जीवन अंशों को तार्किक रूप में प्रस्तुत किया है। कृष्ण जीवन

की समस्त घटनाओं को लेखक में क्रमागत रूप से प्रस्तुत कर इसे बोधगम्य बनाया है। लेखक ने कृष्ण के विचार और उपदेशों को भी जगह-जगह व्यक्त किया है जिससे कृष्ण का लोकनायक व्यक्तित्व उभर कर सामने आया है। लेखक उपन्यास की भूमिका में उपन्यास के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं- "मैंने कृष्ण चरित्र को चमत्कार से अलग करके देखा है। धर्म मोड़ लोग तो शायद इसे नहीं सह सकेंगे, उनसे मैं क्षमा मांगता हूँ परंतु वैसे तो महानता कृष्ण के मनुष्य रूप में प्रकट होती है वह वैसे नहीं मिलती चमत्कारों में सत्य डूब जाता है।"³

'यशोधरा जीत गयी' उपन्यास के माध्यम से लेखक ने स्त्री जीवन के सत्य को उद्घाटित करने का प्रयास किया है। बुद्ध के जीवन और विचारों के बारे में हम बहुत पढ़ते हैं परंतु लेखक ने यहां यशोधरा की दृष्टि से बुद्ध जीवन और बुद्ध द्वारा पत्नी और पुत्र को अकेला छोड़कर चले जाने का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से चित्रण किया गया है। उपन्यास में प्रथम, मध्यमा और उत्तर नामक तीन खंडों में संन्यासी सिद्धार्थ के जीवन की घटनाओं का वर्णन किया है और उसके बाद यशोधरा के मनोभाव को भी वाणी मिली है। यशोधरा एक उपेक्षित स्त्री पात्र है जिसने बुद्ध के जाने के बाद अपने जीवन को अकेले ही जीना स्वीकार किया। उपन्यास में यशोधरा कहती है- "हमने ही समर्पण कर-कर के इस पुरुष को इतना दंभी और मूर्ख बना दिया है।"⁴ हमारे समाज में स्त्री को त्याग और बलिदान की देवी के रूप में ही देखा जाता है। हमारा समाज एक स्त्री से ही ऐसी उम्मीद करता है। लेखक यशोधरा के स्वाभिमान की रक्षा करते हुए एवं उसके त्याग को एक सटीक परिभाषा देते हुए दिखाते हैं। हमने हमेशा यशोधरा को त्याग की देवी रूप में ही प्रतिबिंबित किया है परंतु लेखक ने यहां यशोधरा को विद्रोही रूप में चित्रित किया है। एक स्त्री के लिए अपने स्वाभिमान की रक्षा करने के लिए विद्रोह करना आवश्यक है लेखक ने इसे यशोधरा के चरित्र में बखूबी संजोया है। कपिलवस्तु में बुद्ध अनेक व्यक्तियों को बौद्ध धर्म की दीक्षा देते हैं और यशोधरा के द्वार पर जाते हैं परंतु यशोधरा नहीं जाती है और अपने पुत्र को दीक्षा दिलवा कर अपने त्याग से पूरे समाज को प्रभावित करती है।

'लोई का ताना' उपन्यास कबीर जीवन पर आधारित है। उपन्यास की शुरुआत कमाल से होती है जो संत कबीर के पुत्र हैं। लेखक का उद्देश्य कबीर के विद्रोही वाणी और मानवतावाद के संदेश को मुखर करने के साथ-साथ कबीर के संग रहकर लोई के प्रगतिवादी विचारों को स्पष्ट करना। किसी पुरुष के महान होने के पीछे एक स्त्री का हाथ होता है इस उपन्यास में लेखक ने लोई को इसी संदर्भ में दिखाया है। लेखक ने मध्यकालीन परिवेश को दिखाने के लिए जन भाषा का प्रयोग किया है।

'रत्ना की बात' उपन्यास भक्ति काल के कवि तुलसीदास के जीवन पर आधारित है। मरणासन्न तुलसीदास की पूर्व स्मृतियों के सहारे संपूर्ण कथा प्रस्तुत की गई है। इसमें लेखक ने तुलसी के जीवन को चार भागों में बांटते हुए उनके जन्म, दुःखद बचपन, गुरु नरहरिदास से दीक्षा, रत्ना से विवाह और आसक्ति-विरक्ति, सम्पूर्ण वैराग्य तथा रामचरितमानस आदि काव्यों की रचना प्रसंगों का चित्रण किया है। रत्ना के धिक्कार ने तुलसीदास को आत्मग्लानि से भर दिया जिससे वह अपने जीवन उद्देश्य को तलाशने निकल पड़े। लेखक ने उपन्यास में यह दिखाया है कि रत्ना के धैर्य और साहस ने तुलसीदास के चरित्र को सर्वोच्च शिखर पर पहुंचा दिया। तुलसीदास के काव्य निर्मिति के पीछे प्रेरणाकारक शक्ति को लेखक ने अत्यंत स्वाभाविक और सुंदर चित्रण किया है।

'लखिमा की आंखें' उपन्यास मैथिल कोकिल विद्यापति के जीवन पर आधारित है। इस उपन्यास में लेखक ने विद्यापति के व्यक्तिगत और साहित्यिक जीवन का विस्तार से वर्णन किया है। इस उपन्यास को चार भागों में विभाजित कर विद्यापति के जीवन को विस्तार से लेखक ने प्रस्तुत किया है। उनका बचपन, शिक्षा, राजकुल में राज कवि के रूप में सम्मानित, अनेक मान-सम्मान तथा विभिन्न विषयक काव्य निर्मिति, शृंगार परक रचनाओं, भक्ति काव्य आदि का परिचय इस कृति के माध्यम से प्राप्त होता है। लेखक ने विद्यापति के जीवन परिचय के साथ ही तत्कालीन परिस्थितियों का भी वर्णन किया है। इस उपन्यास की कथा भूमि 200 वर्षों में व्याप्त है। प्रस्तुत उपन्यास में विद्यापति के साथ राजा शिव सिंह, रानी लखिमा देवी और पत्नी सुशीला देवी के चरित्र का भी सुंदर वर्णन हुआ है।

'धूनी का धुआं' उपन्यास गुरु गोरखनाथ पर आधारित है। लेखक ने गुरु गोरखनाथ जी पर शोध भी किया है। उन्होंने इस उपन्यास में गुरु गोरखनाथ के बाल्यावस्था से लेकर उनके योगी बनने तक का चित्रण किया है। गोरखनाथ का समय 10 वीं सदी माना जाता है। यह वही समय है जब भारत में छोटे-छोटे राज्य थे और इस्लाम धर्म भारत में प्रवेश कर चुका था। गोरखनाथ का जीवन संघर्षशील होते हुए भी उनके विचार प्रगतिशील थे। मानवतावाद से प्रेरित गोरखनाथ का व्यक्तित्व इस उपन्यास में निखर कर सामने आया है। लेखक क्रिया विशेषता है कि वह अपने चरित्र प्रधान या जीवनी परक उपन्यासों में मुख्य चरित्र की कथा के साथ गौण कथाओं को भी विस्तार देते हैं। वह इस उपन्यास में भी राजा भर्तृहरि, रानी साम देई, रानी विमलावती और मत्स्येन्द्रनाथ आदि की कथा को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। इन चरित्रों के माध्यम से गोरखनाथ का व्यक्तित्व और भी अधिक निखर कर सामने आया है। यह उपन्यास गुरु गोरखनाथ के विचारों

और दर्शन को अभिव्यक्ति देने वाला है। इस उपन्यास का शीर्षक भी प्रतीकात्मक है जिससे पाठकों में जिज्ञासा बढ़ती है।

'मेरी भाव बाधा हरो' उपन्यास बिहारी के जीवन चरित्र पर आधारित है। उपन्यास में बिहारी के बचपन, यौवन और वृद्धावस्था का विस्तार से वर्णन हुआ है। बिहारी का व्यक्तित्व अद्भुत है वह एक सफल चिंतक, दूरदर्शी, साधक, निर्भीक और लोकप्रिय व्यक्ति हैं। इस उपन्यास में लेखक ने स्त्री की दुर्दशा पर चिंता व्यक्त किया है। बिहारी भी वैश्या चंद्रकला के प्रति आसक्त रहते हैं। बिहारी की इस आसक्ति को देखकर उनकी पत्नी सुशीला कभी भी उनका विरोध नहीं करती है बल्कि उनका साथ देती है। उपन्यास में सुशीला बिहारी से कहती हैं- "तुम किसी बात की फिकर मत करो। कविता लिखा करो। मैं सब संभाल लूंगी।" पति-पत्नी का रिश्ता अटूट होता है उसमें कोई भी तीसरा कभी भी अपनी जगह नहीं बना सकता है। पति-पत्नी दूर होकर भी एक दूसरे के पास होते हैं। यह विचार स्वयं लेखक के हैं उन्होंने भी अपनी पत्नी को सदैव यही बातें समझायी हैं। वह अपनी पत्नी से बहुत प्रेम करते थे परंतु जीवन में कार्य और कर्तव्य को सबसे ऊपर रखते थे। वह अपनी पत्नी से कहते हैं- "सुलोचना, यह जरूरी नहीं कि पति-पत्नी हमेशा साथ रहें। जीवन में कार्य और कर्तव्य का स्थान बहुत ऊंचा है और यदि पति-पत्नी में परस्पर ने और एक-दूसरे को समझने की क्षमता है तो वह कहीं भी रहे वह वैसा ही बना रहता है। मैं चाहता हूँ कि तुम पढ़-लिखकर मेरा साथ दो। हम साथी हैं और हमें एक पथ पर चलना है।"⁵

हिंदी उपन्यास जगत को डॉ. रांगेय राघव एक ओर संख्या की दृष्टि से समृद्ध करते हैं तो दूसरी ओर अपनी उपन्यास कला से। कथ्य, भावबोध, विषय स्थापना, शिल्प तथा गुणात्मकता व वैचारिकता के धरातल को भी रेखांकित करते हैं। उनका हिंदी उपन्यास जगत को एक बहुत बड़ी मौलिक देन है जीवन चरितात्मक उपन्यास की श्रृंखला। यह हिंदी उपन्यास साहित्य में नवीनतम उपलब्धि है। सभी उपन्यास युग चेतना से संपृक्त हैं। इनमें वर्णित अतीत के गौरव का प्रकाश हमारे वर्तमान को प्रकाशित करता है और भविष्य को भी

अंधकार से मुक्त करने में सहायक सिद्ध होगा। उनके उपन्यासों में दीन-हीन, शोषण, पीड़ित जन-समुदाय के निमित्त एक शोषण मुक्त समाज की परिकल्पना हुई है। मानवतावादी चेतना के हामी लेखक रांगेय राघव जी ने अपने सम्पूर्ण साहित्य में मूल्यों को स्थापित किया है, विषम परिस्थितियों में भी समानता, एकता, बंधुत्व, प्रेम, सहयोग और सत्य को प्रस्थापित करने का अथक प्रयास करते रहें। रांगेय जी एक सजग, सचेतन साहित्यकार हैं।

उनकी संवेदना वंचितों और अभाव में जी रहे जरूरतमंदों के साथ रही। उन्होंने अपने दृढ़ मनोबल से समाज, धर्म, राजनीति, इतिहास, संस्कृति तथा जीवन के हर पहलू को अभिसिंचित किया है। उन्होंने साहित्य की हर विधा को युवती को व्यापक परिदृश्य में देखने की अपूर्व शक्ति के आधार पर समृद्ध किया है। वे क्रम के उपासक थे। यही कारण है कि वे श्रमजीवी लोगों के साथ सदैव खड़े रहें। लेखक ने अपने जीवनीपरक उपन्यासों के माध्यम से वर्तमान जीवन को मूल्यांकित करते हुए भविष्य को उज्ज्वल बनाने की राह दिखायी है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. यादव, राजेंद्र, कम होती है रांगेय राघव जैसी प्रतिभाएं, अभिगम वेब वार्ता, सितंबर 5, 2013
2. डॉ. बाबूलाल, वी. मारु, चरितात्मक उपन्यास और रांगेय राघव, साधना प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2012, पृष्ठ संख्या 25
3. राघव रांगेय, देवकी का बेटा राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, 2007, भूमिका
4. राघव रांगेय, यशोधरा जीत गई, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2013, पृष्ठ संख्या 102
5. वर्मा डॉ. कल्याण प्रसाद, रांगेय राघव : एक अंतर्गता, पृष्ठ संख्या 285

- दीक्षा गुप्ता

(शोधार्थी)

हिंदी विभाग, कोलकाता विश्वविद्यालय

रहस्यवाद और अज्ञेय का काव्य

रहस्यवाद को लेकर काफी विद्वानों ने अपने मत प्रस्तुत किये हैं। यह छायावाद से मिलती-जुलती किंतु भिन्न प्रवृत्ति है, जिसमें प्रकृति के माध्यम से कवि परमात्मा से संबंध स्थापित करने का प्रयास करता है। रहस्यवादी कवि की श्रेणी में छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। रहस्यवाद में कवि जगत के समस्त कार्यों में अलौकिक सत्ता के स्वरूप को देखता है। रहस्यवादी प्रवृत्ति कुछ-कुछ अध्यात्मवाद से भी साम्य रखती है। साहित्य और सर्जनात्मकता में रहस्यवाद का इतिहास बहुत पुराना है, लेकिन हिंदी में आधुनिक रहस्यवाद पश्चिम की देन माना जा सकता है। आधुनिक युग में रहस्यवाद का प्रारंभ छायावादी युग के प्रारंभ से माना जाता है। रहस्यवाद की प्रवृत्तियों को अज्ञेय की कुछ कविताओं में भी देखा जा सकता है। महादेवी वर्मा के रहस्यमयी अपरिचित के समान ही अज्ञेय भी किसी अपरिचित से पूछते हैं— “हम तुम किसके पूजा-साधन / किसको न्यौछावर अपना मन?”¹

रहस्यवादी काव्य भाव के स्तर पर अन्तःसृष्टि व बाह्य सृष्टि की समानता स्थापित करने का प्रयास करता है और आध्यात्मिकता के स्तर पर इस आंतरिक और बाह्य सृष्टि की एकता को मूल सत्य के रूप में स्थापित करता है। अध्यात्म का सहारा लेकर सर्जन को रहस्यवाद से जोड़ने का प्रयास कवि को दर्शन से जोड़ता है। जिस प्रकार जयशंकर प्रसाद की अनुभूति में कश्मीरी शैव दर्शन में, निराला की सर्जनशीलता में अद्वैत की भक्ति साधना, पंत की रचनाओं में सृष्टि में व्याप्त मूल सत्य को खोजने का प्रयास तथा महादेवी की रचनाओं में अज्ञात, निराकार प्रिय की खोज दिखाई पड़ती है। उसी प्रकार अज्ञेय के यहां भी अध्यात्म के मार्ग पर रहस्यवाद की कुछ प्रवृत्तियों के प्रभाव से किसी सत्ता को खोज निकालने की लालसा दिखाई पड़ती है। रहस्यवादी कवि प्रकृति में प्रियतम को देखते हैं तथा संसार की प्रत्येक सृष्टि में रहस्यमयी प्रियतम के होने का आभास रखते हैं। अज्ञेय की ‘चिंता’ में भी ऐसी मनोदशा को देखा जा सकता है, जब वे निर्झर को ही पुकार उठते हैं— “ओ अजस्त्र, ओ पीड़ा-निर्झर / ओ तेरा यह अविकल मर्मर।”²

रहस्यवादियों की एक विशेषता यह भी होती है वे सिद्ध की अपेक्षा साधना को अनिवार्य मानते हैं। अज्ञेय भी इस विशेषता को अपनाते नजर आते हैं, जब वे लिखते हैं— “प्राप्ति कृपा है वरदाता की / साधक को है सिद्धि निवेदन / छवि-दर्शन तो दूर, मुझे / तेरा चिंतन ही महामिलन।”³

अज्ञेय भी एक आस्था को साथ लेकर जीवन-यात्रा का लक्ष्य अपने साधक को पा लेने में मानते हैं। रहस्यवादी विचारधारा के स्तर पर अज्ञेय सर्वाधिक महादेवी वर्मा के निकट नजर आते हैं। अज्ञेय की कविता में रहस्यवादी प्रवृत्ति के अतिरिक्त अध्यात्मवाद या दार्शनिकता का प्रभाव दिखाई पड़ता है। अज्ञेय ने कभी दर्शन या अध्यात्म को घोषित रूप से नहीं ओढ़ा, लेकिन परिवेश व संस्कृति से प्राप्त ज्ञान और अनुभूति कहीं-कहीं उनकी कविता में अध्यात्म का भाव भी ले आती है। अज्ञेय स्वयं को दार्शनिक नहीं मानते, हां दार्शनिक प्रश्नों में रुचि रखते हैं। वे स्वयं कहते हैं - “मैं दार्शनिक बना ऐसा मैं नहीं जानता, अपने को दार्शनिक मानता भी नहीं हूं। पाठक क्या मानते हैं या उनके मन का आधार कितना पुष्ट है, वहीं जाने - मैं इस बारे में क्या कहूंगा। थोड़ा बहुत दर्शन पढ़ा, कुछ दार्शनिक प्रश्नों में रुचि है। बाकी जीवन के प्रति सतत् जिज्ञासा मुझ में है और चीजों को समझने की कोशिश करता रहता हूं, समझने के लिए उनके बारे में सोचता भी हूं।”⁴

भारतीय चिंतन में दर्शन आत्म-केंद्रित माना जाता है। अज्ञेय भी आत्म-सत्ता को लेकर जिज्ञासु हैं। वे इस आत्म-तत्त्व की अनुभूति करते हैं और इसे महाशून्य से जोड़ने का प्रयास करते हैं— “ओ आत्मा री, / कन्या भोली क्वारी / महाशून्य के साथ भांवरें तेरी रची गई। ... / वह महाशून्य ही अब तेरा पथ।”⁵

अज्ञेय का रहस्यवाद ईश्वर की ओर उन्मुख नहीं है। वे उस असीम सत्ता में आस्था तो रखते हैं, उसमें विलय भी चाहते हैं, किंतु ईश्वरवादी बनकर नहीं। रहस्यवाद सत्य से अधिक अनुभूति पर आधारित रहता है। छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा की तरह ही अज्ञेय भी रहस्यमयी सत्ता का अन्वेषण चाहते हैं, लेकिन उनका रहस्यवाद कल्पना मात्र पर आधारित नहीं, बल्कि वैज्ञानिकता से जुड़ा रहस्यवाद है, जो छायावादी रहस्यवाद से थोड़ा भिन्न माना जा सकता है। अज्ञेय की रचनाओं में रहस्य आस्था से अधिक बुद्धिगम्य नजर आता है। उनकी कविताओं में रहस्यवाद का जो स्वरूप दिखाई देता है। वह बौद्धिक क्षमता से विकसित भाव है। अज्ञेय का अध्यात्म मानव लोक की सोच से परे नहीं, बल्कि उसके बुद्धि की सीमा में ही निहित है। छायावादी रहस्यवाद की तरह अज्ञेय के यहां रहस्यपूर्ण स्थितियां दिखाई नहीं देती, जहां केवल विराट सत्ता हो, लौकिकता न हो। अज्ञेय भी विराट के रहस्य को खोजने के जिज्ञासु हैं, लेकिन तर्क और बुद्धि के साथ— “मैं भी एक प्रवाह में हूं- / लेकिन मेरा रहस्यवाद ईश्वर की ओर उन्मुख नहीं है, / मैं उस असीम शक्ति से / संबंध जोड़ना चाहता हूं- / अभिभूत होना चाहता हूं / जो मेरे भीतर है।”⁶

अज्ञेय का रहस्यभाव या दर्शन व्यक्ति में आत्म परिष्कार की प्रवृत्ति जगाता है। वे उस विराट सत्ता को बाह्य जगत में ही नहीं, बल्कि मनुष्य के भीतर भी देखते हैं। दरअसल अज्ञेय कुछ स्तरों पर आरंभ से ही परंपरा से आगे बढ़कर देखने के पक्षधर रहे हैं। परंपरागत अनुभूतियों और मान्यताओं के विपरीत वैज्ञानिकता और आधुनिकता से अधिक जुड़े हैं, लेकिन इसका तात्पर्य यह बिल्कुल नहीं कि वे परंपरा को पूर्णतः नकारते हैं। असल में वे प्रयोग, आधुनिकता और परंपरा को साथ लेकर चलते हैं। अज्ञेय का रहस्यवाद केवल बाह्य प्रकृति में ही नहीं, वरन् अपने अंदर महाशून्य, महासत्ता का अन्वेषण करता है। उनकी कविता मनोविज्ञान के आधार पर मानव के मनःस्थिति के रहस्य का उद्घाटन करने का प्रयास करती है— “आहा! उसी में कैसी एकांत निविड़ / वासना थरथराती है / तभी तो सांप की कुंडली हिलती नहीं / फन डोलता है।”⁷

अज्ञेय की कविताओं में नव्य रहस्यवाद का स्वरूप दिखाई पड़ता है, जो परंपरागत रहस्यवाद से भिन्न स्वर प्रकट करता है। अज्ञेय के काव्य-संग्रह ‘आंगन के पार द्वार’ में कवि की चेतन आत्मा विराटता से तादात्म्य के नजदीक पहुंच गई है। इस काव्य-संग्रह में जो कविताएं संग्रहित हैं, उनमें रहस्यवादी स्वर की प्रधानता देखी जा सकती है। यह काव्य-संग्रह तीन खंडों में विभक्त है— 1. अन्तःसलिला, 2. चक्रांत शिला, 3. असाध्य वीणा।

प्रथम खंड ‘अंतःसलिला’ में कवि ने जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति का प्रयास किया है। द्वितीय खंड ‘चक्रांत शिला’ ‘पिएर-क्वि-वीर’ का हिंदी अनुवाद मानी जाती है। ‘चक्रांतशिला’ समय के चक्र का द्योतक है, यह काल को दर्शाता है। इस खंड की कविताएं कवि के रहस्यवादी भाव को व्यक्त करती नजर आती हैं। तृतीय खंड ‘असाध्य वीणा’ में एक चीनी आख्यान के द्वारा रहस्यवाद का निरूपण हुआ है। अज्ञेय के इस रहस्य भाव में उनकी विभिन्न धर्मों के प्रति आस्था, उनका गहन अध्ययन तथा उनकी संस्कृति से जुड़ी घटनाओं का विशेष प्रभाव है। अज्ञेय का यह रहस्यवाद भारतीय रहस्यवादी कवियों से अधिक पाश्चात्य के आधुनिक विचारकों से साम्य रखती है। अमरीकी दार्शनिक राल्फ बाल्डो, इमर्सन, थोरो आदि के रहस्यवादी भाव अज्ञेय की विचारधारा से मिलते-जुलते नजर आते हैं। अज्ञेय का अध्यात्म, उनका दर्शन, उनका रहस्य तर्क पर आधारित एक बौद्धिक सत्य है, जो व्यक्ति को अदृश्य में भटकने से बचाता है। अज्ञेय ‘रहस्यवाद’ कविता में कहते हैं— “रहस्यमयता वह आवरण है, जिससे ढंककर / हम उसे असीम बना देते हैं। / ज्ञान कहता है, जो आवृत है, उससे मिलन नहीं हो सकता, / यद्यपि मिलन अनुभूति का क्षेत्र है, / अनुभूति कहती है, जो गंगा है वह सुंदर नहीं है, / यद्यपि सौंदर्य-बोध ज्ञान का क्षेत्र है / मैं इस पहेली को हल नहीं कर पाया हूं, यद्यपि मैं रहस्यवादी हूं / क्या इसलिए मैं केवल एक अणु हूं / और जो मेरे आगे है वह एक असीम?”⁸

‘रहस्यवाद’ कविता में रहस्यवाद को जिस रूप में अज्ञेय अभिव्यक्त करते हैं, वह उनके निजी अनुभवों का परिणाम है। सर्वप्रथम ‘इत्यलम’ संग्रह के ‘हियहारिल’ कविता में अज्ञेय के नव्य रहस्यवाद के दर्शन होते हैं। ‘द्वारहीन द्वार’ कविता में भी लौकिक रहस्यवाद (नव्य रहस्यवाद) से अनुप्रेरित कविताएं संकलित हैं। रहस्यवाद और अध्यात्मवाद की पृष्ठभूमि पर लिखी कविता ‘असाध्य वीणा’ भी अज्ञेय को इस भाव-बोध में श्रेष्ठ कवि सिद्ध करती है। अज्ञेय का अध्यात्म जीवनोन्मुखता से भिन्न नहीं है। वे असीम के प्रति समर्पण भाव रखते हैं, लेकिन इस समर्पण और अध्यात्म में विशिष्ट शब्द प्रयोगों एवं सूक्ष्म बौद्धिकता ने अज्ञेय के काव्य को नव्य रहस्यवादी प्रत्यय से जोड़ने का काम किया है। नव्य रहस्यवाद को रहस्यवाद की उत्तर स्थिति माना जाता है। इसलिए रहस्यवाद की प्राचीन संकल्पना के अनुसार इसे भी (नव्य रहस्यवाद) केवल अध्यात्मवाद के संदर्भ में ही देखा जाता है। आरंभ से ही रहस्यवाद और अध्यात्मवाद को यथार्थ जीवन से दूर एक अदृश्य, असीम परिकल्पना का द्योतक समझा जाता है, लेकिन अज्ञेय का काव्य इन रूढ़ अर्थों से मुक्त नवीन रहस्य और अध्यात्म की संकल्पना प्रस्तुत करता है, जब अज्ञेय लिखते हैं - “मैं उसकी बूंद-बूंद के संचय के हित सौ-सौ बार मरूं / मैं बार-बार हठ करके यह अनन्य मानव लोक वरूं।”⁹ तो वे कोरा अध्यात्म की नहीं, वरन् मनुष्य केंद्रित आध्यात्मिकता की बात करते हैं।

अज्ञेय की रहस्यवादी चिंतन की एक विशेषता यह भी है वे तर्क-वितर्क के साथ ही सिद्धी की अपेक्षा साधना की अनिवार्यता पर अधिक बल देते हैं। अज्ञेय की यह नव्य रहस्यवाद की संकल्पना से मिलती-जुलती संवेदना शब्द से मौन तक की, अस्तित्व से शाश्वत तक, समय से समयातीत तक की यात्रा है। उनकी आत्मान्वेषण की चेष्टा, अंतर्मुखता ब्रह्म सत्ता में विलयन की इच्छा नहीं, बल्कि ‘अस्ति’ की तलाश है। अज्ञेय स्वयं कहते हैं - “अस्ति पहले है, भवति बाद में। अगर मैं अपने अस्तित्व के बारे में निःसंशय नहीं हूं— यानि यह आस्था मुझमें नहीं है ‘मैं’ हूं और यह होना और यह ‘मैं’ एक विविक्त, अद्वितीय, स्वतंत्र, आत्म-चेतन और आत्मानुशासित ‘मैं’ का होना है, एक केंद्र युक्त सत्ता ‘होना’ जिसकी परिधि है और केंद्र जिसका ‘मैं’ है— तो मैं किसी बात के संबंध में भी असंदिग्ध नहीं हो सकता।”¹⁰

इस प्रकार देखा जा सकता है अज्ञेय की कविताएं कुछ-कुछ स्तरों पर रहस्यवाद, अध्यात्मवाद की संकल्पना को भी प्रदर्शित करती नजर आती हैं। कहीं पर यह रहस्य भाव छायावादी कवयित्री महादेवी की रहस्यवादी संवेदना से साम्य रखती है, तो कहीं आधुनिक तर्क और बौद्धिकता पर आधारित नव्यरहस्यवाद की संकल्पना को व्यक्त करती हैं। ऐसी काव्य-पंक्तियां, जिनमें रहस्यभाव दिखाई पड़ता है, उनके सर्जन में भले ही अज्ञेय का लक्ष्य आध्यात्मिक या लोकोत्तर

न रहा हो, लेकिन जीवन को देखने-परखने की दृष्टि उन्हें परंपरा से प्राप्त हुई है, अतः परंपरागत संकल्पनाएं भी अज्ञेय के काव्य में रहस्य और अध्यात्म की उपस्थिति को सिद्ध करती हैं। वे जानते हैं इस दुनिया के पार भी एक दुनिया हैं, पर वह अलौकिक है, अपरिमेय है।

अज्ञेय रहस्य भाव की अभिव्यक्ति के लिए अपने काव्य-पंक्तियों में रहस्यात्मक प्रतीकों, शब्दावलियों का भी प्रयोग करते हैं। अज्ञेय आधुनिकता और परंपरा के सेतु कवि माने जा सकते हैं। वे जितना आधुनिक हैं, उतना ही परंपरागत भी, लेकिन यह परंपरा रूढ़ि नहीं है, बल्कि निरंतर विकासमान तथा आधुनिकता की सहायक है। यही कारण है कि उनका अध्यात्म भी कोरा धार्मिक न होकर वर्तमान से संदर्भित संकल्पना है। अज्ञेय नास्तिक नहीं हैं, इस संबंध में....कहते हैं “अज्ञेय जी नास्तिक बुद्धिवादी के रूप में ही विख्यात रहे हैं। उनके काव्य में आस्था के, उत्सर्ग के मिलने वाले प्रसंगों की व्याख्या भी मानवीय भविष्य और मंगल के संदर्भ में की जाती रही है, पर उनकी ‘कितनी नावों में कितनी बार’, ‘क्योंकि मैं उसे जानता हूं’, ‘सागर मुद्रा’, ‘पहले मैं सन्नाटा बुनता हूं’, सदृश परवर्ती कविता पुस्तकों में भक्ति चेतना के संकेत भी मुझे मिले।”¹¹

अज्ञेय की संवेदना में भरपूर आस्था देखी जा सकती है, लेकिन यह आस्था जीवन के प्रति है, अस्तित्व के प्रति है। यही कारण है उनका रहस्यभाव और अध्यात्म भी आधुनिक, बौद्धिक तथा तार्किक है, जिसके अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है, जो अपने भीतर रहस्यानुभूति को समाहित करते हैं, जैसे- सेज, पर्वत, कपाट, किरण, बूंद, लहर, चातक, कच-टुकड़े, प्याला, आत्मा, अपरिमेय, मौन, शून्य, उजाला, मछली, सागर, कवच, माला, मणियां, नदी, रेत, धुंध, महाशून्य, हिमतारों का जाल, अंधकार, कण इत्यादि।

दरअसल अज्ञेय धर्म और भक्ति को उच्च श्रेणी में देखना चाहते हैं, उसमें उभरी विकृतियों और आडंबरों को दूर कर उसे सर्वांग संपूर्ण बनाने के पक्ष में हैं। वे कहते हैं— “कभी सोचता हूं, जिस धर्म का आधार इतना दृढ़ और सर्वांग संपूर्ण हैं, जिसकी कल्पना इतनी ऊंची, उसी का व्यावहारिक रूप क्यों इतना संकर, इतना संकीर्ण, इतना ऐहिक, इतना वल्ग्वर, इतना गंदा है छोटे-छोटे वन और जनजातीय धर्म में उसका मुकाबला कर सकते हैं।”¹²

अध्यात्म भौतिक जीवन और आत्मा के संबंध से जुड़ी संकल्पना है। अज्ञेय की आध्यात्मिक दृष्टि भी उनकी भूमि और उनकी संस्कृति से जुड़ी है। वे किसी भी धर्म, रहस्य और आध्यात्मिक परिकल्पना को मानव जीवन और बौद्धिकता से जोड़कर ही देखते हैं। इसलिए उनके रहस्यभाव का संबंध नव्य रहस्यवाद की आधुनिक संकल्पना से जोड़कर देखना अधिक सार्थक होगा।

अज्ञेय ने अपनी कविताओं में जिस रहस्यानुभूति को स्थान दिया है। वह मानवीय बुद्धि को सार्थक बनाती है। अज्ञेय का रहस्यानुभव

अज्ञात को ज्ञात बनाने का प्रयास करता है। भारतीय दर्शन के समान ही अज्ञेय की कविताओं में भी विराट और रहस्य दोनों के दर्शन होते हैं। अज्ञेय उस विराट के रहस्य को उजागर के लिए प्रयासरत हैं, लेकिन वैज्ञानिक दृष्टि से साथ। वे रहस्यानुभूति में भी प्रयोग का सहारा लेते हैं, वे भी अन्य रहस्यवादी कवियों की भांति अपनी कविता में विराट की कल्पना करते हैं— “कौन द्वारी / कौन अगारी / न जाने, / पर द्वार के प्रतिहारी को / भीतर के देवता ने / किया बार-बार पा-लागान।”¹³

लेकिन वे इस असीम शक्ति, इस विराट को व्यक्ति के अंदर भी ढूंढते हैं। इस प्रकार देखा जा सकता है अज्ञेय का रहस्यवाद वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अनुप्रेरित नव्य रहस्यवाद है, जो अंतर्जगत और बाह्य जगत् के लौकिकता-अलौकिकता के साथ अपनी प्रयोगशील दृष्टि से एक नए तरह का संबंध स्थापित करता है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. अज्ञेय; चिंता, राजपाल एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 1970, पृष्ठ संख्या 131
2. अज्ञेय; चिंता, राजपाल एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 1970, पृष्ठ संख्या 136
3. अज्ञेय; इत्यलम, हिय हरिल ‘एक चित्र’, प्रतीक प्रकाशन, दिल्ली, 1946, पृष्ठ संख्या 124
4. जैन एवं सहाय; इंदु एवं रघुवीर; अपरोक्ष - अज्ञेय से सात संवाद, सरस्वती विहार, दिल्ली, 1979, पृष्ठ संख्या 82
5. अज्ञेय; आंगन के पार द्वार, ‘चक्रांत शिला’, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, 1961, पृष्ठ संख्या 42
6. अज्ञेय; पूर्वा, राजपाल एंड संस प्रकाशन, दिल्ली, 1965, पृष्ठ संख्या 79
7. मिश्र एवं शाह, विद्यानिवास एवं रमेशचंद्र (संपादक); अज्ञेय काव्य - स्तबक, साहित्य अकादमी प्रकाशन, 2018, पृष्ठ संख्या 113
8. वही, पृष्ठ संख्या 69
9. वही, पृष्ठ संख्या 101
10. वही, पृष्ठ संख्या 101
11. वही, पृष्ठ संख्या 101
12. सिंह एवं कमल, नामवर एवं अरुण (प्रधान संपादक); महाशून्य के महामौन का महाकवि : अज्ञेय - रामरती मलिक, आलोचना, त्रैमासिक पत्रिका, सहस्राब्दी अंक 41, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2011, पृष्ठ संख्या 102
13. थानवी, ओम; अपने-अपने अज्ञेय (भाग-1), वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2011, पृष्ठ संख्या 27

— डॉ. रश्मि मिश्रा
(सहायक आचार्य)

शिवाजी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

विवेकी राय के गद्य में आंचलिकता का स्वरूप

स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले भारतवासियों ने 'स्वतंत्र लोकतांत्रिक भारत' की कामना की थी, जिस व्यवस्था में सभी भारतवासी जातीय बंधन, रंग, ऊँच- नीच और अमीर-गरीब के बंधनों से मुक्त रहेंगे और गुलामी के बंधनों से निकल कर अपना चहुंमुखी विकास करने में सक्षम होंगे परंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात मोहभंग की स्थिति उत्पन्न हो गई और लोग गांव छोड़कर शहरों की ओर पलायन करने लगे। पूंजीवाद का वर्चस्व पूरे विश्व पर अपना अधिपत्य स्थापित कर चुका था।

विवेकी राय को ग्रामीण जीवन की सांच और आंच दोनों की परख है। शहरी जीवन व्यतीत करने के बाद भी उनका अंतर्मन ग्रामीण जीवन की ओर ही रहा। ग्रामीण जीवन उनके मन में इस तरह सिक्त जान पड़ता है, जिस तरह गोपियों के मन में "श्री कृष्ण"। उनके साहित्य लेखन में ग्रामीण परिवेश आच्छादित है। उनके साहित्य के जीवंत पात्रों को आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में आसानी से देखा जा सकता है। उन्होंने ग्रामीण क्षेत्रों के परिवेश, समस्याओं, संस्कृति, खान-पान, वेशभूषा और धार्मिक आस्थाओं का सटीक विवरण प्रस्तुत किया है। विवेकी राय ने अपने साहित्य लेखन की लगभग सभी विधाओं उपन्यास, कहानी, रिपोर्टाज, निबंध और डायरी में आंचलिकता की गंध को प्रस्तुत किया है, वह गंध चाहे दुर्गंध हो या सुगंध निश्चित तौर पर सजीव आंचलिकता का बिंब प्रस्तुत करने में उत्तीर्ण रही है।

विवेकी राय की कहानियों में ग्रामीण जीवन को राष्ट्रीयता से जोड़ा गया है, क्योंकि भारत को ग्रामीण क्षेत्रों का परिवेश कहा जाता है। भारत की संस्कृति गांवों में बसती है, जो शहरी जीवन पर अपना वर्चस्व रखती है। विवेकी राय ने अपनी कहानी "बेईमानों के देश में" सरकार की नीतियों का विरोध दर्शाया है, जो नीतियां समय बीत जाने के बाद भोले-भाले किसानों के लिए कोई महत्व नहीं रखती है। जैसा कि सरकारी नीतियों में राष्ट्रीय स्तर पर विलंबता देखी जा सकती है। इसी को ग्रामीण अंचल का आधार बनाकर दर्शाया गया है।

विवेकी राय ने अपने उपन्यासों में ग्रामीण जीवन का चित्रण शहरी साज-सज्जा और वेशभूषा के विपरीत किया है। जहां शहर प्राकृतिक जीवन में शून्य है और प्राकृतिक आपदाओं से अनभिज्ञ है वहीं विवेकी राय गांवों का मनोरम दृश्य और प्राकृतिक आपदाओं को दिखाने का साहस करते हैं। जिसे पढ़कर जो बिंब विधान उभर

कर पाठक के सामने प्रस्तुत होता है वह इस ग्रामीण जीवन ओर मृत्यु से साक्षात्कार करने में अपने को समर्थ पाता है। विवेकी राय ने जिस तरह मुख्यतः बाढ़ की विभीषिका को दर्शाया है, और जिस बाढ़ की चपेट में आकर पूरा गांव त्राहि-त्राहि कर उठता है, वही टीस् पाठक को भी पढ़कर होती है। इसी तरह की बाढ़ का वर्णन उन्होंने अपने उपन्यास 'सोना-माटी' में किया है। जिसमें वे लिखते हैं "आकाशवाणी से बाढ़ का समाचार आ रहा था- उत्तर प्रदेश के अट्टाईस जिलों में बाढ़ से व्यापक तबाही हो रही है। गंगा, जमुना, घाघरा, केन, बेतवा तथा उनकी सहायक नदियों ने एक साथ ही उफान ले लिया है। बांदा हमीरपुर में उद्धार कार्य के लिए सेना और पी. ए. सी. की सहायता ली जा रही है। गाजीपुर के दो सौ अस्सी गांवों की डेढ़ लाख आबादी इस विभीषिका की चपेट में आ गई है।.... इलाहाबाद से बलिया तक गंगा में बहाव जारी है।..... घिरे हुए गांवों में राहत कार्य तत्परता से जारी है।..... श्रीमती गांधी ने दिल्ली में एक विशाल जनसमूह को.....। काली बाबू ने ट्रांजिस्टर का कान ऐंठ कर चट्क से चूप करा दिया" 2

ग्रामीण अंचल के पात्रों का वर्णन करते हुए विवेकी राय ने मानव मन को लक्षित किया है। आज जहां शहरी जीवन व्यतीत करते हुए मानव अपनी सुविधाओं का असीमित फलक तय कर रहा है और बाग से मैदान और मैदान से गगनचुम्बी इमारतों में रहकर भी असंतोष से पीड़ित है, वहीं विवेकी राय ग्रामीणों के मन को सीमित सुविधाओं से खेत-खलिहानों में संतोष से जीवन व्यतीत करते चित्रित करते हैं। ग्रामीण जन सीमित सुविधाओं में भी असीमित ध्येय रखते हैं। जबकि शहरी जन असीमित सुविधाओं का उपभोग करते हुए भी पीड़ा और मनोकुंठा से ग्रस्त स्वतः ही प्रतीत होते हैं। अपने ग्रंथ 'देहरी के पार' में वे लिखते हैं "क्या मालूम नहीं है। बार-बार का अनुभव नहीं है। कि अज्ञात आशंकाएं अधिकांश रूप में मिथ्या होती हैं? मन कोई कल्पना कर लेता है और फिर विकल्पों को लेकर स्वयं ही स्वयं से जूझने लगता है, लहलुहान होने लगता है। क्या आज का मेरा सारा दुःख-दबाव मनोभय नहीं है? फिर इस छलिया, घोखेबाज और भटकाव भरे मन का भरोसा क्या? विश्वास क्या? कहां होती कहीं कोई समस्या / भ्रमित मन की दौड़ से हल है?" 3

ग्रामीण अंचल के लोगों का खान- पान, रहन- सहन, और संस्कृति का वर्णन करना विवेकी राय की विलक्षण प्रतिभा है। वे

ग्रामीण परिवेश का जीवंत वर्णन करने में 'जादूगरी भाषा शिल्प' रखते हैं। ग्रामीण परिवेश में बोले जाने वाले शब्दों का चयन करके वे गांव के जीवन को उजागर करने का प्रयास करते हैं। वे ग्रामीण जीवन में व्याप्त नशाखोरी को भी वर्णित करते हैं। ग्रामीण परिवेश में पान, बीड़ी, गांजा इत्यादि का सेवन करते ग्रामीण जन जिनमें महिलाएं भी काफी बड़ी संख्या में हैं, के यथार्थ को दिखाने का प्रयास करते हैं। गांवों में जहां महिलाएं पुरुषों के कार्य, गृहस्थी, सुख- दुख और जीवन यापन में सहयोगी हैं, वहीं वे नशा करने में भी पुरुष से कंधा मिलाकर चलती दिखाई देती हैं। विवेकी राय ने अपने गद्य में उभयलिंगी समाज का चित्रण किया है, जिसमें वे पुरुष- महिला को एक ही वर्ग 'ग्रामीणजन' में रखते हैं। अपने ग्रंथ ' किसानों का देश' में वे लिखते हैं " शिक्षा और संस्कार की हिनावस्था क्या- क्या कुर्मांग दिखाती है, इसे गांवों में आकर कोई देखे। नशेबाज पुरुष ही होते थे परंतु अब स्त्रियां भी इस क्षेत्र में उनके कन्धे से कन्या मिलाकर चलने लगी। आखिर अर्द्धांगिनी जो ठहरी। हमने देखा है कि नशे के नाम पर स्त्रियां केवल हुक्के तक ही सीमित न रही बल्कि आगे बढ़कर बीड़ी और सुर्ती आदि का भी सेवन करने लगी। अचरज नहीं कि वे गांजा भी पीने लगे। एक गांव के मुखिया ने हिसाब लगा कर बताया कि हमारे गांव में (चोरबती), टार्च, बीड़ी, साबुन, तेल की इतनी खपत है कि इसे रोक कर घन बचाने से एक कन्या पाठशाला चलाई जा सकती है "4

ग्रामीण जीवन और आंचलिक परिवेश में मूलभूत अंतर को स्पष्ट करने में विवेकी राय सक्षम है। उन्होंने आंचलिकता के तथ्यों के आधार पर ही अपनी शैली में ग्रामीण परिवेश को आंचलिकता का स्वरूप दिया है और इसीलिए उनका गद्य ग्रामीण होते हुए भी आंचलिक माना गया है। आंचलिकता की सर्वमान्य विशेषता यही मानी गई है कि उसमें गांवों की संस्कृति को उच्च स्तर पर रेखांकित किया जाता है। इसी आधार पर विवेकी राय ने गांवों का चित्रण तो किया है परंतु गांवों के परिवेश को इस तरह दर्शाया है कि उनमें गांवों के ठेठ शब्द, संस्कृति, वेशभूषा, लोकगीत और जीवन-शैली जीवंत रूप में पाठकों के सामने प्रस्तुत हो जाती है। वे अपने ग्रंथ 'स्वातंत्रोत्तर हिंदी कथा साहित्य और ग्राम जीवन' में लिखते हैं " गांव और अंचल का अंतराल भी स्पष्ट है। किसी अंचल विशेष पर लिखने के कारण ही कथाकार तब तक आंचलिक संज्ञा का अधिकारी नहीं होगा जब तक उसकी समस्त मूलभूत अनिवार्यताएं लक्षित नहीं होती हैं। उसकी पूर्ण प्रतिष्ठा होते गहराई जीवन की नहीं, सज्जा नूतन शिल्प की ओर वैशिष्ट्य उस मोहकता को पहले पेश करता है जिसका उपजीव्य कभी भूगोल होता है तो कभी इतिहास। इसलिए इस शिल्प में अपनी सांस्कृतिक विरासत के प्रति एकनिष्ठ आस्था की स्थिति

है और मरणोन्मुख परंपराओं के प्रति भी उसमें एक भावुक व्यामोह है। 'कठोर' वर्तमान लोकगीत और लोककथा स्थितियों को घक्का देकर उनकी स्वप्नशीलता को चूर्ण-चूर्ण कर उन्हें अपदस्थ करना चाहता है तथा इसके प्रति भी एक करुण-कृन्दन आंचलिक शिल्प में विद्यमान है "5

गांवों के चित्रण में हमें ऊंची इमारतें और फैशन नहीं मिलता है। यदि हमें विवेकी राय के गद्य को समझना है तो हमें गांवों के जीवन से रू- ब- रू होना पड़ेगा। वे अपने रचना संसार को इसी मिट्टी में रहकर रचते हैं, जिस मिट्टी की वे बात कर रहे हैं। इसलिए विवेकी राय अपने रचना कौशल में न सिर्फ गांवों की सुंदरता को दर्शाते हैं बल्कि उनके शब्दों में कीचड़, गोबर, खाद, पगडंडी आदि शब्द आंचलिकता की शोभा को बढ़ाते प्रतीत होते हैं और पाठक शहरी होते हुए भी गांव के जीवन से अवगत हो पाते हैं। उन्होंने भारत को गांवों का देश माना है और गांवों के विकास से भारत की प्रगति निश्चित है। वे गांवों को शहरों में रूपांतरित नहीं करना चाहते बल्कि प्राकृतिक जीवन का विकास करके गांवों का विकास करना चाहते हैं। विवेकी राय ने मिट्टी के महत्व को सोने- चांदी के समकक्ष रखा है। अपने कहानी संग्रह 'विवेकी राय की लोकप्रिय कहानियां' की एक कहानी ' गोबर भवन में एक दिन' में वे लिखते हैं " अभिनव भारत के प्रतीक स्वरूप गौहरौर योजनात में माल-भत्ता हडप जाने वालों की तरह मालिक ने तुम्हें एकदम खोखला कर दिया है परंतु तुम्हारा यह खोखलापन जघन्य है, जो अशरण को शरण देता है। तू भारत का सच्चा मानचित्र है। हे गोबर अट्टालिका। तू गांव की एक इकाई है और जो तू खड़ी है, सो यह दिखाने के लिए कि - "बिसरि गई सब बात पुरानी"6

विवेकी राय ग्रामीण शैली का उपयोग करते हुए आंचलिकता की अवधारणा को स्पष्ट करते हैं और ग्रामीण परिवेश में ग्रामीण किस तरह का जीवन व्यतीत कर रहा है, उसको उजागर करना ही इनकी आंचलिकता की गंध कही जा सकती है। गांव के लोग किस तरह का प्राकृतिक भोजन अपनाते हैं, उसका वर्णन करना भी विवेकी राय के रचना कौशल को दर्शाता है। जिसकी वजह से ग्रामीण जन सुबह से रात तक मेहनत करने में सक्षम हो पाते हैं, और संस्कृति का विश्लेषण करके मानव मूल्य जो आज ग्रामीण जन तक ही सीमित होकर रह गये हैं, विवेकी राय के रचना संसार की विलक्षण धरोहर है। उन्होंने ग्रामीण जन से मानव मूल्य अतिथि सत्कार, सद्भाव, सदाचार, आत्मीयता आदि को भी आंचलिकता का स्वरूप प्रदान किया है। अपनी कहानी 'दमरी की खोज में' उन्होंने मालिक द्वारा अपने 'नौकर दमरी' के प्रति चिंता को दिखाया है। नौकर के कुछ समय व्यतीत होने पर न मिलने की दशा में मालिक द्वारा दूसरे गांव

तक अपने नौकर की खोज में जाने का चित्रण किया है। दूसरे गांव में जाकर मेजबान द्वारा जो मेहमान का अतिथि सत्कार किया जाता है, वह आंचलिकता का मूल्य ही कहा जा सकता है। वे लिखते हैं "महीन चावल का सुगंधित भात, घी से तर खूब पीली अरहर की गाढ़ी दाल, खिली-खिली चपातियां, आलू-परवल और कटहल का साग, पुदीना मिली आम की चटनी, तरह-तरह के अचार, पापड़ आदि के बाद कटोरे भर सजाव दही से उपसंहार, तबीयत में मस्ती तो अब आ ही जानी चाहिए थी। जल से खस की भीनी-भीनी खुशबू आ रही थी।"⁷

विवेकी राय अपने ग्रंथों में मूलतः गांव के चित्रण के साथ देशभक्ति और भारतीय संस्कृति का समपुट भर देते हैं, जिसके कारण उनके संग्रह विशेषतः ग्रामीण परिवेश की साधारण श्रेणी से निकल कर असाधारण आंचलिकता की श्रेणी में कोटिबद्ध जान पड़ते हैं। पात्रों के द्वारा गांव की सादगी को दर्शाना और भारत भूमि पर प्राणों की आहुति देने वाले अमर स्वतंत्रता सेनानियों का वर्णन करना भी उनके ग्रंथों का प्राण तत्व है, जिसके लिए वे ग्रामीण परिवेश के धर्मशाला, जलाशय, पहाड़, बंजर भूमि, खेत-खलिहान आदि को शामिल करते हैं। उन्होंने अपने स्वभाव के अनुरूप ही भारत के मानचित्र को गांवों की कोटियों में ही श्रृंखलाबद्ध किया है, जिसके लिए उन्होंने गांवों के अंचल को दर्शाने का उच्चस्तरीय प्रयास किया है। वे अपने ग्रंथ 'अमंगलहारी' में गांव की धर्मशाला के सांस्कृतिक सौंदर्य का वर्णन करते हुए लिखते हैं "रंग-बिरंगी झाड़ियों के बीच गोबर से लीप-पोतकर एक लंबा-चौड़ा पवित्र पूजास्थल बनाया गया था। उसके बीच सफेद आटे से भारत वर्ष का एक नक्शा बना था। नक्शे के भीतर तिरंगे आटे से पूरी चौड़ाई में 'जय हिंद' अंकित किया गया था। नक्शे के ऊपर लाल-पीले अक्षर से लिखावट में उगाया गया था: 'दीपदान याद में शहीदों के'⁸

सड़कों द्वारा गांवों को शहरों से जोड़ा गया है और गांव तीव्र गति से शहरीकरण की ओर अग्रसर हो रहे हैं। जहां खेत थे वहां मैदान बने, और फिर कुछ समय बाद गगनचुम्बी इमारतें बना दी गई हैं। जिससे गांवों का शहरीकरण हो रहा है। विवेकी राय इस सौंदर्यसज्जा के विपक्ष में खड़े प्रतीत होते हैं और शहरीकरण को क्षणभंगुर मानते हैं और कटाक्ष करके शहरी अट्टालिकाओं और बनावटी प्राकृतिक जीवन को अस्थिर मानते हैं। वे उन्नति के पक्षपाती हैं, परंतु ग्रामीण जीवन के सौंदर्य को नष्ट करके अप्राकृतिक साज-सज्जा को विकास मानने के विरोध में हैं। इसी तरह का विरोध वे अपने ग्रंथ 'उठ जाग मुसाफिर' में करते हैं, उन्होंने लिखा है "मैंने देखा है की गांव के किसान परिवार का जिसके सुदृढ़ आर्थिक तार नगरों-महानगरों से जुड़े हैं का कोई (महा) जन पैसा लेकर आया और शहर के इस बाहरी

अलग में जहां झाड़-झंझाड़, परती, खेत और बाग थे वहां पैसों की मोटी तह बिछाकर 'पैसा' खड़ा कर दिया। आकाश में होड़ लगाता अहंकार। पैसा चुन-चुन कर बना महल, मेरा-तेरा। खिल गया एक नयी कालोनी का जबरदस्त गुल"⁹

शहरी जीवन और ग्रामीण जीवन का तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् यदि निष्कर्ष निकाला जाए तो हम पाते हैं कि शहरी जन अपनी आवश्यकतानुसार परिस्थितियों और वातावरण को सुखदायी बनाने की होड़ में शामिल हैं। दूसरी तरफ ग्रामीण जन परिस्थितियों और वातावरण को प्राकृतिक सौंदर्य मानकर इसके सौंदर्य और वैभव को नष्ट करने के पक्ष में नहीं हैं। ग्रामीण जन आज भी गेंहू की पिसाई के लिए घट्ट का उपयोग करते हैं, जिसकी आवाज दूर तक वातावरण में ध्वनि प्रदूषण का कारण है। और तेल के लिए कोलहू, जमीन से पानी खिंचने के लिए ट्यूबेल आदि का प्रयोग आज भी गांवों की दिनचर्या और अंचल की विशेषता स्वतः ही परिभाषित हो जाती है। वे अपनी कहानी 'तू क्यों सोया' में लिखते हैं "बिजली का कोलहू घडर-घर-घडर-घर कर चल रहा था। यह आवाज इतनी कर्कश और भारी थी कि आस-पास किसी का कुछ बोलना सुनाई नहीं पड़ रहा था। लोग इशारों से अथवा चिल्ला चिल्लाकर बात करते थे। कभी-कभी यह चिल्लाहट तीखी चिख बन जाती"¹⁰

विवेकी राय ने अपने ग्रंथों के माध्यम से भारतीय संस्कृति और विगत परंपरागत भारतीय विरासत को अपने ग्रंथों में उच्च स्तर पर उल्लेखित किया है। वे गांव के सामान्य पात्रों के माध्यम से असामान्य परिवेश का वर्णन करते दिखाई देते हैं। उन्होंने ग्रामीण जीवन जी रहे लोगों की सुख-सुविधा, वेशभूषा, खान-पान और रहन-सहन का जीवंत वर्णन करके आंचलिकता की अवधारणा को परिभाषित किया है। वे बताते हैं कि भारतीय किसान खेती करके अपना पूरा जीवन सीमित सुविधाओं के साथ गुजारना चाहता है, परंतु मौसम, जमींदार, कर्ज की समस्या, संसाधनों का अभाव किसान की सीमित आवश्यकता को पूरी होने देने में बाधक है। अपने ग्रंथ 'नमामि ग्रामम' निबंध संग्रह के एक निबंध 'एक में गांव हूं' में वे लिखते हैं "बैशाख-जेठ का महीना आता है। फसल कट जाती है। घर में अन्न के दाने दिखाई पड़ने लगते हैं। मेरा बेटा किसान उस समय अपने आवास की ओर, खेतों की ओर ध्यान देता है। उसकी गिरी-पड़ी दशा को सुधारना चाहता है। द्वार के सामने वह मिट्टी डालता है। चिलचिलाती दोपहरी में वह खेत से, गड्ढे से और नदी से खोद-खोदकर मिट्टी लाता है और स्थान को ऊंचा बनाता है। कल्पना करता है, बरसात आने वाली है। जिस रात को बादल चले जाएंगे, इसी ऊंची भूमि पर चारपाई डालकर पुरवाई की लहर लुटेरा। चांद और चांदनी तथा बादल और बिजली तक मेरे बेटे किसान की कल्पना कम जाती है। वह तो कल्पना भी उस सीमा तक करता है जहां तक काम का संबंध है।"¹¹

सामान्यतः गांव का अर्थ अविकसित, अशिक्षित और असभ्य लोगों के समूह के बिंब के तौर पर लिया जाता है। मूलतः विवेकी राय इस अवधारणा के विपरीत गांव के अंचल को इस तरह उल्लेखित करते हैं, जिससे ये शहरी जीवन जो कृत्रिम उपकरणों, प्रकृति दोहन और बनावटी सभ्यता की नींव पर स्थापित है, पूर्णतः खोखला और अस्थिर प्रमाणित प्रतीत होता है। वे गांव के जीवन को शहरी जीवन से अधिक दूरदर्शी और स्थिर मानते हैं। प्रकृति मानव जीवन का आधार है। प्रकृति के बिना मानव जीवन कल्पित करना निराधार है। इसी को सर्वव्यापी सत्य मानते हुए विवेकी राय ने गांव के अंचल की निम्नस्तरीय विशेषता को भी पाठकों के सामने उच्चस्तरीय विशेषता में रूपांतरित कर दिया है। अपने ग्रंथ 'रामकथा आराम' में वे लिखते हैं : "सोन सोनाड़ी खैराबारी / बीच ताल में बसे सियाड़ी

उक्त कहावत में 'सोना' शब्द का अर्थ लोग लगाते हैं, मेरा गांव सोनबाड़ी, इसको गांवों के अविकसित होने के संदर्भ में कहा जाता रहा है। पैदावार की दृष्टि से सर्वोत्तम होते हुए भी आवागमन के संसाधनों की शून्य स्थिति के कारण ही इस बाढ़ग्रस्त और ताल-खलवाले अंचल को अविकसित या पिछड़ा कहा जाता था। अब वह स्थिति नहीं रही। गांव-गांव सड़कों से जुड़ गये हैं" ¹²

जीवन जीने की स्वच्छ शैली को विस्तार देते हुए विवेकी राय गांव के अंचल की मोहकता का वर्णन करते हैं और गांव के अंचल की सुंदरता का व्याख्यान करते हुए उसे जीवन के विविध आयामों बचपन, जवानी और वृद्धावस्था के समकक्ष रख देते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों के मार्ग जहां समतल न होकर पथरीले ओर ऊबड़-खाबड़ होते हैं, वहीं मानव जीवन भी स्थिर न होकर समयानुसार अव्यवस्थित होता रहता है। मानव जीवन में अमीरी-गरीबी, स्वस्थ-अस्वस्थ आदि की अवधारणाएं सुविधासंपन्न लोगों की अवधारणा है। इस अवधारणा को विवेकी राय गांव के अंचल से, जहां कभी पीने के पानी की कमी है, तो कभी बाढ़ की विभीषिका द्वारा स्पष्ट करते हैं। जहां गांव से शहर की ओर एक पगडंडी जाती थी, वहीं पर कुछ समय पश्चात शहर से गांव की तरह एक सड़क आ चुकी है। अपने निबंध संग्रह "जीवन अज्ञात का गणित है" में संग्रहित एक निबंध 'ग्रामीण मनोविज्ञान' में वे लिखते हैं "गांवों की दुनिया। कहीं हरियाली से लदी, कहीं खाली घूसर धरती की छाती पर सांप की तरह लोटते हुए रास्ते। कहीं पतले, कहीं चौड़े, कहीं चिकने, कहीं ऊबड़-खाबड़ और भौंडे। ये विविध प्रकार के रास्ते-कुछ पहुंचाने वाले हैं, कुछ भटकाने वाले, कुछ उलझाने

वाले हैं, कुछ भुलाने और बहकाने वाले। इन सब में मुझे प्रिय है ये बहकाने वाले रास्ते। कोई चारा नहीं, कोई दूसरा सहारा नहीं, कोई अन्य युक्ति नहीं, कोई खबर भी नहीं और ये लिए जा रहे हैं, लिए जा रहे हैं, चढ़ाए चले जा रहे हैं- ठीक मनुष्य के भाग्य की तरह, आशा के अनदेखे सूत्र की तरह और समय की अटूट घारा की तरह" ¹³

अंत में कहना न होगा कि विवेकी राय का रचना कौशल संसार गांवों में छिपी आंचलिकता की महक को संजीव और सहज परिपक्वता से उल्लेखित करने में पूर्णतया सक्षम है। ग्रामीण जीवन का पाताललोक तक की गहराई और सांतवे फलक तक की उड़ान का निरीक्षण और विश्लेषण विवेकी राय के गद्य को आंचलिकता का प्रमाण प्रस्तुत करता है। जो हमें अन्यत्र व साधारणतः नहीं मिलता है। हिंदी साहित्य की आंचलिकता उनके गद्य में पूर्णतः सुरक्षित और प्रचुरता से अंकित है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. बेईमानों के देश में, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 24
2. सोना माटी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 458
3. देहरी के पार, ग्रंथ एकेडमी, दरियागंज, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 17-18
4. किसानों का देश, हिंदुस्तान एकेडमी पुस्तकालय, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या 220
5. स्वातंत्रोत्तर हिंदी कथा साहित्य और ग्राम जीवन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या 432
6. गोबर भवन में एक दिन, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 88
7. दमरी की खोज में, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 114
8. अमंगलहारी, ज्ञान गंगा, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 14
9. उठ जाग मुसाफिर, बडीबाग, गाजीपुर, पृष्ठ संख्या 22
10. तू क्यों सोया, ग्रंथ एकेडमी, दरिया गंज, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या 24
11. एक में गांव हूं, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 5
12. रामकथा आराम, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 13
13. ग्रामीण मनोविज्ञान, सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 32

- डॉ. दलचंद गुप्ता
(सहायक आचार्य)

एनसीवेब, जीसस एंड मेरी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

कविवर नीरज के काव्य में मानवतावादी चेतना की अभिव्यंजना

शोध-सार

मानवतावादी साहित्य वस्तुतः वह साहित्य है, जो मनुष्य को केंद्र में रखकर उसके अधिकारों, कर्तव्यों, संवेदनाओं, जीवन-मूल्यों और सामाजिक न्याय की बात करता है। भारतीय साहित्य में रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत जैसे ग्रंथों, कबीर, तुलसी, गुरुनानक जैसे संतों, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ, प्रेमचंद, प्रसाद, निराला, दिनकर जैसे साहित्यकारों तथा स्वामी विवेकानंद, तिलक और डॉ. अम्बेडकर जैसे चिंतकों ने मानवतावाद की भावना को सर्वोत्तम मानकर इसे विशेष प्रश्रय प्रदान किया है। हिंदी साहित्य के गीतकारों में कविवर गोपाल दास 'नीरज' एक बहुश्रुत व्यक्तित्व हैं, जिनके साहित्य में सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। वे अपनी कविता के माध्यम से एक ओर समाज को चेतन करना चाहते हैं तो दूसरी ओर अन्याय और शोषण के विरुद्ध आक्रोशित प्रतिरोध का स्वर भी बुलंद करते हैं। वे व्यथित जनसमुदाय को संबल प्रदान कर उसके दुःखों को दूर करना चाहते हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और 'विश्व मानवतावाद' की स्थापना की भावना कवि नीरज के साहित्य की अन्यतम उपलब्धि है। उन्होंने बड़े सुन्दर ढंग से कला और विज्ञान तथा हिंदू और मुस्लिम में समंवय स्थापित करके मानवता के कल्याण की कामना की है। उनका संपूर्ण काव्य युवा पीढ़ी को नयी सौन्दर्य दृष्टि और उत्साह के साथ-साथ कर्मवाद का संदेश देकर कर्तव्य पथ पर अग्रगामी होने की ऊर्जस्वी प्रेरणा भी प्रदान करता है।

बीज शब्द

मानवतावाद, लोक-मंगल, जनकल्याण, वसुधैव कुटुम्बकम्, ईश्वरत्व, व्यक्ति-पूजा, समंवय-भाव, संवेदना, सभ्यता-संस्कृति इत्यादि।

मूल आलेख

भारतीय संस्कृति की आत्मा में विश्व मानवतावाद और लोक-मंगल की पवित्र भावना सर्वदा से ही निहित रही है। वैदिक काल से लेकर आधुनिक युग तक भारत का साहित्य और संस्कृति मानव-कल्याण, सामाजिक समरसता और जनतांत्रिक आदर्शों को उजागर करते आए हैं। भारतीय संस्कृति का मूलमंत्र सदा से ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्'

का रहा है, जिसमें संपूर्ण विश्व को एक ही परिवार मानकर समता, सहिष्णुता और स्नेहपूर्ण व्यवहार को प्राथमिकता प्रदान की गई है। भारतीय वाङ्मय के विश्व विश्रुत ग्रंथ महाभारत के यशस्वी कर्ता महर्षि वेदव्यास मनुष्य को सर्वोपरि स्थान देते हैं। उनकी दृष्टि में मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। महाभारत के 'शांति पर्व' में उल्लिखित है...

“गुह्यं ब्रह्म तदिदं वो ब्रवीमि।

नहि मानुषात्श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्।”¹

इसी प्रकार गुरुदेव रवीन्द्रनाथ का विश्वास था कि पृथ्वी पर मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। मनुष्य ही विश्व के केन्द्र पर अधिष्ठित है। वह मनुष्य विभिन्न नाम, वर्ण, गोत्रादि द्वारा विचित्र संस्कारों से आवृत्त है। इसीलिए सहज मनुष्य को ढूंढ पाना कठिन है... “पृथ्वी मध्ये मानुषज्ञ जीव श्रेष्ठ, मानुषज्ञ विश्वे केन्द्र अधिष्ठित-से मानुष नाम, वर्ण, गोत्रादि द्वारा बहु विचित्र संस्कार द्वारा आवृत्त-सहज मानुष खूंजिया पाओ या कठिन।”²

मानव गरिमा के महत्व की घोषणा करने वाली उदात्त विचार सारणी को ही समग्रता में मानवतावाद की अभिज्ञा से अभिहित किया जाता है। वस्तुतः वर्तमान संदर्भों में हम जिस मानवतावाद या मानववाद की अवधारणा की बात करते हैं, वह आधुनिक युग की विकासशील विचारधारा है जो मनुष्य और मनुष्यत्व को परिभाषित करती हुई, उसे जगत के स्पंदन और संस्कारों की जीवंतता के मध्य स्वयं को पहचानने की न केवल दिशा देती है अपितु उसे अहंकार और व्यर्थ के दम्भ के प्रति सचेत भी करती है। मानवतावादी भावानुभूति, वास्तव में आज के व्यस्त और गतिशील मानव को व्यक्ति बोध कराती हुई युग बोध का भी अभिधान प्रस्तुत करती है। मनुष्य की आंतरिक ऊर्जा और गहन निष्ठा का अवलंब बनकर वह उसके व्यक्तित्व को परिपूर्ण बनाती है। डॉ. आर.डी. मिश्र ने इस संदर्भ में उचित ही लिखा है कि- “इस दर्शन ने मानव केन्द्रित होकर हमारी सारी मान्यताओं, सिद्धान्तों और अवधारणाओं पर एक नया प्रकाश डालकर, उन्हें सर्वथा नवीन अर्थ और नयी अभिव्यंजना दी है।”³

हिंदी साहित्य की विराट काव्य धारा में जैन, बौद्ध, सिद्धों एवं संतों ने मानवतावाद का आदर्श प्रतिपादन किया है। संत कबीर ने जब मानवतावाद का ओजस्वी शंखनाद किया तो न केवल सांप्रदायिक कट्टरता खंडित हुई, बल्कि अमानवीयता भी बहिष्कृत हुई। इसी प्रकार तुलसी, सूर, नानक, रविदास आदि में विकसित हुई बहुमुखी मानवतावादी चेतना और समंवय भावना हिंदी के साथ-साथ संपूर्ण

भारतीय साहित्य की भी अमर निधि है। आधुनिक युग में यदि मैथिली शरण गुप्त श्रीराम के द्वारा मानवता को ईश्वरत्व के समतुल्य घोषित करते हैं, तो पंत अपने काव्य में विश्व मानवतावाद का सन्देश सुनाते हैं। एक ओर प्रसाद विविध रूपों में बिखरे हुए शक्ति के विद्युत कणों के समंवनन के माध्यम से मानवता को विजयनी बनाने का उद्योग करते हैं, तो दूसरी ओर महाप्राण निराला मनुष्यत्व के चिर उपेक्षित स्वरूप को साहित्य के आकाश में प्रतिष्ठित कर, उसे नायकत्व प्रदान करते हैं।

मानवतावाद की यह शुभ एवं पुनीत भाव धारा हिंदी नव गीतों से भी अपनी संपूर्ण गरिमा के साथ प्रकट हुई है। हिंदी नव गीतकारों में गोपाल दास 'नीरज' का नाम अनन्य है। उनके गीतों में मानवतावाद की चेतना के विविध रंग परिलक्षित होते हैं। उनका संपूर्ण जीवन-दर्शन तथा उनकी संपूर्ण साहित्य साधना मानवतावादी भाव-भूमि पर ही प्रतिष्ठित है। सौंदर्य के प्रति आकर्षण, प्रेमानुभूति और मानव संस्कार में निहित मनोदशा उनके गीतों का प्रधान कथ्य एवं अनिवार्य अंग है। स्वयं नीरज अपने कविता संग्रह 'दर्द दिया है' के 'दृष्टिकोण' में यह तथ्य स्वीकारते हुए कहते हैं- "मेरी मान्यता है कि साहित्य के लिए मनुष्य से बड़ा और कोई दूसरा सत्य संसार में नहीं है और उसे पालने में ही उसकी सार्थकता है। जो साहित्य मनुष्य के सुख-दुःख का साझीदार नहीं, उससे मेरा विरोध है। मैं अपनी कविता द्वारा मनुष्य बनकर मनुष्य तक पहुंचना चाहता हूं। वही मेरी यात्रा का आदि है और वही अंत।"⁴

कविवर नीरज के काव्य में मानवतावाद का जो रूप दिखाई पड़ता है उसको वे 'मानव धर्म' अभिज्ञा से परिभाषित हैं। उन्होंने अपनी काव्य कृतियों में अनेक स्थलों पर मानव गरिमा एवं मानव महत्ता का चित्रण किया है और मानव को इस सृष्टि की अनुपम निधि बतलाते हुए, उसे विधाता की एक अनूठी कृति भी कहा है। 'यह प्रवाह है' शीर्षक कविता की अधोलिखित पंक्तियों में मानव की अदम्य इच्छाशक्ति का विभ्राट स्वरूप दृष्टव्य है... "वह मनुष्य है, वह न झुका है, वह न झुकेगा। वह भविष्य है, वह न मिटा है, वह न मिटेगा। / वह विकास है, वह न थका है, वह न थकेगा। वह प्रवाह है, वह न रुका है, वह न रुकेगा।"⁵

मानवता का तात्पर्य ही है- सतत गतिशील गुण-पुंज अर्थात् मानवता निरंतर प्रवहमान है, वह कभी नहीं रुकती। इसी संदर्भ में कवि नीरज यह घोषणा करते हैं कि आगत भविष्य में मानव मूर्ति प्रतिष्ठित होगी और ईश्वरत्व के मायाजाल में अनादि काल से मनुष्यों को उलझाकर उन्हें प्रताड़ित करने वाली शक्तियों की पराजय होगी... "वह समय आ रहा है कि मरेगा जब ईश्वर, / होगी मंदिर में मूर्ति प्रतिष्ठित मानव की, / औ ज्ञान ब्रह्म को नहीं, मनुज को देगा स्वर।"⁶

यहां तक कि वे कहते हैं कि मेरे लिए तो आराध्य और कोई नहीं बल्कि संपूर्ण मानव जाति है और अखिल विश्व ही मेरा कुटुम्ब है... "मेरा तो आराध्य आदमी, देवालय हर द्वार है / कोई नहीं पराया, मेरा घर सारा संसार है।"⁷ अपनी मानवतावादी विचारधारा पर उनको पूर्ण आत्मविश्वास है। उनका स्पष्ट कहना है कि मुझे देवत्व से अधिक मनुजत्व प्यारा है और मैं उस पर अभिमान करता हूं... "कहीं रहे कैसे भी मुझको प्यारा वह इंसान है, / मुझको अपनी मानवता पर बहुत-बहुत अभिमान है, / अरे नहीं देवत्व, मुझे तो भाता है मनुजत्व ही।"⁸

मानव के जीवन में कर्तव्य का स्थान सर्वोच्च होता है। हमारी संस्कृति में सदा से ही अपने कर्तव्य के लिए सर्वस्व त्याग की भावना को प्रमुखता से महत्ता प्राप्त हुई है। कर्तव्य की दृढ़ता का भाव ही मानव व्यक्तित्व को संपूर्ण और अनुकरणीय बनाता है। कविवर गोपाल दास 'नीरज' मानव के लिए कर्तव्य को महत्वपूर्ण मानते हुए मनुष्य मात्र से कहते हैं... "मानव कभी परवश नहीं, विधि वाम के आश्रित नहीं / उसकी दया है विश्व भी, इसलिए दुर्बल बन न मन / जब तक पड़ा है सामने, कर्तव्य पथ, कर्तव्य पथ।"⁹

कवि नीरज की काव्य सर्जना में प्रेम को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। उनके विचार में प्रेम सृष्टि का एक मुख्य तत्व है। प्रेम जीवन को गति देने वाली एक महान शक्ति है। प्रेम, जो केवल पहले वैयक्तिक भाव होता है, परिपक्व अवस्था प्राप्त होने पर वह विश्व चेतना में परिणत हो जाता है। उनकी स्वीकारोक्ति है कि प्रेम समस्त मानवीय संबंधों में श्रेष्ठ मानवीय संबंध है। यह संबंध व्यक्ति को अस्वाभाविकता से स्वाभाविकता की ओर ले जाता है। प्रेम के ही मंगलकारी प्रभाव से मनुष्य के अंदर का पशुत्व क्षीण होने लगता है और मनुष्यत्व प्रबल होने लगता है। आज के इस भयावह युग में जब मनुष्यता का लोप हो रहा है और मानवता केवल शब्दों में ही बची हुई है, तब नीरज की यह अभिलाषा कितनी अपूर्व एवं सार्थक है कि... "अब तो मजहब कोई ऐसा भी चलाया जाए / जिसमें इंसान को इंसान बनाया जाए।"¹⁰ कवि नीरज वास्तव में मानव प्रेम को सृष्टि में सबसे बड़ा धर्म मानते हैं। उनके अनुसार यदि किसी ने मानव प्रेम का पाठ पढ़ लिया तो समझो उसे साक्षात् स्वर्ग मिल गया। इसीलिए वे प्रत्येक प्राणी से यह अनुरोध करते हैं कि वे घृणा की बारूद न बिखरायें और युद्ध का विषैला घोष भी समाप्त करें तथा अपने विरोधी से भी प्रेम करना सीखें क्योंकि प्रेम के बिना तो मानव विकास वृद्धावस्था के समान है। वे स्पष्ट शब्दों में कहते हैं... "प्रेम है इसलिए दलित दनुज, प्रेम है इसलिए विजित दनुज / प्रेम है इसलिए अजित मनुज, प्रेम के बिना विकास वृद्ध है।"¹¹

कविवर नीरज ने अपने काव्य में उपेक्षित एवं तिरस्कृत मनुष्यता के प्रति भी अपनी पूर्ण सहानुभूति प्रकट की है। अपनी कविता के माध्यम से उन्होंने निराश एवं हताश मनुष्यों की पीड़ा को समर्थ

वाणी दी है। वे अपनी कविताओं के माध्यम से दुःखी एवं पददलित जन के पास जाते हैं, उसके घाव पर स्नेह लेप लगाते हैं और गिरे हुए को उठाने का प्रयत्न करते हैं। वे स्वयं को युग-युग से मानव की आंखों से बरसने वाले अश्रुओं का गायक मानते हैं और कहते हैं... “मानव की आंखों के आंसू जो / रामायण और सूर सागर के पृष्ठों से / युग-युग पर बरसे थे और जिनकी छाया में / कला, धर्म, संस्कृति के मृत प्राण सरसे थे। / सचमुच मैं कवि नहीं हूँ, क्योंकि उन्हीं आंसुओं का गायक हूँ।”¹² उनकी एक अत्यंत प्रख्यात कविता है- ‘जीवन नहीं मरा करता है’ जिसके माध्यम से उन्होंने जीवन के विकट संघर्षों से दुःखी लोगों को न केवल अर्थपूर्ण सांत्वना दी है बल्कि हताश मनुष्यता को एक नयी दृष्टि, एक नयी संवेदना और एक नया ओजस्वी जीवन अनुभव देने का प्रयत्न किया है... “छिप-छिप अश्रु बहाने वालों, मोती व्यर्थ लुटाने वालों, / कुछ सपनों के मर जाने से जीवन नहीं मरा करता है।”¹³

पीड़ित पददलित जनों के प्रति सहानुभूति के विवेचन-क्रम में हम कविवर नीरज की नारी संबंधी विचारधारा को भी समझने का प्रयत्न करेंगे। यद्यपि उनका संपूर्ण काव्य प्रेम और रोमांस से परिपूर्ण है, जिसमें उन्होंने प्रेयसी की अनेक छवियों का मनोरम अंकन किया है। प्रेमी और प्रेमिका के अनेक प्रेमपूर्ण चित्रों, बिम्बों एवं दृश्यों से उनकी काव्य संपदा सर्वथा संपृक्त है, तथापि नारी जीवन के विडंबना पूर्ण पक्षों की और भी उनकी मानवतावादी मार्मिक दृष्टि गई है। उन्होंने युग-युग से तिरस्कृत एवं उपेक्षित नारी के प्रति अपनी हार्दिक संवेदना को अनेक रूपों में प्रकट किया है। नारी के मां, सहचरी, प्रेयसी, आदि विविध रूपों को उन्होंने अपने काव्य में चित्रांकित किया है। नारी को अर्धांगिनी के रूप में संबोधित करते हुए वे लिखते हैं... “अर्ध सत्य तुम, अर्ध स्वप्न तुम, अर्ध निराशा आशा। अर्ध अजित जित अर्ध-तृप्ति तुम अर्ध अतृप्ति पिपासा / आधी काया आग तुम्हारी, आधी काया पानी। अर्धांगिनी नारी! तुम जीवन की आधी परिभाषा।”¹⁴

आध्यात्मिक धरातल पर भी उन्होंने परमात्मा को माता के रूप में चित्रित किया है। ‘प्राण गीत’ में संकलित ‘महालक्ष्मी’ नामक कविता उदाहरण-स्वरूप देखी जा सकती है। इसी प्रकार ‘गीत अगीत’ में संकलित कविताओं में उन्होंने मां के ममत्व पूर्ण वत्सला-स्वरूप को समादर दिया है। नारीत्व के प्रति अश्रु कण की पूजा करने वाले कवि नीरज ‘सभ्यता कहाँ आ गई’ कविता में वर्तमान जागतिक उद्वेलनों से उद्भ्रांत होकर कह उठते हैं... “क्या यही सभ्यता का वह सुन्दर सुखद स्वर्ग। है पड़ा जहाँ पग-पग पर मुर्दों का पड़ाव / बिक रहा जहाँ नारीत्व रजत के टुकड़ों पर। फूलों के शव पर जहाँ श्रृंगालों का जमाव।”¹⁵

कविवर नीरज के काव्य में आशा-निराशा, सुख-दुःख, हार-जीत आदि मनोभावों का विविध भांति चित्रण हुआ है। उनका काव्य निश्चित रूप से मानव की आत्म विजय का उद्घोष है। मानवता की विजय की मंगल कामना करते हुए उन्होंने युद्धोन्माद

से ग्रस्त व्यक्तियों से शस्त्र विसर्जन कर देने और शत्रु से भी प्रेमपूर्ण आचरण करने का आह्वान किया है... “तुम शांति नहीं ला पाए युद्धों के द्वारा। अब फेंक जरा तलवार प्यार लेकर देखो / सच मानों निश्चय विजय तुम्हारी ही होगी। दुश्मन को अपना हृदय जरा देकर देखो।”¹⁶

आज की युवा पीढ़ी में सहयोग, दया, करुणा, संवेदना और परोपकार की भावना न्यून होती जा रही है। परिवार के बड़े-बुजुर्गों के प्रति पहले जैसा मान-सम्मान अब नहीं रह गया है। संयुक्त परिवार विघटित होते जा रहे हैं। अकेलेपन की घुटन भरी भावना मानव मन की स्थायी वेदना बन गई है। कविवर नीरज इस संवेदन-हीनता तथा मूल्यों के ह्रास की परिस्थितियों से अत्यंत व्याकुल और व्यथित हैं। उनकी पीड़ा और चिन्ता इन शब्दों में अनुभावित की जा सकती है... “जो उठाती थी न सर अपने बड़ों के आगे / हमने वो तहजीब वो अदब तो न इधर देखी।”¹⁷ कुल मिलकर कवि नीरज ने अपने साहित्य और जीवन में मानवता की ही उपासना की है। उनकी कविताओं में मानवीयता का जो चित्रण हुआ है, निस्संदेह वह उच्च कोटि का है। उनकी सामाजिक चेतना मानवतावाद की पोषक है, उसमें अखिल जगत की पीड़ा परिव्याप्त है। उसमें व्यक्ति, समाज, किसान-मजदूर, हिंदू-मुस्लिम, दलित-पीड़ित, शोषित, शांति, युद्ध, क्रांति का आह्वान, नारी मनोभाव आदि को अनूठी अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है। वे इस सृष्टि में कला और विज्ञान का समन्वय करके स्वर्ग की स्थापना करने की भव्य अभिलाषा प्रकट करते हैं। उनके संपूर्ण रचना कर्म का निचोड़ तथा उनकी वैचारिकता का सार तत्व इन दो पंक्तियों में प्रस्तुत है... “मैंने बस मानवता को पूजा जीवन में / बस सदा आदमी के आगे यह झुका भाल”¹⁸

वास्तव में मनुष्य के हृदय में स्थित मानवीयता का गुण उसे सब प्राणियों में विशिष्ट बनाता है। प्रत्येक युग में मानवीय चेतना की जो भी अभिव्यंजना हुई है, उसकी अंतर्चेतना में संपूर्ण मानव जाति के कल्याण की शुभ भावना सन्निहित है। मानववाद, प्रत्येक वाद से जीवनी शक्ति ग्रहण करके औदात्यपूर्ण बनता है। विभिन्न आचार्यों ने मानवतावाद की व्याख्या अपनी-अपनी प्रज्ञा के अनुरूप की है, किन्तु उन सब का सार तत्व एक ही है, और वह है- जनकल्याण। मानवतावाद समता, ममता, स्नेह, सौहार्द, सहिष्णुता द्वारा मानव धर्म का प्रतिष्ठापन करता है। हिंदी साहित्य में कबीर, तुलसी, सूर, दादू, नानक आदि संतों में विकसित विविधरूपिणी मानवतावादी भावना हमारे साहित्य की अमूल्य निधि है। यद्यपि आधुनिक युग में नव गीत धारा के विभिन्न कवियों ने मानवतावाद की समाजवादी मानवतावादी शाखा को अंगीकृत किया है किन्तु कविवर नीरज की मानवतावादी भावना, जिसे वे ‘मानव धर्म’ के रूप में व्याख्यायित करते हैं, वस्तुतः आध्यात्मिकता से समन्वित है। उन्होंने मनुष्यत्व के दुःख-सुख में अपने को सहभागी बनाकर आध्यात्मिकता को मानवीय कल्याण का

नूतन अर्थ दिया है। उनके साहित्य में समंवयात्मकता, विश्व बन्धुत्व की भावना, नारी का महत्व आदि तत्व प्रखर रूप में प्रस्फुटित हुए हैं। उनका विश्वास है कि मनुष्य ही इस संसार का सबसे बड़ा सत्य है। मानव सेवा वस्तुतः माधव सेवा है। मानव की महिमा का वर्णन करते हुए वे अपने साहित्य में रमणीय मानव मूर्ति की प्रतिष्ठा करते हैं। उनके लिए आराध्य सर्वथा मनुष्य ही है। अपनी मानवता पर उनको बहुत अभिमान है।

वास्तव में मानव प्रेम कविवर नीरज के काव्य की आत्मा है। प्रेम के बिना कविता की कोई गति नहीं है। प्रेम के बिना मानव विकास नहीं होता। प्रेम के विविध चित्र उनके काव्यों में सहज ही प्राप्य हैं। उनके आरंभिक काव्य-सृजन में वैयक्तिक प्रेम की प्रधानता थी, कालांतर में कवि का वैयक्तिक प्रेम सर्व मानव प्रेम में परिवर्तित हो गया है। उनकी रचनाओं में अनुभूति की तीव्रता है और मानवतावादी धरातल पर उनका जीवन-दर्शन अवलम्बित है, उनके प्रत्येक गीत में यह भाव परिलक्षित होता है। समता की भावना से वे इस जगत का अभिषेक करना चाहते हैं। उच्चादर्श, सद्भिचार, शांति आदि का समावेश उन्होंने अपने संपूर्ण काव्य में किया है। इस विविधवर्णी जगत में उन्होंने सब को समान भाव से देखा है क्योंकि उनके मत में समता ही वस्तुतः त्रिभुवन की लय है।

कुल मिलाकर कविवर नीरज युद्ध का विरोध करते हुए दया, त्याग, सहानुभूति की कामना करते हैं। विद्रोही होकर क्रांति का सरल सुनहरा राग सुनने और सुनाने के लिए वे लालायित हैं। क्रांति की चेतना फैलाकर विश्व शांति के द्वारा इस जगत में मानव जीवन मंगलमय बनाने का लालित्यपूर्ण स्वप्न उन्होंने देखा है। कुल मिलकर सामाजिक व सांस्कृतिक दृष्टि से उनके साहित्य का महत्व अक्षुण्ण है। अन्त में कविवर नीरज के मानवतावाद के सम्बन्ध में श्री क्षेम चंद्र सुमन की इस सार्थक टिप्पणी के साथ हम अपनी बात समाप्त करते हैं कि- “नीरज के मन में मनुष्य के अंदर करुणा, घृणा, दंभ, द्वेष, वैषम्य और संहार का जो अहम् है, उसके समर्पण का नाम ही प्रेम है। प्रेम की दो परिणतियां हैं। विश्व प्रेम के अंतर्गत ‘मानव प्रेम’ है और ‘ईश्वर प्रेम’ में आध्यात्मिक भाव-धारा का प्राधान्य है। यही मानव प्रेम उनकी कविता का मूल स्वर है, शक्ति है और यही उसकी कमजोरी भी। अपनी कमजोरी की घोषणा करते हुए वे कहते हैं... “तुम मुझे इसके लिए चाहे करो बदनाम, क्यों न कितने ही बुरे मेरे धरो तुम नाम दण्ड भी चाहे कठिन तुम दो मुझे इतना, डूब जाए आंसुओं में, हर सुबह, हर शाम पर यही अपराध मैं हर बार करता हूं, आदमी हूं, आदमी से प्यार करता हूं।”¹⁹

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. अनुवादक - पंडित रामनारायण दत्त शास्त्री पाण्डेय : महाभारत : पंचम, खंड (शांति पर्व), गीता प्रेस गोरखपुर, सातवां संस्करण संवत् 2053, पृष्ठ संख्या 4502

2. डॉ. रामेश्वर दयाल मिश्र : आधुनिक हिंदी कविता और रवींद्र, सत्साहित्य प्रकाशन, चावड़ी बाजार, नयी दिल्ली, संस्करण 1980, पृष्ठ संख्या 230
3. डॉ. आर. डी. मिश्र : मानवतावाद : दृष्टि और धारणा, आदित्य पब्लिशर, जागेश्वरी माता कॉम्प्लेक्स, पाठक वार्ड, बीना मध्यप्रदेश, संस्करण 1999, पृष्ठ संख्या 4
4. क्षेम चंद्र सुमन : नीरज रचनावली, खंड 1, (नीरज जी का काव्य), आत्माराम एंड संस, कश्मीरी गेट, नयी दिल्ली, संस्करण 1997, पृष्ठ संख्या 198
5. यह प्रवाह है : नीरज रचनावली, खंड 1 : आत्माराम एंड संस, नयी दिल्ली, संस्करण 1997, पृष्ठ संख्या 300
6. जगत सत्य ब्रह्म मिथ्या : नीरज रचनावली, खंड 1 : आत्माराम एंड संस, कश्मीरी गेट, नयी दिल्ली, संस्करण 1997, पृष्ठ संख्या 280
7. नीरज रचनावली, खंड 1 : आत्माराम एंड संस, कश्मीरी गेट, नयी दिल्ली, संस्करण 1997, पृष्ठ संख्या 256
8. नीरज रचनावली, खंड 1 : आत्माराम एंड संस, कश्मीरी गेट, नयी दिल्ली, संस्करण 1997, पृष्ठ संख्या 256
9. नीरज रचनावली, खंड 1 : आत्माराम एंड संस, कश्मीरी गेट, नयी दिल्ली, संस्करण 1997, पृष्ठ संख्या 49
10. नीरज की गीतिकाएं : नीरज रचनावली, खंड 3, आत्माराम एंड संस, कश्मीरी गेट, नयी दिल्ली, संस्करण 1997, पृष्ठ संख्या 192
11. नीरज रचनावली, खंड 1 : आत्माराम एंड संस, कश्मीरी गेट, नयी दिल्ली, संस्करण 1997, पृष्ठ संख्या 261
12. नीरज रचनावली, खंड 2 : आत्माराम एंड संस, कश्मीरी गेट, नयी दिल्ली, संस्करण 1997, पृष्ठ संख्या 117
13. नीरज रचनावली, खंड 3 : आत्माराम एंड संस, कश्मीरी गेट, नयी दिल्ली, संस्करण 1997, पृष्ठ संख्या 100
14. नीरज रचनावली, खंड 1 : आत्माराम एंड संस, कश्मीरी गेट, नयी दिल्ली, संस्करण 1997, पृष्ठ संख्या 225
15. नीरज रचनावली, खंड 1 : आत्माराम एंड संस, कश्मीरी गेट, नयी दिल्ली, संस्करण 1997, पृष्ठ संख्या 349
16. नीरज रचनावली, खंड 1 : आत्माराम एंड संस, कश्मीरी गेट, नयी दिल्ली, संस्करण 1997, पृष्ठ संख्या 265
17. नीरज रचनावली, खंड 3 : आत्माराम एंड संस, कश्मीरी गेट, नयी दिल्ली, संस्करण 1997, पृष्ठ संख्या 179
18. नीरज : दो गीत, मृत्यु गीत, नीरज रचनावली, खंड 2, आत्माराम एंड संस, कश्मीरी गेट, नयी दिल्ली, संस्करण 1997, पृष्ठ संख्या 175
19. नीरज रचनावली, खंड 1 : आत्माराम एंड संस, कश्मीरी गेट, नयी दिल्ली, संस्करण 1997, पृष्ठ संख्या 12-13

- डॉ. सौरभ उपाध्याय
झुंसी, उत्तर प्रदेश

बीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में किसान विमर्श : बेदखल, फांस एवं गोदान की त्रिवेणी

बीसवीं सदी के उत्तरार्ध और इक्कीसवीं सदी के आरंभ में हिंदी उपन्यास का व्यापक फलक ग्रामीण भारत, किसान, भूमि-संघर्ष, सत्ता और हाशिए के समाजों की कथा-कहानी से भरा है। लेकिन किसान मात्र आंकड़ा या आर्थिक तथ्य नहीं है— वह सामाजिक, ऐतिहासिक और मानसिक संरचना है, जो बार-बार सत्ता, व्यवस्था, परंपरा और आधुनिकता से टकराता है। कमलाकांत त्रिपाठी का 'बेदखल', संजीव का 'फांस' और प्रेमचंद का 'गोदान'— तीनों उपन्यास भारतीय किसान की नियति, संघर्ष, मनोदशा, आधुनिकता और अस्मिता के गहरे विमर्श हैं।

'बेदखल' उत्तर भारत के अवध-फैजाबाद अंचल के 1918-22 के किसान आंदोलन की जमीन पर लिखा गया है। उपन्यास कृषि-सहयोग, आंदोलन, भूमि-संघर्ष, औपनिवेशिक ठिकानों के विरोध, शोषण और अस्मिता-विमर्श की गाथा है। ऐतिहासिक रूप से इसमें बाबा रामचंद्र, जो फिजी से आए संत हैं, के ग्रामीण नेतृत्व, किसानों की लामबंदी, अधिकारियों, जमींदारों के गठजोड़, और साधु-सुचित जैसे पात्रों के द्वंद्व से उपन्यास गतिशील बनता है। संयमित भाषा, साधुता, धार्मिकता और किसान चेतना का मिला-जुला रंग बेदखल को अन्य किसी भी ऐतिहासिक उपन्यास के आगे अलग और विशिष्ट बनाता है।

'बेदखल' में बुनियादी संघर्ष भूमि पर मालिकाना अधिकार, सामाजिक संगठन, अंग्रेजों की कूटनीति और किसान की श्रममूलक अस्मिता की लड़ाई है। यहां किसान केवल उत्पीड़ित नहीं, आंदोलन का अगुवा, रणनीतिकारी और परिवर्तन का दावेदार भी है। उपन्यास बाबा रामचंद्र और उनके साथियों के आंतरिक-सांस्कृतिक संघर्ष को रेखांकित करता है। साधु-सुचित जैसे पात्रों में भारतीय अंतःसांस्कृतिक, वह असंतुष्ट चेतना रेखांकित होती है, जो कभी प्रतिरोध में बदलती है, कभी सत्यास, और कभी बंधन में। किसानों के गांव-दर-गांव सशरीर आना, बाबा का धैर्य, सिद्धांतों में डूबा संवाद, औरतों की सहभागिता— यह सब बेदखल का सामाजिक यथार्थ है।

उपन्यास के कई दृश्यों में किसान सभा की रातें, मौन विचार, गुप्त योजनाएं, ग्रामीण महिलाओं का खाना लाना और पुलिस से डरना, युवा किसानों की उत्सुकता, औरतों की चुप संघर्षशील भागीदारी - ये सब भारत के ग्रामीण समाज की ऐतिहासिकता को

सजीव कर देते हैं। उदाहरण के लिए- "चीखता हुआ वह युवक सभा में घुसा था 'माई के अदावत में खेत जलावा हव!' ...पुलिसवाले सबेरे आए, लाशें गंगाजी में बहा दी गईं" (1)। यहां केवल हिंसा नहीं, नियति, डर, स्त्री की करुणा और किसान की असहायता की मिलीजुली पीड़ा दर्ज होती है।

बाबा रामचंद्र का चरित्र उपन्यास की आत्मा है। भारतीय नवजागरण, धार्मिक समावेश, आध्यात्मिकता और सामाजिक हलचल का ऐसा संगम शायद ही समकालीन किसी दूसरे उपन्यास में मिले। "बाबा के बोल- 'इंसाफ के बिना न माटी बचेगी, न गाय!'"—ये वाक्य किसान के सांस्कृतिक स्वप्न, ईश्वर, भूमि और अस्तित्व की चिंताओं का केन्द्र हैं। साधु-सुचित कभी निष्क्रिय भिक्षुक, कभी दार्शनिक, तो कभी व्यंग्य दोहक—उनमें आम भारतीय का वह संशय है जो हर बड़े आंदोलनों की जमीन में छिपा है।

'बेदखल' का किसान अपने चुप द्वंद्व, अपने गांव, रिश्तेदारी, पंचायती नैतिकता, और अंततः दमन के हरपन में भी अपनी प्रतिष्ठा और माटी से कभी अलग नहीं होता। उपन्यास में कई जगह डाक-जांच, अंगरेज अफसरों की चालबाजियां, बेगार लेने के आदेश, रात की बैठकों का भय रस्सी की तरह उपजी हुई होती हैं। यहां महिलाएं केवल पार्श्व पात्र नहीं, बाबा के आंदोलन में चुपचाप सहायता देनेवाली, घर-संसार, पशु-पक्षी, खेत-खलिहान की रक्षा करनेवाली, पारिवारिक रणनीति में भागीदारी— इन सब रूपों में अधिक सशक्त हैं (2)।

'बेदखल' का अंत, हालांकि अधूरी क्रांति और दमन के बिंदु पर होता है, फिर भी उपन्यास की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि उसने किसान की सामान्यता और असाधारण प्रतिरोध— दोनों की प्रतिष्ठा की है। वह किसान जो हार कर भी जिन्दा रहता है, और जिसने एक बार जागरण का स्वाद चखा है— कागजी हार के बाद भी उसका मन "मिट्टी छोड़ने को तैयार नहीं" होता है। यह ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक यथार्थ कमलाकांत त्रिपाठी की भाषा, चरित्र-चित्रण, किसान-नेतृत्व, और आध्यात्म, भारतीयता और आशंका के मेल में पूर्ण प्रामाणिक बनता है। बेदखल लेखक की परंपरा और विचारधारा-दोनों का महत्वपूर्ण उदाहरण है। इसमें किसान केवल पीड़ित या भूखा नहीं, अपने अधिकार के लिए लड़ने वाला और अपनी भूमि,

श्रम और अस्मिता के लिए बलिदान देने को तत्पर व्यक्ति के रूप में सामने आता है।

कृषि संकट के भीतर फंसे भारतीय किसान की समकालीन परिस्थिति और विडंबना को संजीव के 'फांस' जैसा शायद ही कोई और उपन्यास इतनी व्यथा और सच्चाई के साथ सामने रख पाता हो। यह उपन्यास हमें पश्चिम और मध्य भारत के उन खबरो की, जिन्हें अक्सर हम अखबार में पढ़कर नजरअंदाज कर देते हैं, अंदर तक यात्रा कराता है; जहां किसानों की आत्महत्याएं केवल आंकड़ा या सनसनी नहीं, बल्कि उनके टूटे मन, विफल सपनों, और व्यवस्था के विरोध में उठती अंतिम चीख हैं।

फांस की कथा महाराष्ट्र के विदर्भ-इलाके के किसान परिवारों, विशेष रूप से शिवु और शकुन के इर्दगिर्द बुनी गई है। उपन्यास का प्रारंभ ही उस डर और टूटन के साथ होता है जिसमें किसान हर नए मौसम, हर कर्ज, हर बैंक के पत्र, हर सरकार की घोषणा तथा फसल खराब होने की आशंका के बीच हमेशा एक 'फांस' (फंदा/गांठ/दर्द) में फंसा है। शकुन, उसकी सास, पति शिवु, बेटे-बेटी सबके सपने बेमौत मरते हैं, और वे अभाव, कर्ज, बेकारी, सूखा, घटती उपज, और सूनी गृहस्थी की भयावहता में रोज छटपटाते हैं।

फांस खेती और जीवन की विफलताओं का चित्रण मात्र नहीं, बल्कि अपने पात्रों के माध्यम से उस मानस का उद्घाटन है जिसमें किसान हर वर्ग, हर पीढ़ी, हर संतान के लिए हौसला तोड़ देने वाली दुसवारियां विरासत की तरह मिलती हैं। "शकुन ने किसी रात फूट-फूट कर रोते हुए कहा: हमारे खेत की मिट्टी में क्या अब गेहूं के बजाय लाश उगेगी?" ऐसी पंक्तियां केवल भावुकता नहीं, एक सामाजिक त्रासदी का दस्तावेज हैं।

शिवु (पति), बनवारी (पिता), शकुन (पत्नी), सोनु (बेटी, जिसकी पढ़ाई रुकती है); इन पात्रों के बहाने संजीव ने न केवल आर्थिक-तकनीकी संकट दिखाया है, बल्कि दलित, पिछड़े, महिला, और छोटे बटाईदार किसानों की जटिलता भी चित्रित की है। यह महज बड़े किसान का संकट नहीं, बल्कि पूंजीवादी नीतियों, गांव की जातिवादिता, साहूकारी, बैंकिंग तंत्र और सरकारी सिस्टम के षड्यंत्र में फंसे सबसे छोटे किसान, खेतिहर मजदूर, और दलित समाज का भी दर्द है।

फांस में महिला पात्र शकुन अपने पति की आत्महत्या के बाद सामाजिक अपमान, विधवापन, बेटे-बेटियों की चिंता, कर्ज के बोझ और पड़ोसी समाज के दमन से जूझती है। उसका गुस्सा किसके खिलाफ है? हालात, पति, पुलिस, बैंक, या अपने किस्मत के? यही द्वंद्व उपन्यास का केंद्रीय मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक संघर्ष बन जाता है: "शकुन सोचती है—अगर नए कपड़े में बेटी को भेज दूं तो सब हंसेंगे, और भेजूं नहीं तो स्कूल छूट जाएगा..." ये

पंक्तियां समकालीन भारत के ग्रामीण समाज में स्त्री की त्रासदी की गवाही हैं।

संजीव ने "फांस" में किसान आत्महत्या जैसे भीषण संकट को सतही खबर या आंकड़ा बनाकर नहीं, एक-एक घटना, सास-बहु, भाई-बहन के भावनात्मक संकट, गांव के कुटिल और चालाक महाजन-पंच द्वारा शोषण, नौकरशाही की संवेदनहीनता—इन सबकी परतें दर परतें दिखायी हैं। "जब किसी का आदमी मरता है, गांव वाले अफसोस जाहिर करने आते हैं; पर जब किसान मरता है, पुलिस बैंक वाले, सर्वे वाले; सिर्फ अफसोस नहीं, तफ्तीश, जांच, कागज, बयान..." फांस में मृतक के बाद भी परिवार की पीड़ा अंतहीन है।

विदर्भ का भूगोल, मृदा-बंड, समय की मार, बारिश का लुका-छिपी, गांव में दारू-सट्टा-क्रिकेट का पागलपन, मीडिया का एक दिन के लिए कोहराम मचाकर लौट जाना—सभी कुछ आधुनिक ग्रामीण मानस का सटीक टिप्पणी है। उपन्यास बार-बार सरकारी योजना, कृषि-ऋण मृत्यु, कर्जमाफी, बीमा, अनुदान, नेताओं की रैलियों और मीडिया के झूठे सपनों के छिलकों को नोच कर रख देता है।

फांस में यह भी संकेत आता है कि क्यों किसान की आत्महत्या सिर्फ आर्थिक नहीं सामाजिक-सांस्कृतिक विफलता है। समाज में लड़की का ब्याह, बेटे की नौकरी, बूढ़े मां-बाप की इज्जत—इन मुद्दों का बोझ बहुत कम समझाया जाता है और शायद इसीलिए समाधान भी सतही रह जाता है। उपन्यास में ग्रामीण स्त्री का पहली बार इतना गहरा विश्लेषण मिलता है, जिसमें वह सिर्फ 'सहनशील', 'त्यागमयी' नहीं, बल्कि टूटी, तिलमिलाई, रोष और थकावट से भरी लड़ने वाली और घुटने वाली महिला है।

फांस के दृश्य इतने प्रामाणिक हैं कि पाठक खुद को शिवु, बनवारी, शकुन, या किशोरी बन जाती सोनु में देख सकता है। संवादों, भूगोल की छायाचित्रता, स्थानीय मुहावरों, सामाजिक आनुपातिक तनाव के साथ संजीव का उपन्यास आज के भारत की बदहाल न्याय-व्यवस्था और खोखले सुधार वोट-बैंक की वास्तविकता खोलता है। पात्रों के भीतर धीरे-धीरे पलती कठोरता, कभी धार्मिक आस्था में शरण, कभी पलायन, कभी आत्महंता प्रवृत्ति और कभी मनमोहन कहानियों के सहारे मन का बहलाव—यह 'कथानक' से बढ़कर अपने समय का प्रतिरोध, दर्द और यथार्थ हैं।

फांस में नायक का हारना केवल उसकी मृत्यु नहीं, व्यवस्था की सामूहिक विफलता, आधुनिकता की खोखली चमक, महिला और दलित के लिए अभिशाप, और लोकतंत्र के असफल वादों की लाश है। यहां किसान मरा या जीता—इतिहास हर स्थिति में उसकी हार ही लिखता है पर, उपन्यास के भीतर आशा की बेचैनी, बेटियों के लिए इज्जत, बेटे के लिए शिक्षा, और स्त्री के लिए थोड़ा सा सम्मान, नयी खोज भी बनी रहती है।

प्रेमचंद का 'गोदान' भारतीय ग्रामीण जीवन, किसान की विडंबना और सामाजिक-आर्थिक संघर्ष का महाकाव्य है। यह उपन्यास केवल किसान के श्रम या उसके आर्थिक संघर्ष का दस्तावेज नहीं, बल्कि उसकी सांस्कृतिक-सामाजिक जड़, रिश्तों की बुनावट, आत्मछवि, नैतिकता और मनोवैज्ञानिक मंथन का भी गाढ़ा दस्तावेज है। गोदान के केंद्र में है होरी वह कालजयी भारतीय किसान जिसका जीवन अन्तहीन संघर्ष, कर्ज, उम्मीद, अभाव, नैतिकता, और विवशता की कई परतों की कहानी है।

होरी एक ऐसा पात्र है, जो स्वाभाव से सीधा-सादा, धार्मिक और कर्मठ किसान है, लेकिन उसकी नियति का बड़ा हिस्सा उसकी असहायता और परंपराओं की गिरफ्त में छटपटाता हुआ भी दिखता है। उसके लिए खेती सिर्फ जीविका नहीं, बल्कि उसके जीवन का सम्मान, उसका पुरुषार्थ, उसकी समाज में धुरी और कुल की प्रतिष्ठा है। उसकी पत्नी धनिया एक मजबूत नारी है- होरी के विपरीत, सख्त, व्यवहारिक, साफ-सपाट, अपने अधिकारों और सीमाओं के लिए दृढ़; उसे जीवन में सिर्फ श्रम और दुख का ही अनुभव है। धनिया उपन्यास के आरंभ से ही किसानों के शोषण, उत्पीड़न और सामाजिक-पारिवारिक झगड़ों के प्रति सजग बनी रहती है।

गोदान का कथानक गांव के पारिवारिक विघटन, जातिगत विविधता, रिश्तों की गंभीरता, प्रेम, घृणा, धार्मिक-आडंबर, और समाज व्यवस्था की कटुता के साथ आगे बढ़ता है। ऋण की जाल, साहूकार-महाजन की कुटिलता, भू-स्वामियों की क्रूरता-पंडित, ब्राह्मण, पटवारी, सरपंच, नेता इन सबका गठजोड़, गरीब किसान को निरंतर पराजय और अपमान के दलदल में उतारता है। होरी गोदान के लिए संघर्ष करता है- गोदान यानी गाय दान की आस्था, धर्म, सामाजिक प्रतिष्ठा और अपने वंश परंपरा की रक्षा। पहली ही घटना है- होरी गाय खरीद लेता है, लेकिन एक पारिवारिक झगड़े के कारण उसके भाई हीरा से गाय मारी जाती है और फिर गाय के मरने की मजबूरी में साहूकार, पुलिस, अदालत, रिश्वत, जुर्माना उसके जीवन को और बोझिल बना देते हैं।

जमींदारों, बनियों, पंडितों, और सत्ता के गठजोड़ से आम किसान का जीवन अत्यंत त्रासद, हास्यास्पद और विवश लगता है। होरी का संघर्ष केवल पेट भरने का नहीं, वह अपने समाज की मर्यादा, धार्मिकता, और मानवीयता की रक्षा का अंतिम द्वार बनता है। वह बार-बार अपमानित होता है, पुलिस से घबराता है, महाजन की धौंस सहता है, लेकिन अपनी पवित्रता, श्रमशीलता और ईमानदारी को नहीं छोड़ता। होरी से साहूकार हर बार नए बहाने से ब्याज वसूलते हैं, कर्ज घटता नहीं, और फसल खराब होने के कारण कभी-कभी सामाजिक तिस्कानी भी सहना पड़ता है। उसके घरेलू संबंध- धनिया, बेटा गोबर, बहू झुनिया इन सबमें आकांक्षा, कशमकश और गुस्से के अनेक रंग हैं।

झुनिया, जो अविवाहित गर्भवती है, बावला (गोबर) की प्रेमिका और होरी की बहू के रूप में, समाज के तथाकथित नियम, जाति, परंपरा और बेखौफ विद्रोह का प्रतिनिधित्व करती है। धनिया समाज से लोहा लेती है, वह झुनिया को अपनाने का साहस दिखाती है, हिंदू-मुस्लिम, जाति-बिरादरी, ग्रामीण-सामाजिक अदालत के खिलाफ खड़ी होती है। धनिया का साहस और उसकी नारी चेतना बार-बार 'गोदान' की कथा को सामाजिक यथार्थ एवं प्रतिरोध में बदल देती है।

उपन्यास में कृषक समाज की वर्ण-व्यवस्था, वर्ग-भेद और गांव में सत्ता के हर स्तर की विसंगति का बारीक चित्रण है। होरी के रिश्तेदार, बिरादर, बच्चे कभी उम्मीद, कभी डर, कभी अपमान, कभी करुणा में जीते हैं। समाज, विवाह, संतान, स्वप्न बार-बार टूटा-फूटा सा बंधता है। गांव के दलित पात्र सेवक, माता पारंपरिक अपमान और अस्पृश्यता के शिकार हैं, उनके हिस्से केवल हिकारत, जूठन, अलगाव और तकलीफें आती हैं। गोदान में महिलाएं धनिया, झुनिया, सिलिया, सोना, रूपा सभी पात्र अपनी नियति, सपनों और सामाजिक विरोध के बीच जूझती हैं। प्रेमचंद ने महिला-जीवन को केवल पारंपरिक नारी के रूप में नहीं, बल्कि प्रतिरोधी, सवाल करने वाली, न्यायप्रिय और साहसी पात्र के रूप में चित्रित किया है।

प्रेमचंद का यथार्थवाद 'गोदान' में चरम पर है यह उपन्यास केवल गांव की गरीबी, भूख, बीमारी, ऋण, मृत्यु की त्रासदी बयान नहीं करता बल्कि सभ्यता, संस्कृति, मूल्य-व्यवस्था, सम्मान, साझीदार, विद्रोह पर एक गहन सवाल खड़ा करता है। होरी का प्रिय सपना "गोदान पूरा हो जाए; समाज में सम्मान मिल जाए" जीवन भर अधूरा रहता है। उसका गोबर गांव छोड़कर शहर चला जाता है, बेटा सोना की शादी में दहेज का प्रपंच, सामाजिक कलंक हर बार होरी अपनी नैतिकता को बेचने के बजाय, त्याग और दुःख को अंगीकार करता है। अंत में होरी का मरना "अपने सारे दुःख-संताप के बीज भीतर दबाकर" केवल उसके शरीर का नहीं, सम्पूर्ण कृषक-संस्कृति का करुणांत है।

गोदान में शहरी जीवन, अमीरों की दुनिया, डॉ. मालती, मिसेज खन्ना, मेहता दिखाए हैं, जो ग्रामीण बदलाव में प्रत्यक्ष भूमिका निभाने का दावा तो करते हैं, पर गांव की सच्चाई से दूर रहते हैं। प्रेमचंद ने पूंजीवाद, नवजागरण, बाहरी सुधारवाद, धार्मिक आडंबर पर गहरा व्यंग्य किया है "शहर के लोग गांव की बदहाली पर आंसू बहाते हैं, पर जब अपने लिए सुविधा चाहिए तो गांव का ही खून चूसते हैं।"

कुल मिलाकर, गोदान की ताकत उसकी सहजता, गहराई, ग्रामीण-मूल्य, किसान-संवेदना, और चरित्र-चित्रण में है। प्रेमचंद के अनुभव, पात्रों के संवाद, ग्रामीण संस्कृति के रीतिरिवाज, आर्थिक विवशता, नैतिक अनुशासन, और सामाजिक विडंबना मिलकर

उपन्यास को भारतीय साहित्य का श्रेष्ठतम कृषक-महाकाव्य बना देते हैं। गोदान का अंत- “होरी की आंखें खुली हैं, मुस्कान है, गोदान हुआ या नहीं, वह केवल प्रश्न है” यह आधुनिकता, ग्रामीण संकट, वर्ग-विभाजन, और स्मृति के स्तर पर पाठक को झकझोर देता है।

गोदान आज भी प्रासंगिक है, क्योंकि होरी का संघर्ष, धनिया की चेतना, झुनिया का विद्रोह और ग्रामीण-समाज की आपाधापी आज भी अनेक छोटे-बड़े गांवों, किसानों, और समाजों में जीवित है। आधुनिक बैंक, पूंजीवादी उत्पादन, नयी मार्केटिंग पॉलिसी के बावजूद आदर्श, नैतिकता, संघर्ष और मूल्य अब भी प्रेमचंद की भाषा में किसान के जीवन का सबसे बड़ा सच हैं। इस तरह गोदान, केवल साहित्य नहीं, भारतीय ग्राम्य-सभ्यता का शाश्वत दस्तावेज बन जाता है।

तीनों उपन्यासों की दृष्टि में भारतीय किसान केवल खेती करने वाला, भूमि का स्वामी या केवल भोगने वाला नहीं, बल्कि देश की सामाजिक व्यवस्था, राजनीति, अर्थनीति, परंपरा और सामूहिक स्मृति का जिंदा केंद्र है। लेकिन ‘बेदखल’, ‘फांस’ और ‘गोदान’ की भूमि, भाषा, समय और विमर्श अलग-अलग हैं सभी में किसान का संकट, संघर्ष, हार, सम्मान का प्रश्न, सत्ता और सामाजिक शोषण, और सबसे महत्वपूर्ण उसकी पहचान का द्वंद्व दिखाई देता है।

‘बेदखल’ के किसान की समस्या भूमि मालिकाना और औपनिवेशिक सत्ता के खिलाफ है। यहां किसान सामूहिकता में, नेतृत्व और संगठन में अपनी शक्ति पाता है। उपन्यास ऐतिहासिक होते हुए भी किसान में आधुनिकता की चेतना खोजता है। “बाबा रामचंद्र का संघर्ष, आंदोलन, पुलिस की धमकी, गांव-गांव का गोलबंद होना” यह केवल आर्थिक संघर्ष नहीं, बल्कि अस्मिता, सम्मान और अधिकार के लिये खड़े होने की कहानी है। बेदखल का किसान अपनी पवित्रता, श्रम, कड़ी मेहनत और संगठन पर विश्वास करता है; किन्तु वह एक जगह पर सत्ता चाहे अंगरेज हो या ठाकुर की साजिश, अफसरशाही, और छल-बल के आगे असहाय भी दिखता है। इस उपन्यास में सामाजिक बदलाव केवल हिंसा से नहीं, बल्कि विचार, शांति और योग्यता से आता है, लेकिन अंततः किसान की भूमि उससे छिन जाती है।

‘फांस’ का किसान, बीसवीं सदी के उत्तरार्ध के भारत का प्रतीक है, जहां हाशिए की गरीबी असहनीय है, आत्महत्या कोई सनसनी नहीं, सामाजिक-सांस्कृतिक निराशा की स्थायी बीमारी है। उपन्यास का ग्रामीण पात्र लगातार टूट रहा है सूखा, महाजनी कर्ज, बैंक, सरकारी छद्म योजनाएं, और जल-जंगल पर अधिकार खोता किसान। शकुन, शिवु, बनवारी, सोनु यहां हर कोई व्यवस्था से धोखा खाया है। किसान का श्रमिक धर्म, घर की जूठन, जातिगत अलगाव, गांव के सामंती पंच, मीडिया/सरकारी अफसर की छानबीन, और स्त्री की कुचली आवाज ये सब समकालीन भारत के क्रूर यथार्थ हैं।

फांस में किसान का प्रतिरोध बहुत निजी, टूटा, घुटा हुआ, दुख से जटिल है-“मरना मुक्ति है, जीना बंधन” यह पंक्ति केवल किसी एक घर की नहीं, आज के गांव के हजारों परिवारों का सुनाया सच है।

‘गोदान’ का किसान, सबसे बड़े विमर्श का सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, नैतिक और पारिवारिक प्रतिनिधि है। होरी का संघर्ष केवल “बीज-खेत-फसल-नौकरी” का नहीं, बल्कि मर्यादा, कुल, धर्म, न्याय, संबंध, और आदर्श का द्वंद्व है। गोदान में संवाद, कथा-विन्यास, ऋण-जाल, बनिया-पंडित-जमींदार की ठगी, गांव की अदालत, स्त्री की चेतना, बेटा-बहू की नफरत या ममता-इन सबकी बहुसितारा परतें हैं। यहां किसान की हार, परिवार की टूटन, बेटा-पुत्र की निष्ठा, स्त्री का अपमान, झुनिया का हठ इसी कथा के केंद्र हैं; और यही विश्लेषणात्मक ऐतिहासिक दृष्टि उपन्यास को क्लासिक बनाती है।

सामाजिक दृष्टि से देखें तो तीनों उपन्यासों में किसान सत्ता, समाज और आधुनिकता के चक्रव्यूह में उलझा है। ‘बेदखल’ में ब्रितानी सरकार का क्रूर कानून “रैयतवार पट्टा”, तालुकेदारी, बेदखली यह सामंती और औपनिवेशिक सत्ता के गठजोड़ पर प्रकाश डालता है। यहां सामूहिक किसान-जागृति, महिलाओं की मौन भागीदारी, धार्मिकता और करुणा यह सब भारतीय आंदोलन की खूबी है। ‘फांस’ में व्यापारिक/कॉर्पोरेट/थोक बाजार बैंक की वसूली, कृषि बीमा का धोखा, पंचायत से अलगाव, जातिगत दमन किसान को अलग-अलग स्तरों पर तोड़ देते हैं। आत्महत्या, ग्रामीण मीडिया की दया-दृष्टि, सरकारी भाषण की खोखली उम्मीद, औरत की पीड़ा, बच्चों की भूख, शिक्षा का सपना इन सबसे फांस उपन्यास संपृक्त है।

‘गोदान’ का ग्रामीण संघर्ष और आज की “बेदखल-फांस” जैसी त्रासदी, दोनों किसी सपाट किसान-समस्या तक सीमित नहीं। साहूकार, बनिया, पंडित, नौकर, मालती, मेहता, डॉ. खन्ना मिलकर होरी परिवार के हरदम हारते किसान और ‘धनिया’ नाम की दृढ़ मातृशक्ति के केंद्र के इर्द-गिर्द घूमते हैं। व्यक्तिगत संघर्ष जैसे गोबर का शहर भाग जाना, धनिया का झुनिया को अपनाना, होरी का दहेज के लिये हर कीमत देना केवल एक घर की कथा नहीं, पूरे ग्राम्य भारत का जीवंत व्यथामूलक चित्र है।

नारी-चेतना की दृष्टि से भी तीनों उपन्यास विशिष्ट हैं। ‘बेदखल’ में स्त्री का योगदान बहुत हद तक पारिवारिक और मौन-सहभागिता का है वह सभा में भोजन, सेवा, सम्मेलन के आयोजन, समर्थन व सुरक्षा में खड़ी रहती है, औरत की आंखों में आंदोलन की पीड़ा, आशंका और आशा सब दिखाई देती है। ‘फांस’ में स्त्री पात्र शकुन की मौन दास्तान सबसे तीखी है पति की आत्महत्या का बोझ, सास का उपहास, बच्चों की भूख और खुद की इज्जत सबके लिए उसका तिलमिलाता बगावती मन उपन्यास का केंद्रीय संघर्ष है।

वह न संपूर्ण शिकार है, न वीरांगना बल्कि अधिकांश भारतीय गरीब औरतों की तरह टूटे सपनों और रोज-रोज की हिंसा की चुप आवाज है। 'गोदान' में धनिया, झुनिया, रूपा; हर महिला पात्र अपने निर्णय, प्रतिकार और संघर्ष से आधुनिक फेमिनिस्ट विमर्श की नॉव रखती है धनिया का विद्रोह, झुनिया का निर्वासन, रूपा का जीवन-संघर्ष यह बताता है कि ग्रामीण स्त्री केवल परंपरा अनुपालन नहीं करती, बल्कि बदलाव की असली सूत्रधार भी है।

तीनों उपन्यासों की भाषा, शैली, और सामाजिक विमर्श भी तुलनात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। 'बेदखल' की भाषा संयमित, ऐतिहासिक, सजीव और उस काल की संवेदनाओं के अनुरूप है। संजीव का 'फांस' आधुनिक रिपोर्टिंग, कथा-कोलाज और भीतरी ध्वनियों-चुप्पियों का रूपक है, उसमें लोकमुहावरा, खेतिहर जिजीविषा, और चोटिल सपनों की आंच है। 'गोदान' में भाषा ग्रामीण जीवन, मिथक, पुराण, विद्रूप और सहजता के अद्भुत संयोग के साथ आगे बढ़ती है सम्पूर्ण भारतीय सामाजिक विविधता, भाषा एवं व्याकरणिक सहजता के साथ जुड़ती हुई।

तीनों उपन्यासों के केन्द्र में यह प्रश्न भी बार-बार उठता है किसान का सवाल शासन के लिए, उसके भाग्य के लिए, उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए, कृषि व श्रम के लिए, कब और कैसे समझा जाएगा? क्या मात्र कानूनों, पॉलिसी या दया से किसान की नियति बदल सकती है? या फिर असली बदलाव उसकी आत्म-चेतना, संघर्षशील दृष्टि और समूचे व्यवस्था-परिवर्तन से ही आएगा?

कुल मिलाकर, 'बेदखल' भारतीय किसान आंदोलनों की ऐतिहासिकता, 'फांस' समकालीन निराशा-विमर्श एवं किसान के टूटे सपनों तथा अंतहीन पीड़ा की कड़ी, तो 'गोदान' जड़ों में बसे उस मूल आत्मसंघर्ष, ग्रामीण मूल्य और वर्तमान के नैतिक द्वंद्व की कथा है, जो अपने आप में न कभी खत्म होती है, न कभी निराश ही रहने देती है। इन तीनों उपन्यासों की त्रिकोणीय दृष्टि भारतीय समाज, किसान सवाल, गांव और सत्ता की सच्ची बहस का प्लेटफॉर्म है, जहां बदलाव की हर संभावना और हार की हर विवशता एकसाथ देखी जा सकती है।

तीनों उपन्यास बेदखल, फांस और गोदान—सिर्फ साहित्यिक ग्रंथ नहीं, बल्कि भारतीय किसान, कृषि, समाज और समकालीन मानवता के लिए स्थायी सवाल खड़े करने वाले कालजयी ग्रंथ बन जाते हैं। इन रचनाओं में कृषि-संकट केवल भूमि हड़पने की, ऋण में डूबने की या व्यवस्था से लड़ने की समस्या नहीं है, बल्कि उन लाखों जीवनों, सपनों, आशंकाओं, उम्मीदों और संबंधों की परतें हैं, जिनमें पूरा देश बसता है। हर उपन्यास अपने युग का प्रतिबिंब है—बेदखल औपनिवेशिक भारत का, फांस भूमंडलीकरण के बाद के

भारत का और गोदान बीसवीं सदी के मोड़ पर खड़े ग्रामीण भारत का संवेदनशील दस्तावेज।

इन तीनों उपन्यासों की केंद्रीय पीड़ा भूमि से बेदखली, अभाव, शोषण, निराशा सिर्फ किसानों की नहीं, बल्कि उनसे जुड़े पूरे समाज के भविष्य की है। बेदखल में किसान संगठन का स्वप्न टूटता है, लेकिन आत्मसम्मान, सामूहिक एकता और अस्मिता-बोध जिंदा रहते हैं। यह बता देता है कि किसानों की लड़ाई बिना शिक्षा, जागरूकता, संगठन और गहरे आत्मबल के नहीं जीत सकते। उपन्यास के अंतिम दृश्यों में बाबा रामचंद्र के संघर्ष के बाद भी पुलिसिया दमन, जमींदारी तंत्र की चालाकी और किसानों की परंपरागत असहायता the story lingers, just as our real history does.

फांस के किसान ने पुराने सामंतवाद और औपनिवेशिक नीतियों से तो लड़ लिया, मगर नए भारत की सरकारी, कॉरपोरेट, तकनीकी और बाजारवादी विसंगतियां उसे कहीं बदतर दलदल में ले जाती हैं। फांस का सबसे बड़ा सच किसान के लिए "मुस्कान भी सजा है" यह आत्महत्या के पीछे छुपी सामाजिक-सांस्कृतिक विफलता का जीवंत अनुभव है। सामाजिक विकास, योजनाएं, अनुदान, कर्जमाफी, पंचायत जब तक किसान की आत्मा और परिवार की खुशहाली को नहीं छू पाते, तब तक सारे कानून भी अधूरे ही हैं। इसका सबसे पीड़ादायक पक्ष है स्त्री का बोझ शकुन जैसी पात्र, जो सिर्फ आर्थिक अभाव में नहीं, बार-बार सामाजिक तिरस्कार, भविष्य की चिंता, असुरक्षा और अकेलेपन के नरक में झोंक दी जाती है।

फांस का उपन्यास यह भी दिखाता है कि केवल आर्थिक या तकनीकी समाधान किसान-मुद्दे का जवाब नहीं है। न्याय, सम्मान, सुरक्षित भविष्य और सामाजिक भागीदारी के बिना भारत का कोई भी किसान, महिला या दलित कभी भयमुक्त नहीं हो सकता। फांस का संदेश आधुनिक लोकतंत्र की बेजान संवेदनशीलता के विरुद्ध एक तीखी चेतावनी भी है।

गोदान किसान विमर्श को पूरी सभ्यता और संस्कृति में रोपता है। होरी का संघर्ष सिर्फ बंद बोरे, टूटी छप्पर या साहूकार की रसीदों तक नहीं वह मूल्यों, मर्यादा, परिवार, सामाजिक व्यवस्था और व्यक्तिगत आकांक्षाओं की अद्भुत त्रासदी भी है। गोदान की सबसे बड़ी बुनियादी बात यह है कि वह खेतिहर जीवन की श्रेष्ठता, श्रम की महत्ता और नारी चेतना को एक बृहत्तर भारतीय परिदृश्य का अनिवार्य पहलू बनाता है। गोदान का मौन अंत हमारे समाज के हर संघर्षशील व्यक्ति की अनकही हार, सहनशीलता और मनुष्यता के लिए है, वह बताता है कि व्यवस्था चाहे जो भी बदल जाए, अगर मनुष्यता, न्याय और सहभागिता की संस्कृति नहीं बनती, तो हर गोदान फिर-फिर अधूरा ही रह जाएगा।

तीनों उपन्यासों का गंभीर संदेश यह है कि क्षेत्र, काल और सत्ता बदलती रहती हैं, लेकिन किसान की नियति, महिला की पीड़ा और गांव के संकट समय के साथ नए रूपों में दुहराए जाते हैं। बेदखल में अंग्रेजों की चाल और जमींदार-साहूकार गठजोड़, फांस में बैंक, मंडी, ठेकेदार, मीडिया की बिक्री, गोदान में जाति, धर्म, रीतिरिवाज, पंचायत, और पाखंड इन सबका परिणाम है सामाजिक विखंडन, पारिवारिक टूटन, और आत्मा का दीर्घकालीन आघात।

इन उपन्यासों की सबसे मूल्यवान बात यह है कि ये 'किसान' को अपने हालात का मात्र शिकार नहीं, बल्कि चेतन, जागरूक, बहस करता, संगठनशील और सार्वजनिक हस्तक्षेप करता जीवंत मनुष्य भी दिखाते हैं। बेदखल के किसान में ऐतिहासिक सामूहिकता और पहचान की ललक है; फांस का किसान आधुनिकतम विडंबनाओं और राजनीतिक छद्म का शिकार है; गोदान का किसान अपने परिवार, धर्म, समाज, और न्याय-कर्म की गुत्थियों में फंसकर भी इंसानियत और आदर्श नहीं छोड़ता।

तीनों ग्रंथों की स्त्री चेतना फांस की शकुन, गोदान की धनिया-झुनिया, बेदखल की गांव की महिलाएं बताती हैं कि ग्रामीण भारत में बदलाव की असली शक्ति अंततः स्त्रियों के श्रम, साहस, संवेदना और प्रतिरोध से ही जन्मती है। हर क्रांति, हर आंदोलन, हर संघर्ष में महिला ही सीवन है, जो सबकुछ जोड़ती, बुनती और आवश्यकता पड़ने पर सबसे ज्यादा टूटती भी है।

इन सबका समकालीन महत्त्व यह है कि आज यदि भारत के हज़ारों गांव टूटे हैं, किसान आंदोलित हैं, महिलाएं हर स्तर पर जूझ रही हैं और छोटी खुशियां बड़ी जीत की उम्मीद जगाती हैं, तो इन उपन्यासों से निकला विमर्श हमें विकल्प, प्रतिबद्धता और नयी राह दिखाता है। भूमि के अधिकार, सामाजिक न्याय, शिक्षा की पहुंच, आर्थिक सुरक्षा, स्वास्थ्य और सबसे बढ़कर आत्म-सम्मान इन सब पर एक समावेशी, व्यावहारिक और लोकतांत्रिक कृषि नीति जब तक लागू नहीं होगी, तब तक भारतीय कृषि-मूलक समाज की बेड़ियां नहीं टूटेंगी।

आखिरकार साहित्य की यह भी भूमिका है कि वह केवल आंसू या गुस्से को दर्ज न करे, बल्कि सामाजिक हस्तक्षेप, विमर्श, संघर्ष और बदलाव की नयी पीढ़ी को जन्म दे। कमलाकांत त्रिपाठी, संजीव और प्रेमचंद तीनों अपने समय और शब्दों में भारतीय किसान की चेतना, जिजीविषा, हार और उम्मीद की जो विरासत छोड़ते हैं, वह किसी भी नयी सभ्यता और राज्य के लिए संकल्प का आधार बन सकती है।

सारांशतः बेदखल भारतीय किसान आंदोलन, फांस आत्मघाती अवसाद और गोदान जीवन की जिजीविषा तीनों की त्रिवेणी में ही आज का भारत और उसकी आत्मा जलती, बहती और पल-पल नवजीवन का स्वप्न देखती दिखाई देती है। यही साहित्य का यथार्थ, सामाजिक आलोचना और सांस्कृतिक भविष्य है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. कमलाकांत त्रिपाठी, बेदखल
2. वाणी पब्लिकेशन, समकालीन समीक्षा (आलोचनात्मक स्रोत)
3. आलोचनात्मक/पुनरावलोकन संदर्भ, समकालीन किसान विमर्श, मीडिया रिपोर्ट, हिंदी प्रेमचंद : गोदान
4. गोदान : एक आलोचनात्मक अध्ययन आधुनिक हिंदी आलोचना
5. डॉ. नामवर सिंह, डॉ. रामविलास शर्मा, किसान विमर्श
6. समकालीन शोध/जर्नल/निबंध
7. प्रेमचंद : गोदान
8. संजीव : फांस

– आशुतोष मिश्र

(शोधार्थी)

हिंदी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

प्रेमचंद संबंधी विमर्श और दलित आलोचना

शोध-सार

हिंदी दलित आलोचना के आधारभूत संदर्भों में हिंदी साहित्य इतिहास लेखन, भक्ति काव्य और उसकी चिंताधारा, मुख्यधारा की आलोचनात्मक प्रतिक्रियाएं और प्रेमचंद संबंधी विमर्शों से बौद्धिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य का निर्माण हुआ है, जिससे दलित आलोचना विकसित हुई है। हिंदी दलित आलोचना के इन बुनियादी संदर्भों को ओमप्रकाश वाल्मीकि, कंवल भारती, मोहनदास नैमिशराय, जयप्रकाश कर्दम, डॉ. धर्मवीर जैसे महत्वपूर्ण आलोचकों ने अपने विशिष्ट आलोचनात्मक लेखन से समृद्ध किया है। इन संदर्भों की पड़ताल से एक नए सौंदर्य शास्त्र और नयी वैचारिकी का निर्माण हुआ है, जिसने भारतीय साहित्य विमर्श को पूरी तरह से बदल दिया है।

प्रस्तुत शोध आलेख 'प्रेमचंद संबंधी विमर्श और दलित आलोचना' साहित्य विमर्श में एक महत्वपूर्ण और व्यापक विषय है। दलित आलोचकों द्वारा प्रतिनिधित्व, प्रामाणिकता, साहित्यिक मूल्य और सामाजिक जिम्मेदारी के बारे में उठाए गए प्रश्न, साहित्य और समाज के बीच उठाए गए संदर्भों को समझने के लिए महत्वपूर्ण बने हुए हैं। स्थापित मान्यताओं पर सवाल उठाकर, हाशिए पर पड़ी आवाजों को फिर से सामने लाकर और नयी आलोचनात्मक पद्धतियों को विकसित करके, दलित आलोचकों ने साहित्य और समाज में इसकी भूमिका के बारे में हमारी सोच को बदल दिया है। लेकिन प्रेमचंद की दलित वैचारिकी संबंधी अनुभूतियों के मूल्यांकन के बारे में यह नहीं कहा जा सकता। विषय अध्ययन में प्रामाणिकता और प्रतिनिधित्व के मुद्दों पर साहित्य विमर्श में प्रेमचंद को लेकर दलित और गैर-दलित आलोचकों के मध्य चल रहे गुटबाजी और हो रहे फतवेबाजी के बीच प्रेमचंद की रचनाओं के प्रतीकात्मक दहन के पीछे की राजनीति को समझने में मदद मिलती है। दलित विमर्श की कसौटी पर दलित विमर्शकारों की उग्र वैचारिकी ने हिंदी अकादमिक आलोचना को गहरे आंदोलित किया है। प्रेमचंद विमर्श के बहाने दलित आलोचकों के आपसी विवाद और विरोध को समझने में मदद मिली है।

बीज शब्द

दलित विमर्श, दलित बोध, प्रामाणिकता, प्रतिनिधित्व, गुटबाजी, सामंत का मुंशी, जार सत्ता, अस्पृश्यता, लेखकीय प्रतिबद्धता,

अलोकतांत्रिक, संवेदनशीलता, पुनर्परीक्षण।

मूल आलेख

विमर्शों के उभार के समकालीन दौर में हिंदी साहित्य विमर्श में, मुख्यतः दलित विमर्श में विगत कुछ वर्षों से प्रेमचंद को लेकर दलित एवं गैर-दलित आलोचकों के मध्य तर्क-वितर्क, कुतर्क, एवं वाद-विवाद एवं प्रतिवाद के कई रूप सामने आए हैं। एक तरफ गैर-दलित आलोचक प्रेमचंद की लेखकीय दलित सहानुभूति एवं संवेदना को दलित साहित्य में समाहित करने की वकालत कर रहे हैं, तो दूसरी तरफ दलित आलोचक संवेदना की प्रामाणिकता के धरातल पर प्रेमचंद के 'दलित बोध' को खारिज करते हुए, उनके सम्पूर्ण लेखन को ही दलित साहित्य मानने से इंकार कर रहे हैं और उन्हें दलित विरोधी साहित्यकार कहकर उनका विरोध कर रहे हैं।

विमर्श में सहमति-असहमति और विरोध की यह लोकतांत्रिक धारा है, जिससे किसी को ऐतराज नहीं हो सकता, लेकिन उन्हें दलित विरोधी सिद्ध करने के लिए दलित विमर्शकारों की उग्र वैचारिकी ने जिस तरह से प्रेमचंद की दलित वैचारिकी संबंधी अनुभूतियों को खारिज करना शुरू किया है एवं 'मनुस्मृति दहन' के समानान्तर जिस तरह से उनके बहुचर्चित उपन्यास 'रंग-भूमि' का सामूहिक दहन किया गया है, हिंदी अकादमिक आलोचना को गहरे तक आंदोलित किया है।

उल्लेखनीय है कि सूरदास एक दलित पात्र को पहली बार उपन्यास का नायक बनाए जाने पर प्रेमचंद की काफी सराहना हुई थी। दलित दृष्टि से भी प्रेमचंद को काफी सम्मान दिया गया था, लेकिन उनकी मृत्यु के 65 से 70 वर्षों के बाद दलित आलोचकों को उपन्यास का नायक सूरदास जिन्हें राष्ट्रीय संघर्ष के प्रतीक के तौर पर प्रस्तुत कर 1925 में ही प्रेमचंद ने दलित विमर्श के लिए वैचारिक भूमि तैयार कर दी थी, के लिए जाति सूचक शब्द 'चमार' का संबोधन व्यथित कर रहा है। दलित आलोचक इसे चमार श्रेणी के दलित वर्ग पर जातिगत टिप्पणी मानते हुए अपमानित महसूस कर रहे हैं और इसे भारतीय कानून के विरुद्ध बताते हुए प्रेमचंद की उग्र भर्त्सना कर रहे हैं।

विरोध में दिल्ली के जंतर-मंतर पर 31 जुलाई, 2004 को जब प्रेमचंद की जन्म जयंती के अवसर पर दिल्ली के राजेन्द्र भवन में

राजेन्द्र यादव (हंस के संपादक) की अगुवायी में 'हंस' के दलित विशेषांक के लोकार्पण समारोह की संगोष्ठी चल रही थी, 'भारतीय दलित साहित्य अकादमी' के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. सोहनपाल 'सुमनाक्षर' के नेतृत्व में 'रंगभूमि' की प्रतियां जलाई जाती हैं और प्रेमचंद का विरोध किया जाता है। चूंकि घटना सामान्य नहीं थी, हिंदी साहित्य जगत में तीखी क्रिया-प्रतिक्रिया स्वाभाविक थी। उपन्यास की प्रतियां जलाए जाने से साहित्य जगत में काफी रोष था। इस प्रकरण से प्रेमचंद को लेकर उत्पन्न हुए नए विवाद पर दलित चिंतक बजरंग बिहारी तिवारी ने जब अपने एक साक्षात्कार में दलित साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर ओमप्रकाश वाल्मीकि से उनकी प्रतिक्रिया जाननी चाही तो वाल्मीकि ने कहा— "पूरा प्रकरण निंदनीय है। रंगभूमि की प्रतियां जलाने वालों का समर्थन करने का अर्थ है कि आप विचार से लड़ने के बजाए अपनी शक्ति दिखाएं। प्रेमचंद से दलितों की कई मुद्दों पर असहमति है। 'पूना पैक्ट' के समय प्रेमचंद गांधी जी के पक्षधर थे। दलित आंदोलन पर धार्मिक संकीर्णता के साथ कई तरह के आरोप लग रहे हैं, लेकिन यह भी उतना ही सच है कि हिंदी में दलित पात्रों को नायक बनाने वाले भी प्रेमचंद ही हैं। इसे प्रेमचंद की विकास यात्रा के एक पड़ाव के रूप में देखा जा सकता है, लेकिन 'ठाकुर का कुआ', 'दूध का दाम' पर डॉ. अम्बेडकर के संघर्ष का प्रभाव भी अनदेखा नहीं किया जा सकता। वे दलित समस्याओं को समझने का प्रयास करते दिखाई देते हैं, लेकिन वर्ण मानसिकता से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाते हैं, उन्हें अम्बेडकर से ज्यादा गांधी विचार अपना लगता है। इसलिए रंगभूमि के 'सूरदास' की परिकल्पना साकार होती है। सूरदास जी जो जाति से चमार हैं। उस समय हिंदी साहित्य की जड़ता तोड़ने में प्रेमचंद का यह एक क्रांतिकारी कदम था। 'चमार' जाति के पात्र को नायक बनाना साहित्य में एक युग की दस्तक थी। आज जो 'चमार' शब्द पर आपत्ति करते हैं, उनसे मेरा कहना है कि आपकी भावना में यह शब्द आपत्तिजनक है तो उन सरकारी जाति-प्रमाण पत्रों का विरोध क्यों नहीं किया जाता, जिनमें चमार लिखा है। रविदास स्वयं को 'खलिस चमार' कहते हैं। मुझे लगता है 'रंगभूमि' की प्रतियां जलाने से पूर्व इन तथ्यों पर भी विचार करना चाहिए था। आज ये शब्द हमारे लिए हीन भावना के द्योतक हैं, लेकिन प्रेमचंद, रविदास जी के समय ये ही शब्द प्रचलित थे, इसलिए इन संदर्भों को अनदेखा नहीं कर सकते हैं।"

दलित विमर्श में प्रेमचंद पर सबसे बड़ा विरोध दलित साहित्य के प्रखर आलोचक डॉ. धर्मवीर ने अपने बहुचर्चित किताब 'प्रेमचंद: सामंत का मुंशी' में किया है। पुस्तक की भूमिका में अपने उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए डॉ. धर्मवीर ने लिखा है कि "राष्ट्र राज्य और समाज की भीतरी शक्ति होता है, यदि एक भी स्त्री या पुरुष का अपमान होता है तो वहां राष्ट्र समाप्त हो जाता है, लेकिन यहां जातियों के रूप

में वर्गों के वर्ग बनकर असंख्य लोगों को अछूत कहकर अपमानित किया जाता है। इसे राष्ट्र कौन कहेगा? किसी भी स्त्री की लज्जा की रक्षा करने में स्वयं सर्वोपरि घोषित ब्राह्मण को शहादत देनी चाहिए थी, पर स्वयं ही उसकी इज्जत उतारने पर लगा हुआ है। प्रेमचंद पर लिखी इस छोटी-सी पुस्तक में इसी नजरिये से देखा गया है कि वे दलित और स्त्री के मामले में समय के दबाव के बदले हुए सामंती विचारों के व्यक्ति और प्रतिनिधि साहित्यकार थे। मूल्यांकन में उनके योगदान को कम करके नहीं आंका जा रहा है और मैं उन सबसे सहमत हूँ जो उनकी प्रशंसा करते हैं।"

उल्लेखनीय है कि डॉ. धर्मवीर ने पुस्तक में प्रेमचंद को 'सामंत का मुंशी' घोषित करते हुए उन्हें जारकर्म का दोषी ठहराया है। डॉ. धर्मवीर का कहना है कि "दलित की समस्या का वर्णन करने से दलित साहित्य का सृजन नहीं हो पाता। दलित की भूख, पीड़ा और त्रासदी के बखान में उसकी इतिश्री नहीं होती। दलित साहित्य का असली सृजन तब होता है जब उसमें दलित का चिंतन आता है। सारे गैर-दलित लेखक उसके इसी चिंतन से घबराते हैं। एक प्रेमचंद की अलग से क्या कहीं जाए, कोई भी अन्य गैर-दलित लेखक इसका अपवाद नहीं हो सकता। दलित साहित्य उसे ही कहा जायेगा, जिसमें पारिवारिक जीवन में तलाक की अनुमति हो, स्त्री के लिए भरण-पोषण पर रोक लगे तथा जारकर्म को जारकर्म की जिम्मेदारी से नवाजा जाए। प्रेमचंद समेत कौन सा गैर-दलित हिंदू लेखक है, जो इन बातों को सपने में भी सोच सकता है? बचाव में आकर वह कभी वेद में डुबकी लगायेगा तो कभी महाभारत में में कूदना चाहेगा, लेकिन जारकर्म से बचने के लिए उसे कहीं ठौर नहीं है।"

ध्यातव्य है कि डॉ. धर्मवीर की दलित साहित्य की यह परिभाषा प्रेमचंद को ही लक्ष्य करके की गई है। "डॉ. धर्मवीर का प्रेमचंद विरोध वस्तुतः प्रेमचंद का नहीं, बल्कि उस जार सत्ता का विरोध है, जिसकी पकड़ में दलित समाज सदियों से कैद रहा है। यह शुद्ध रूप से सत्ता विमर्श है। यद्यपि जारसत्ता के विमर्श के पीछे धर्मवीर का अपना निजी अनुभव बताया गया है, फिर भी दलित प्रश्न पर, एक नया विमर्श उभरा है जो काफी जबरदस्त है। अभी तक दलित विमर्श जाति और वर्ण के दायरे में ही भटक रहा था। धर्मवीर ने उसके आगे बढ़कर स्त्री-पुरुष संबंधों पर एक नयी दृष्टि डाली है, जो विषय के नैतिक, सामाजिक और प्राकृतिक पक्षों को उजागर करता है।"

डॉ. धर्मवीर के प्रेमचंद विरोध की इस पुस्तक प्रकाशन के साथ ही 6 दिसंबर, 2005 को पुस्तक के लोकार्पण समारोह के दौरान ही प्रख्यात दलित लेखिका डॉ. विमल थोरात, अनिता भारती एवं अन्य साहित्यकारों ने पुस्तक में दलित स्त्रियों के चारित्रिक हनन का आरोप

लगाते हुए इसका विरोध किया, नारेबाजी की और चप्पलें फेंकी। डॉ. नामवर सिंह ने प्रेमचंद को सामंत का मुंशी कहे जाने का विरोध करते हुए लोकार्पण समारोह का बहिष्कार किया। डॉ. धर्मवीर द्वारा स्थापित विवादों पर तीखी क्रिया-प्रतिक्रिया सामने आई। दलित लेखकों में श्योराज सिंह 'बैचैन' और मोहनदास नैमिशराय जैसे आलोचक डॉ. धर्मवीर के प्रेमचंद विरोधी स्वरों के साथ खड़े दिखाई दिए। कंवल भारती, सूरजपाल चौहान, कौशल्या बैसंत्री, अनिता माली, विमल थोरात आदि प्रेमचंद की दलित दृष्टि के पक्ष में एकजुट हुए। वहीं ओमप्रकाश वाल्मीकि एवं जयप्रकाश कर्दम जैसे प्रतिष्ठित आलोचक बीच बचाव की मुद्रा में आए। गैर-दलित आलोचकों में राजेन्द्र यादव, रमणिका गुप्ता, मैनेजर पाण्डेय आदि ने डॉ. धर्मवीर की आलोचना दृष्टि का खुलकर विरोध किया। मैनेजर पाण्डेय ने तो धर्मवीर को 'पैदाइशी स्त्री विरोधी घोषित कर दिया।'⁵

डॉ. देश निर्मोही ने धर्मवीर की पुस्तक में निहित विचारों का विरोध करते हुए लिखा— “डॉ. धर्मवीर ने प्रेमचंद के निजी जीवन और लेखन पर जो आरोप लगाये हैं, वे बेबुनियाद हैं।”⁶ समर्थन में डॉ. श्योराज सिंह 'बैचैन' ने लिखा - “एक दलित लेखक के रूप में प्रेमचंद ब्राह्मणवादी मूल्यों के चालक और प्रबल गांधीवादी लगते हैं, प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में चमारों की दुर्गति और गलत चित्रण द्वारा पाठकों को नकारात्मक राय कायम करने का आधार दिया है।”

मोहनदास नैमिशराय ने 'कफन' कहानी और 'कर्मभूमि' उपन्यास को केन्द्र में रखकर प्रेमचंद पर सवाल उठाए— “क्या प्रेमचंद दलित चेतना के सूत्रधार थे? दलित चेतना की अवधारणा इतनी सुपरिभाषित है कि इससे प्रेमचंद को जोड़ पाना संभव नहीं है। वह जन्म से कायस्थ थे और दलित इसकी अनदेखी नहीं कर सकता।” डॉ. धर्मवीर की पुस्तक पर महत्वपूर्ण प्रतिक्रिया देते हुए उन्होंने कहा कि “बड़े लेखकों से भी चूक होती है। ऐसी ही चूक प्रेमचंद ने भी की है, जिसे धर्मवीर ने दर्शाया है।”⁸

स्पष्ट है कि डॉ. धर्मवीर के इस पुस्तक के बहाने, पुस्तक के विरोध और समर्थन में प्रेमचंद की दलित दृष्टि - दलित चेतना के कई आयाम सामने आए हैं। दलित आलोचना ने प्रेमचंद के दलित पात्रों के चित्रण पर कई सवाल उठाए हैं। उनकी आलोचनात्मक कसौटी प्रेमचंद को कई जगह प्रश्नों के कटघरे में खड़ा करती है, लेकिन इससे प्रेमचंद का महत्व कम नहीं हो जाता। वस्तुतः प्रेमचंद का साहित्य भारतीय समाज की संरचना, उसकी जटिलताओं और विविध जीवनानुभवों को निकट से देखने, समझने और उन पर सतत चिंतन करने का सृजनात्मक प्रयास है। उनके साहित्य-सृजन में समाज के उस वर्ग की पीड़ा, वंचना और संघर्ष की सशक्त अभिव्यक्ति मिलती है, जिसे सदियों से हाशिए पर धकेल दिया गया था। यह सत्य

है कि हिंदू सामाजिक व्यवस्था द्वारा दी गई अमानवीय यातनाओं या अस्पृश्यता के दंश को उन्होंने व्यक्तिगत रूप से नहीं भोगा, फिर भी उनकी सृजनशीलता दुःख और अन्याय की अनुभूति से संवेदित होकर परिवर्तनकामी विचारों को व्यापक आयाम प्रदान करती है।

दलित वैचारिकी के किसी सुव्यवस्थित सैद्धांतिक स्वरूप या 'दलित विमर्श' जैसी स्पष्ट अवधारणा के अभाव के बावजूद प्रेमचंद ने दलित जीवन की समस्याओं, उन पर होने वाले अत्याचारों, उनके संघर्षों और प्रतिरोध को निरंतर अपनी रचनाओं का विषय बनाया। उनकी लेखनी के माध्यम से दलित प्रश्न न केवल उभरता है, बल्कि सामाजिक चेतना का महत्वपूर्ण मुद्दा बनकर सामने आता है। क्या इससे प्रेमचंद की लेखकीय प्रतिबद्धता प्रमाणित नहीं होती? दलित आलोचना की सैद्धांतिक अवधारणा के आधार पर प्रेमचंद को भले ही दलित लेखक नहीं माना जाए, लेकिन उनकी रचना दृष्टि में उभरती दलित चिंतन की भूमि को, संवेदना के धरातल पर ही सही स्वीकार क्यों नहीं किया जा सकता? प्रेमचंद की 'सद्गति' कहानी में दलित पीड़ा की मर्मांतक त्रासदी और व्यवस्था से असहमति, चर्चित कहानी 'ठाकुर का कुआँ' की मारक संवेदना, 'दूध का दाम' में बच्चों की भावना और संवाद में दलित चेतना की गहरी अभिव्यव्यंजना, प्रेमचंद के गहरे 'दलित बोध' को सामने लाता है। ठीक उसी प्रकार उनके महत्वपूर्ण उपन्यास 'गोदान', 'कर्मभूमि', 'प्रेमाश्रम' गबन के साथ-साथ ढेरों कहानियों में दलित समस्या का संवेदनशील चित्रण है।

दलितों पर किसी गैर-दलित लेखकों में सबसे अधिक लिखने के बावजूद उनका इस स्तर का विरोध सोचने पर मजबूर कर देता है। इसलिए जब डॉ. धर्मवीर प्रेमचंद को दलित साहित्य की परंपरा में नहीं देखते हैं और उन पर हमलावर हो, विरोध करते हैं, तो प्रसिद्ध दलित लेखिका अनिता भारती सवाल उठाती हैं— “सवाल उठता है कि प्रेमचंद दलित साहित्यकार क्यों नहीं हैं? क्योंकि उन्होंने अपनी कहानियों में दलित को निकम्मा, परजीवी, आलसी और निठल्ला दिखाया है। आपके अनुसार प्रेमचंद दलित साहित्यकार नहीं हो सकते, क्योंकि वे गैर-दलित हैं।”⁹ सच्चाई तो यह है कि प्रेमचंद सामाजिक समस्याओं को समाधान की हद तक उठाते हैं। इसलिए उन्हें आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कथाकार कहा गया है। प्रेमचंद जाति व्यवस्था तोड़ने का हल निकालते हैं और समाधान वही है रोटी-बेटी का संबंध।¹⁰

दलित गैर-दलित साहित्य विवाद के संदर्भ में गैर-दलितों की संवेदना पूर्ण लेखन के बारे में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने भी कहा है - “अगर किसी रचनाकार में संवेदनशीलता है और उसकी संवेदनशीलता दलित के साथ है और दलित के यथार्थ को वह संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करता है तो निश्चित रूप से उसके

साहित्य को दलित साहित्य माना जायेगा। ऐसी कई कहानियाँ हैं जिनमें दलित यथार्थ जबरदस्त रूप से मौजूद है। मैं प्रेमचंद की विशेष रूप से दो कहानियों का जिक्र करूँगा। एक तो 'दूध का दाम' और दूसरी 'ठाकुर का कुंआ'। इन दोनों में ही दलित संवेदना है। तो इन कहानियों को हम क्यों नहीं मानेंगे? बिल्कुल स्वीकार करेंगे, लेकिन जिन कहानियों में प्रेमचंद की संवेदना दलित के बजाए किसी और के साथ है, उनको हम स्वीकार नहीं करेंगे।"¹¹

उल्लेखनीय है कि दलित आलोचना और विमर्श में प्रेमचंद को लेकर दलित साहित्यकारों में ही मतभेद है, जहाँ डॉ. धर्मवीर प्रेमचंद की किसी भी रचना को दलित रचना नहीं मानते हैं, वे दलित साहित्य को प्रेमचंद की परंपरा में नहीं देखते हैं। वहीं ओमप्रकाश वाल्मीकि को प्रेमचंद की कुछ रचनाओं में दलित पीड़ा की सही अभिव्यक्ति दिखाई देती है। हिंदी साहित्य की दुनिया में जिस प्रेमचंद को सामंती विचारों का विरोध करने वाले लेखक के रूप में जाना जाता है, उन्हें सामंत का मुंशी और दलित विरोधी कहकर उनकी संपूर्ण रचना को खारिज कर देने की मुहिम प्रेमचंद की स्थापित प्रतिष्ठा पर सबसे बड़ा आघात है, जिस प्रेमचंद ने अपने लेखन के एक बहुत बड़े भाग में अपरिवर्तनशील समझी जाने वाली हिंदू व्यवस्था के संडांध-जाति व्यवस्था और उससे उत्पन्न अस्पृश्यता के यथार्थ चित्र उकेरते हुए अपनी पूरी संवेदनशीलता और सहानुभूति के साथ दलितों के दुःख-दर्द को रेखांकित किया हो और दलित साहित्य को विमर्श का माहौल दिया हो, उनकी रचनाओं का सामूहिक दहन अलोकतांत्रिक है।

'रंगभूमि' की प्रतियों का प्रतीकात्मक दहन करना, उन्हें सामंत का मुंशी कहना, उनकी दृष्टि को ब्राह्मणवादी कहना, उनके महत्वपूर्ण विचार, लेखन और चिंतन का अपमान है। दलित विमर्श की कसौटी पर मूल्यांकित इन आरोपों का पुनर्परीक्षण बेहद आवश्यक है। यह समय की मांग भी है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. रामचंद्र (संपादक) दलित साहित्य की विकास यात्रा, साहित्य संस्थान, गाजियाबाद, 2013, पृष्ठ संख्या 61-62
2. डॉ. धर्मवीर : प्रेमचंद सामंत का मुंशी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2005 पृष्ठ संख्या 61-62
3. डॉ. धर्मवीर : प्रेमचंद सामंत का मुंशी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2005 पृष्ठ संख्या 63
4. हरिनारायण ठाकुर : दलित साहित्य का समाजशास्त्र, भारतीय ज्ञानपीठ, 2018 पृष्ठ संख्या 155
5. देश निर्मोही (संपादक) : पल-प्रतिपल, जून-सितंबर, 2005, पृष्ठ संख्या 42
6. देश निर्मोही (संपादक) : पल-प्रतिपल, जून-सितंबर, 2005, पृष्ठ संख्या 42
7. सदानंद साही (संपादक) दलित साहित्य की अवधारणा और प्रेमचंद, लोकायत प्रकाशन, 2021, पृष्ठ संख्या 112
8. मोहनदास नैमिशराय (संपादक) वसुधा, जुलाई-सितंबर, 2005, पृष्ठ संख्या 67
9. डॉ. धर्मवीर : प्रेमचंद सामंत का मुंशी, वाणी प्रकाशन 2005, पृष्ठ 50
10. हरिनारायण ठाकुर : दलित साहित्य का समाजशास्त्र, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 2008 पृष्ठ संख्या 158
11. रामचंद्र (संपादक) दलित साहित्य की विकास यात्रा, साहित्य संस्थान, गाजियाबाद, 2013

— भगवान साहु

डॉ. भीमराव अंबेडकर, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय

डिंगल की कवयित्रियां : स्त्री चेतना और अभिव्यक्ति का पुनर्पाठ

हम कहीं भी हों / किसी काल में हों / स्त्री होने का सच, दर्द / दिख ही जाता है। झीमा चारणी, पद्मा चारणी, बिरजूबाई ठकुरानी, काकरेची, नाथी, रावयोद्या की सारवाली रानी, चम्पा दे रानी, रानी राधरी जी, हरिजी रानी, चावड़ी जी आदि कवयित्रियों को हिंदी की प्रारंभिक कवयित्रियां होने का गौरव प्राप्त है। यद्यपि आदिकालीन काव्य के लिए निर्धारित समय सीमा के परे तक ये कवयित्रियां जाती हैं, क्योंकि इनका रचनाकाल दसवीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी तक फैला हुआ है। इन कवयित्रियों की भाषा डिंगल है। भाव और काव्य-कला दोनों ही दृष्टियों से इन कवयित्रियों की रचनाएं भले ही अपनी शैशवावस्था में हैं लेकिन इनकी रचनाओं में स्त्री हृदय की आर्त पुकार है और इस पुकार की पृष्ठभूमि में है, अपने अस्तित्व को बचाए रखने का अद्भुत संघर्ष।

झीमा चारणी डिंगल की चारणी परंपरा में झीमा चारणी का नाम सबसे पहले आता है। झीमा का समय सम्वत् 1560 के आस-पास माना जाता है। झीमा बीकानेर के बीटू चारण की बहन थीं। उस समय कोटा में खीची वंश के शासक अचलदास का शासन था। झीमा पूरी निर्भयता के साथ जीविका निर्वाह हेतु अचलदास के दरबार में पहुंची। झीमा की रचनाओं से अचलदास प्रभावित और प्रसन्न हुए। झीमा ने अपनी सहेली उमादे का विवाह अचलदास से करवाया। अब झीमा उमादे के साथ राजमहल में रहने लगीं। कई युद्धों में झीमा ने राजा अचलदास का प्रशस्तिगान कर उनके मनोबल को बढ़ाया। झीमा चारणी की कहानियां मारवाड़ में प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि अपनी रचनाओं और वाक् कला द्वारा इन्होंने अचलदास के कई विरोधी राजाओं को षड्यंत्र का शिकार बनाया तथा अचलदास के विजय में सहायक हुईं। पुरस्कार स्वरूप इन्हें ढेरों राशि, अश्व और गज प्राप्त होते थे। परंतु वीरता के जो भी गीत झीमा चारणी ने गाए, वे सब अब अप्राप्य हैं।

उमादे हेतु राजा अचलदास के लिए झीमा चारणी ने जो रचनाएं गाई, उसका कुछ अंश मिलता है। इन्हीं रचनाओं के आधार पर झीमा चारणी के भाव और भाषा पर विचार किया जाता है। उमादे के लिए राजा अचलदास को सम्बोधित रचनाओं की पृष्ठभूमि जाने बिना हम उन रचनाओं का आकलन नहीं कर सकते। दरअसल झीमा चारणी के अनुग्रह पर राजा अचलदास ने उमादे से विवाह तो किया, परन्तु उन्हें कभी पत्नी सुख नहीं दिया। उमादे पति से प्रेम पाने के लिए

व्यथित और दुःखी रहती थीं। झीमा अपनी रचनाओं को वीणा के तान में ढाल कर उमादे का मन बहलाने का प्रयास करतीं। पति प्रेम के अभाव में उमादे को कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। एक दिन उमादे ने झीमा से कहा कि तू अपनी वीणा से राजा को प्रभावित कर मेरे पास क्यों नहीं लाती? झीमा ने एक युक्ति निकाली उसने राजमहल में यह अफवाह फैला दी कि उमादे के पास एक विरला हार है। झीमा ने दावा किया कि वैसा हार किसी अन्य रानी के पास नहीं है। लालादे (जो अचलदास की पटरानी थीं और राजा इनके पूर्ण नियंत्रण में थे) ने हार देखने की इच्छा जाहिर की। झीमा ने शर्त रखी कि लालादे एक रात के लिए राजा को उमादे के पास जाने दे, तभी लालादे हार देख पाएंगीं। लालादे ने सैनिक वेश में राजा को उमादे के पास भेजा और राजा को शपथ दिलाई कि वे अपना वेश परिवर्तित नहीं करेंगे। राजा अचलदास सैनिक वेश में उमादे के महल में पधारे। उमादे अत्यंत प्रसन्न हुईं। इसी समय झीमा चारणी ने वीणा पर तान छेड़ निम्न रचना गाई

धिन उमादे सांखली, तै पिय लियो मुलाय।
सात बरसरो बांछड़यो, तो किम रैन बिहाय॥
किरती माथे ढल गई, हिरणी लूबां खाय।
हार सटे पिय आणियों, हंसे न सामो थाय॥
अचल एराक्या न चढ़े, रोढा रो असवार।
लाला लाल मेवाड़ियां, उमा तीज बल भार॥

अर्थात् सखी तू धन्य है। आज तूने प्रियतम को मोल ले लिया। तुमने सात वर्षों तक वियोग की दिन-रात्रि कैसे व्यतीत की। कृतिका ढल गई, मृगशिरा उदित है। तुम्हें हार के बदले अपना प्रिय मिल गया, परंतु तुम दोनों के बीच अभी हास्य-विनोद क्यों प्रारंभ नहीं हुआ। निश्चय ही लालादे मेवाड़ की रत्न है, पर उमादे का सौंदर्य उससे तीन गुना ज्यादा है। लेकिन अचल सिंह इराकी अश्व पर नहीं, घोड़े पर चढ़ता है।

अचल सिंह पर झीमा के व्यंग्य बाणों का कोई असर नहीं हुआ। उसने लालादे को दी हुई प्रतिज्ञा नहीं तोड़ी। उमादे को पति मिलन का सुख प्राप्त नहीं हुआ। सूर्योदय हो गया और लालादे की दासी अचलसिंह को बुलाने आ गई। उमादे करुण स्वर में झीमा से कहती है

पहो फटी पगड़ो हुआ, बिछरण की है बार।
ले सखि थारो बालमो, उरदे म्हारो हार॥

झीमा को उमादे की व्यथा अपनी हार प्रतीत होती है। परंतु झीमा को अपनी चारणी स्थिति का पूर्ण बोध है, वह अपनी स्थिति सुरक्षित रखते हुए पुनः वीणा पर तान छेड़ती हुई गाती है

लाला मेवाड़ी करे, बीजे करे न कोय।
गायो झीमा चरणी, उमा लियो मोलाय ॥
पगे बजाऊं घूंघरू, हाथ बजाऊं तंब।
उमा अचल मुलावियो, ज्यूं सावन की लूंब ॥
आसावरी अलापियो, धिन झीमा धण जाण।
धिन आजूणे दीहने, मनावणे महिराण ॥

अर्थात् मेवाड़ी लालादे जो करती है, उसे कोई दूसरा नहीं कर सकता। उमादे ने आपको पाने हेतु जो क्रय-विक्रय किया है, वही मैंने आपको गा कर सुनाया है। नृत्य और वीणा की सहायता से मैंने उमादे के नीर-भरे दुःखों को ही गीत में ढाला है। मेरी स्वामिनी उमादे धन्य है, जो उसे राजा को मनाने का अवसर मिला।

यद्यपि उक्त पंक्तियों के आधार पर झीमा चारणी के काव्य-सौष्ठव का आकलन नहीं किया जा सकता। लेकिन झीमा की उक्त पंक्तियों से इस बात का अंदाजा अवश्य लगाया जा सकता है कि उस समय के समाज में एक स्त्री का जीवन किस कदर अपने पति पर आश्रित था। स्त्री के जीवन का एकमात्र उद्देश्य येन-केन-प्रकारेण अपने पति की कृपा-दृष्टि प्राप्त करना था। झीमा द्वारा अपनी अंतरंग सखि उमादे के लिए गाए गए उक्त पंक्तियों में उमादे की दीनता स्पष्ट है। साथ ही उक्त पंक्तियां इस बात की भी पुष्टा प्रमाण हैं कि झीमा को काव्य सृजन में निपुणता हासिल थी। मुंशी देवी प्रसाद ने 'महिला मृदु वाणी' में झीमा चारणी की खूब प्रशंसा की है और प्राप्त रचनाओं के आधार पर इन्हें डिंगल की प्रमुख कवयित्री माना है।

पद्मा चारणी इनका समय सम्वत् 1597 के लगभग माना जाता है। ये चारण माला जी साहू की पुत्री तथा बारहट शंकर की पत्नी थीं। बीकानेर नरेश अमरसिंह के यहां अन्तःपुर में ये जीविका निर्वाह के लिए रहती थीं। अन्य चारणियों की भांति इनका कार्य भी अंतःपुर की रानियों का मनोविनोद करना तथा वहां चलती हुई प्रतिस्पर्द्धा को लेकर पद और कविता बनाना था। इनके काव्य की भाषा डिंगल थी। इनकी लिखी हुई अधिकांश रचनाएं अप्राप्य हैं। इनका लिखा हुआ एक पद मिलता है

गगणे गाज आवाज रणतूर पारवर गरर।
सालु लै सिंधु ओ राग साथै ॥
दुरित धनराज रो वैर जल डोलतो।
भलकियो मूंगली फौज माथे ॥
धी खे कमंध खगधार और धूलिये ॥

X X X

सारदल सामुंही हंस पावासारी।
झीलियो नारियण लोह जाझे ॥
सती पुहपा अने अछर अग्र सिवा पै।
जाह नह नाम संसार जमी यो ॥
हरि सहर को चले हंस अविहड हरो।
कवध नारायणो सरोग क्रमियो ॥...

अर्थात् आकाश में रणतूर का कठोर गर्जन गूंज रहा है। सिंधु का भयानक स्वर लेकर सेना झुकी आ रही है। वीर राजा के वैर रूपी जल को मथता हुआ मुगल सेना का अग्रणी आगे बढ़ रहा है। उसकी तलवार की धार राजा के धड़ पर पड़ती है और उसे उड़ा देती है। राजा अपनी रक्षा का भरसक प्रयास करता है। पाबासर में इस प्रकार खड़ग-युद्ध चल रहा है। राजा वीरतापूर्वक लड़ने के बाद नाड़ियों से निकले हुए रक्त से नहाया पड़ा है। सती पुष्पा तथा दूसरी अप्सरावत् रूपवाली सती स्त्रियां उसके सम्मुख आती हैं। हरि की नगरी से आये हुए विमान पर उसके झूलते हुए प्राण आसीन होते हैं और राठौराय इस प्रकार स्वर्ग को प्रयाण करते हैं।

इस पद की पृष्ठभूमि में एक घटना का उल्लेख किया जाता है। कहा जाता है कि बीकानेर-नरेश अमरसिंह मुगल शासक अकबर के विरुद्ध क्रांतिकारी कदम उठाना चाहते थे। इनका मानना था कि अकबर का विशाल वैभव हिन्दुस्तान की दौलत के बंदौलत है। यदि उस दौलत को अकबर से छीन लिया जाए तो अकबर की सारी शक्ति क्षीण हो जाएगी। अतः अमरसिंह अकबर का कोष लूटने के उपक्रम में लगे रहते थे। कालान्तर में जब अकबर को अमरसिंह की योजना का भान हुआ तो उसकी सेना ने अमरसिंह पर आक्रमण कर दिया। अमरसिंह के गढ़ को मुगल सेना ने घेर लिया। उस समय अमरसिंह निद्रावस्था में थे। अमरसिंह के क्रोध को लोग जानते थे, अतः उन्हें नींद से जगाने का साहस किसी में न था। पद्मा चारणी ने अमरसिंह को जगाने का जिम्मा लिया। अमरसिंह को जगाने हेतु पद्मा ने जो पद गाया उसकी एक पंक्ति मिलती है 'जाग जाग कल्याण जाया'।

अन्ततः राजा की नींद टूटी। मुगल सेना का सामना करते हुए राजा अमरसिंह वीरगति को प्राप्त हुए। अमरसिंह की रानियां और रक्षिताएं उनके साथ सती हुईं।

यद्यपि पद्मा चारणी के नाम से जो उक्त पद मिलता है, उसके आधार पर उनके अप्राप्त काव्य का विवेचन नहीं किया जा सकता है, तथापि उक्त पद से इतना तो अनुमान लगाया ही जा सकता है कि चारणों की भांति ही डिंगल की चारणियां भी अपने राजा के प्रशस्ति गान में निपुण थीं। निश्चय ही चारणियों को चारणों की तुलना में

युद्ध-भूमि के प्रत्यक्ष युद्ध का अनुभव कम रहा होगा, लेकिन उनकी कल्पना शक्ति चारणों से कम न थी। इसी कल्पना शक्ति के सहारे चारणियों ने युद्ध का सजीव चित्रण किया है।

फिर उक्त पद और प्रसंग का एक पहलू यह भी है कि जिस कार्य (अमरसिंह को नींद से जगाने का) को करने की हिम्मत बड़े-बड़े मंत्री और अन्य लोग नहीं जुटा पाए, उसे एक स्त्री ने अपने कौशल और सूझ-बूझ से कर दिखाया। देखने में यह कृत्य जितना छोटा या गौण प्रतीत होता है, वास्तव में वह अनंत सम्भावनाओं से जुड़ा है। निश्चय ही इन संभावनाओं के तार स्त्रियों की हिम्मत और कौशल से जुड़े हैं, जिसका आभास हमें पद्मा चारणी के उक्त पद में मिलता है।

बिरजूबाई इनका रचनाकाल सन् 1743 के आस-पास माना जाता है। बिरजू जोधपुर के महाराज श्री अभयसिंह जी की राजसभा में रहने वाले चारण कविराज करनदीन की बहन थीं। कविराज करनदीन भड़कीले कवित्तों और गीतों की रचना करते थे। यद्यपि बिरजूबाई किसी राजा के अन्तः पुर में नहीं रहती थीं लेकिन इनमें काव्य प्रतिभा थी, जिसका पता तब चला जब इनका भतीजा चंपावत, ठाकुर प्रताप सिंह के पास जा रहा था। चंपावत ठाकुर प्रताप सिंह से अनुकंपा का आकांक्षी था, लेकिन चारण-परिवार का होकर भी स्वयं कवित्त या गीत लिखने की क्षमता उसमें नहीं थी। चंपावत, राजा के सामने अपनी अक्षमता प्रदर्शित नहीं करना चाहता था। चंपावत की इस दुविधा का पता जब बिरजूबाई को चला तो उन्होंने ठाकुर प्रताप सिंह के लिए काव्य रचना कर अपने भतीजे को दिया। बिरजूबाई ने चंपावत से कहा कि इन पदों का रचयिता वह स्वयं अपने को बताए। चंपावत, ठाकुर प्रतापसिंह के पास पद लेकर हाजिर हुआ। वह पद इस प्रकार है

कहो सुचाला ऐराकी, नाव जेरी की बखाण कीजै।

ऐराकी रूप मां आछा आरवां रीझावर पती ॥

रीझां दे ऐराकी काछी एहा बाजराज।

छछहा बछेक रथा...

फील मत्था ठेके खुरां डोहणेस फौज।

सोहणेस करजां, आरोहणेस पातसाहा ॥

मोहणेस नन्द देव एहातुरी भोज

भूप लग्गा रूप लोभ बोल दे दलाला भाई।

रक्कमा अमोल दे बड़ाई हेमरास ॥

नगासूं तोल दे जरां खोल दे खंखधारी नीठ।

हाथी साईं डोल देता, मोल दे हवास ॥

पातरती ताते गीस रीती पंथ बिनू पंथी।

यूं सारे दूसरे परीती, चीती कंत ज्यूं उडाण ॥

यह कितनी सुन्दर गति वाला इराकी अश्व है। इसका वर्णन किस प्रकार किया जाय। इसका रूप इतना सुन्दर है कि मन को मुग्ध कर लेने

का इसमें अद्भुत गुण है। यह तो अश्वों का राजा ज्ञात होता है। इसके इस गुण का क्या वर्णन करूं। यह प्रतापसिंह के रथ में जुतने योग्य है। इसके मस्तक पर फील और खुरों में नाल जड़ी है। सेना में इसकी शोभा अलग ही दिखाई देती है। इस पर आरोहित कुंवर प्रताप बादशाह के समान प्रतीत होते हैं। इसका सौन्दर्य देवताओं के मद को मथने वाला है। इसके रूप के प्रति राजा महीपसिंह भी आकर्षित हो गये हैं, इसके लिए अमूल्य धन दो, हेमराशि दो, रत्नों से इसका मोल करो। खड्गधारी प्रतापसिंह को इस पर आरोहित देख मैं मोहित हो गई हूं।

पद में आये स्त्रीलिंग शब्दों को देखकर ठाकुर प्रतापसिंह को संशय हुआ। उन्होंने कठोर स्वर में चंपावत से रचनाकार का नाम पूछा। चंपावत ने भय से सारी बात सच-सच बता दी और इस प्रकार बिरजूबाई की काव्य रचना सबके सामने आई।

काव्य कला की दृष्टि से बिरजूबाई की उक्त पंक्तियां भले ही प्रभावकारी न हों, परन्तु इससे इतना तो अवश्य पता चलता है कि स्त्रियों में काव्य सृजन की न केवल अदम्य आकांक्षा थी बल्कि उनमें नैसर्गिक प्रतिभा भी थी। निश्चय ही रण-क्षेत्र के अश्वों का ऐसा वर्णन नैसर्गिक प्रतिभा से ही संभव है। साथ ही उक्त पद सृजन की पृष्ठभूमि इस बात की पुख्ता प्रमाण है कि बिरजूबाई चाहती थीं कि उनकी रचना राजदरबार में सुनी जाए और उसकी प्रशंसा हो। इस पूरे प्रसंग में एक स्त्री की दमित इच्छाओं का संसार प्रतिबिम्बित हो रहा है।

नाथी कहा जाता है कि नाथी चंद्रसेन के पुत्र राजा भोजराज की पुत्री थीं। राजा भोजराज अमरकोट के शासक थे, जिनका समय सम्वत् 1600 के आसपास था। नाथी का विवाह डेरवारा नामक स्थान पर हुआ था। नाथी ने विष्णु की भक्ति में रत होकर अनेक भक्तिपरक पदों की रचना की। माना जाता है कि नाथी द्वारा रचित हस्तलिखित पुस्तक की एक प्रति मिली थी जिसमें भगवत भाव से संबंधित 210 चरण, गूढारथ के 77 चरण, साख्यां के 338 चरण, बाल चरित के 62 चरण और कंसलीला के 109 चरण थे। परन्तु इस हस्तलिखित पुस्तक का उल्लेख मात्र मिलता है पुस्तक भी नहीं मिलती।

ठाकुरानी काकरेची काकरेची, गुजरात के काकरेची प्रदेश के एक ग्राम दियोधर के ठाकुर बाघेला अगराजी की पुत्री थीं। मारवाड़ देश के पश्चिम परगने केशीनगर के चौहान राव बल्लू जी के पुत्र नरहरि दास जी से काकरेची का विवाह हुआ था। काकरेची को पति का साथ ज्यादा दिनों तक नहीं मिला। विवाह के कुछ ही वर्षों बाद इनके पति की मृत्यु शाहजहां के पुत्रों के साथ युद्ध करते हुए हुई। इनके पति और श्वसुर शाहजहां की अधीनता में थे। कहा जाता है कि काकरेची के पति की मृत्यु के बाद पति के रूप-साम्य का एक व्यक्ति इनके पास आया और कहने लगा कि मैं तुम्हारा पति हूं,

शत्रुओं ने मेरे मरने की झूठी खबर उड़ा दी है, परन्तु काकरेची ने उस छली को पहचान लिया और बहुत बुरा भला कहा।

काकरेची द्वारा रचित कुछ दोहे और पद कहे जाते हैं, परन्तु वे प्राप्य नहीं हैं।

चम्पादे रानी चम्पादे रानी जैसलमेर के राव लहरराज की पुत्री थीं। बीकानेर के राजा के अनुज पृथ्वीराज इनके पति थे। मुंशी देवी प्रसाद ने चम्पादे रानी का रचनाकाल सम्वत् 1650 माना है। चम्पादे के पति पृथ्वीराज स्वयं डिंगल और पिंगल के श्रेष्ठ कवि थे। नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्ट में पृथ्वीराज की हस्तलिखित प्रति 'प्रेम दीपिका' का उल्लेख मिलता है। अपने पति की काव्य रचना में चम्पादे का पूर्ण सहयोग रहता था। कहा जाता है कि एक बार पृथ्वीराज 'रूक्मणी वेश' नामक ग्रंथ की रचना कर रहे थे। इस ग्रंथ में महलों की शोभा के वर्णन में एक जगह पृथ्वीराज अटक गए। उन्हें छंद की मात्राएं पूर्ण करने में कठिनाई हो रही थी। पृथ्वीराज ने उस जगह पर 'चन्दन पाट' शब्द का प्रयोग किया था जो छन्द की मात्राओं के हिसाब से उपयुक्त नहीं पड़ रहा था। चम्पादे ने 'चन्दन पाट' के आगे 'कपाट हि चन्दन' जोड़कर छन्द की मात्राएं पूर्ण कीं।

चम्पादे पृथ्वीराज की दूसरी रानी थीं। अपनी पूर्व पत्नी की मृत्यु के शोक में पृथ्वीराज अत्यंत दुःखी रहते थे। यहां तक कि पृथ्वीराज ने अन्न परित्याग का निर्णय ले लिया था। उनके इस निर्णय से संबंधित निम्न दोहा मिलता है

तो राधयो नहिं खान रूपा रे, वारा दे निसड्ड।

मो देखत तू बालिया, लील रहदा हड्ड॥

हे अग्नि, अब से मैं तुझ में पका हुआ भोजन कभी नहीं करूंगा। तूने मेरी लीला को मेरे देखते-ही-देखते जला दिया; केवल अस्थियां शेष रह गई।

चम्पादे ने अपने धीरज और मृदु स्वभाव से पृथ्वीराज के जीवन में आए सूनेपन को दूर किया। चम्पादे की धीरता और दार्शनिकता का अत्यंत रोचक प्रसंग मिलता है। कहा जाता है कि एक दिन पृथ्वीराज को दर्पण में एक श्वेत केश दिखा। उन्होंने अपने केशों से उस श्वेत केश को अलग कर दिया। चम्पादे पृथ्वीराज के पीछे खड़ी सारा दृश्य देख रहीं थीं और उन्होंने मुस्कराया। पृथ्वीराज को दर्पण में चम्पादे की मुस्कराहट दिखी। उन्होंने प्रत्युत्तर में कहा-

पीथल धोता आबियां, बहुली लग्गी खोड़।

पूरे जोवन मदमणी, ऊंभी मूह मरोड़॥

पीथल पल्ली टमुक्कियां बहुल्ली लग गई खोड़।

सामीनता हासा करे, ताली दे मुख मोड़॥

श्वेत केश आ गये हैं, एक बहुत बड़ा दोष आ गया है। पूर्ण यौवन में मदमाती युवती मुंह फेरकर खड़ी है। श्वेत केशों को देखकर नवयुवती खड़ी होकर उपहास कर रही है।

अब देखें कि चम्पादे किन सुन्दर शब्दों और दार्शनिक अंदाज में पृथ्वीराज के कथन का उत्तर देती हैं

प्यारी कहे पीथल सुनो, धोला दिस मत जोय।

नरा नाहरा..... पाका ही रस होय॥

खेड़ज पक्का धोरियां, पंथज गड्ढां पाव।

नरा तुरंगा बन फला, पक्का साव॥

हे प्रियतम! सुनो, श्वेत को सदैव ही बुरा नहीं कहते। नर, नाहर परिपक्व होने पर ही रस से पूर्ण होते हैं। लोगों की सार्थकता पकने में है, ऊंट की मार्ग तय करने में। पर, तुरंग और वनफल पकने पर ही स्वादिष्ट होते हैं।

दुर्भाग्य से चम्पादे का अलग से कोई काव्य ग्रंथ नहीं मिलता है, केवल अपने पति पृथ्वीराज के प्रसंग में ही इनकी रचनात्मक प्रतिभा का परिचय मिलता है। लेकिन पति के साथ आए प्रसंगों और प्राप्त पदों से ही चम्पादे के व्यक्तित्व के कई आकर्षक पहलू सामने आते हैं। एक तो यही कि चम्पादे शिक्षित थीं, उन्हें छंदों और मात्राओं का पूर्ण ज्ञान था। इतना ज्ञान कि वे इनका सार्थक और उपयुक्त प्रयोग कर सकें। जो स्त्री अपने पति के काव्य सृजन में छंदों, मात्राओं के सामंजस्य में सार्थक हस्तक्षेप कर सकती थी, वह स्वयं काव्य सृजन भी कर सकती थी। फिर क्या चम्पादे को अवसर नहीं मिला या कोई अन्य कारण था? दूसरे श्वेत बाल पर अपने पति की चिन्ता का समाधान जिस दार्शनिक अन्दाज में चम्पादे करती हैं, वह भी काबिले तारीफ है। ऐसा उत्तर वही व्यक्ति दे सकता है जिसे जीवन और जगत की पूर्ण समझ हो। फिर एक पत्नी जिसके जीवन की सार्थकता ही पति की प्रेम पात्र बने रहने में होती थी, उसकी भलाई इसी में थी कि वह पति को स्वयं को प्रौढ़ समझे जाने से रोके।

रानी रारधरी मुंशी देवी प्रसाद ने 'महिला मृदुवाणी' में रानी रारधरी के पदों और जीवन का उल्लेख किया है। इनके वास्तविक नाम का पता नहीं है। मारवाड़ के रारधरा प्रान्त के राणा की पुत्री होने के कारण उन्हें रारधरी रानी के नाम से पुकारा जाता था। रानी रारधरी का विवाह सिरोही के राव जी से हुआ था। रानी रारधरी के पिता और पति के निवास स्थानों का ही नाम उपलब्ध है व्यक्तियों (पिता और पति) का नहीं।

रानी रारधरी द्वारा रचित जो पंक्तियां मिलती हैं, वह अपने पति के साथ संवाद रूप में हैं। यथा-आबू की सुरम्य प्रेरणा से राव साहब ने निम्नलिखित पंक्तियां कही-

**टूँके टूँके केतकी, झिरने झिरने जाय।
अर्बुद की छवि देखता, और न आवे आय॥**

गिरि के एक-एक शिखर पर पर केतकी खिली है, जूही के पुष्प झड़ रहे हैं, अर्बुद की इस छवि को देखने के पश्चात् मन और कहीं नहीं लुब्ध हो सकता। रारधारी को ये पंक्तियाँ अच्छी नहीं लगीं। वे पर्वत की चढ़ाई से थक चुकी थीं। उन्होंने कहा—

**पयि आछो भखनो जहर, पालो चलनो पंथ।
अर्बुद ऊपर बैठनो, भलो सरायो कंथ॥**

इतने विषम पंथ पर चलने से अच्छा अफीम खा लेना है। अर्बुद की क्रीड़ा की, हे कंत! तुम व्यर्थ ही प्रशंसा कर रहे हो।

रारधारी की उक्त पंक्तियों का राजा पर कोई असर नहीं पड़ा। राजा ने अपने प्रदेश की प्रशंसा जारी रखी, साथ ही रानी के पिता-गृह को लेकर व्यंग्य भी। इस पर रानी ने अपने पिता-गृह की प्रशंसा में पुनः निम्न पंक्तियाँ कहीं—

**घर ढांगी, आलम धनी, परगण लूना पास।
लिखियो जिण ने लाभ-सी, राड़धड़ा-से वास॥**

मेरे गृह पर ढांगी है, वहाँ आलम ईश की पूजा होती है। निकट ही लूण नदी का प्रवाह है, ऐसे राड़धरे का वास बड़े भाग्यवान् को प्राप्त होता है।

इस पद में आए ढांगी शब्द का अर्थ जानना जरूरी है। ढांगी, राड़धरे में बालू के एक विशेष टीले का नाम है। इस टीले के बनने की एक रोचक कहानी है। कहा जाता है कि एक बार किसी बादशाह ने अपने अरबी घोड़ों के लिए अरब देश से रेत मंगवाया था। इस रेत को एक बनिया बैलों पर लादकर दिल्ली की ओर जा रहा था। वह बनिया अभी राजस्थान के राड़धर नामक स्थान पर ही पहुँचा था कि उसने बादशाह की मृत्यु का समाचार सुना। उसने निराश होकर सब रेत उसी जगह पर डाल दिया, जिसने टीले का रूप ले लिया। इसी टीले का नाम ढांगी पड़ा।

पति के साथ संवाद रूप में आए रानी रारधारी की उक्त पंक्तियों से दो बातें सामने आती हैं एक, स्त्रियों के हृदय में पितृ-गृह का मोह बना रहता है, जो अवसर मिलते ही सामने आ जाता है। दूसरे, स्त्रियों की काव्य क्षमता किसी से कम नहीं होती। स्त्री-जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना पितृ-गृह छोड़ने की विवशता होती है। पिता के घर की सारी स्मृतियों को सहेज कर जब कोई लड़की पति के घर जाती है और पिता के घर की निंदा सुनती है, तो उससे बर्दाश्त नहीं होता। स्त्री ही क्यों कोई भी मनुष्य अपने से भावात्मक रूप से जुड़ी चीजों की निंदा शायद ही बर्दाश्त कर पाए। इस प्रकार रारधारी के उत्तर का संबंध स्थान विशेष की विशेषता अथवा कमी से न होकर स्त्रियों की

अपनी स्थिति से है। रारधारी द्वारा सृजित उक्त दोनों ही पद उत्तर के रूप में आए हैं। जाहिर है प्रश्नों का स्वरूप ऐसा था कि उत्तर भी तुरंत दिए गए होंगे। ऐसे में रारधारी की काव्य क्षमता अथवा प्रतिभा पर प्रश्नचिह्न कैसे लगाया जा सकता है?

हरिजी रानी चावड़ी जी इनका समय अठारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जाता है। मुंशी देवी प्रसाद ने 'महिला मृदुवाणी' में इनका उल्लेख किया है। हरिजी रानी चावड़ी का जन्म गुजरात के एक प्रसिद्ध ठाकुर परिवार में हुआ था। इनका विवाह जोधपुर के महाराजा मानसिंह के साथ हुआ था। ये मानसिंह की दूसरी रानी थीं। हरिजी रानी चावड़ी द्वारा रचित दो पद मिलते हैं। पहला पद है—

बेगानी पधारो म्हारा आलीजा जी हो।

छोटी-सी नाजक धीण रा पीव॥

ओ सावणियो उमंग रयोदे।

हरि जी ने ओडन दिखाती चीर॥

हण ओसर मिलयो कह होसी।

लाडी जी रो थां पर जीव॥

छोटी-सी नाजक धण रा पीव॥

हे आलीजा! मैं तुम्हारे अभाव में बेसुध हो रही हूँ। तुम्हारी कोमल धन कुम्हला रही है। सावन की उमंगें चारों ओर छा रही हैं, तुमसे मिलने की उत्कण्ठा बढ़ रही है। हे प्रिय! मेरे प्राण तुम्हीं पर लगे हैं, तुम्हारी कोमल धन्या की यह दशा हो रही है।

इस पद की पृष्ठभूमि में एक घटना का उल्लेख किया जाता है। कहा जाता है कि एक बार हरिजी रानी चावड़ी स्नान कर रही थीं कि राजा मानसिंह आ गये। रानी ने दासी द्वारा राजा के पास संदेश भेजा कि अभी वह न आएँ। रानी ने संदेश के साथ राजा के न आने के लिए कुलदेव नाथ जी की शपथ भी भेजी थी। राजा लौट गए। परन्तु श्रृंगार के उपरान्त जब रानी ने राजा को बुलाने के लिए संदेश भेजा तो राजा नहीं आए। राजा ने दासी से कहलवाया कि रानी ने मुझे इतनी बड़ी शपथ दी है मैं कैसे आ सकता हूँ? राजा छः मास तक रानी के पास नहीं गए। वर्षा ऋतु आ गई। बाट जोहते-जोहते रानी थक गई। तभी रानी ने उक्त पद लिखकर राजा को भेजा था जिससे राजा मानसिंह का मान टूट गया।

मानसिंह ने दूसरी रानी हरिजी चावड़ी के पश्चात् भी अनेक विवाह किए। अपने पति के इन विवाहों में चावड़ी जी ने मंगल गीत गाए। इन्हीं मंगल गानों में से एक गीत है—

चाली मृगा नैणिया जी चम्पा ब्याहियां।

उठे लाल तम्बूडा तणियां,

पनी सुमरे संगरा साथी।

ज्यूं माल्या रा मणियां,
रसीलो राज नींद मदमाती ॥
सुख समाज रंग वणियां।
फेर बंधावण चालो सखी,
पिव केसरिया बणियां ॥

मृग-नेत्र वाला नायक चम्पा से विवाह करने जा रहा है। लाल ताम्बूल का रंग उसके अधरों पर है। अपने इष्ट मित्रों के साथ वह ऐसा शोभित होता है मानो किसी माला की मणि हो। रसीले राज, यौवन की तन्द्रा में मदमस्त सुख-समाज से घिरा हुआ है। चलो सखी, उसके सिर पर आज फिर केसरिया पाग बांधें।

उक्त पंक्तियों में 'फेर बंधावण चालो सखि पिव केसरिया बणियां' महत्त्वपूर्ण है। पति के विवाह में शामिल होना और उसमें मंगल गीत गाना एक पत्नी के लिए कैसी विवशता होगी? यही विवशता व्यंग्य बनकर उक्त पंक्तियों में सामने आई है।

रानी चावड़ी का पहला पद यद्यपि मनुहार का है, लेकिन जो पति छः महीने से मान किए बैठा है, पत्नी के संदेशों का जिसके लिए कोई महत्त्व न हो उसके लिए कैसा मनुहार। यहां मनुहार कम मनुहार की विवशता ज्यादा रही होगी। निश्चय ही उस समय पत्नी के जीवन की सार्थकता पति के खुश रहने में थी, उसका अस्तित्व ही पति से जुड़ा था। एक पत्नी की यही विवशता और विकल्पहीनता रानी चावड़ी के पहले पद में मनुहार बनकर सामने आयी है।

अब तक प्राप्त डिंगल की कवयित्रियों की रचनाएं अत्यंत अल्प हैं, लेकिन जो भी रचनाएं उपलब्ध हैं उससे उस समय के समाज में

स्त्रियों की स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है। प्रायः चुप रहने को विवश ये कवयित्रियां जब बोलती हैं, तो स्त्री-जीवन का कोई न कोई सत्य उजागर कर जाती हैं। यहां एक बात और उल्लेखनीय है, डिंगल की कवयित्रियां सुनकर ऐसा ध्वनित होता है मानो इन कवयित्रियों ने भी चारणों की भांति ही अपने आश्रयदाता के लिए प्रशस्तिपरक पद लिखे होंगे, लेकिन दो कवयित्रियों को छोड़कर किसी ने वीर रस की काव्य रचना नहीं की। इन कवयित्रियों ने काव्य सृजन हेतु जो भी विषय लिया उसमें जाने-अनजाने अपने को प्रकट किया और प्रकट किया, काव्य सृजन में स्त्रियों की असीम संभावनाओं को इसीलिए डिंगल की ये कवयित्रियां साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियां; लेखिका डॉ. सावित्री सिन्हा, आत्माराम एंड संस, प्रथम संस्करण-1953, पृष्ठ 28
2. वही, पृष्ठ 31
3. वही, पृष्ठ 33
4. वही, पृष्ठ 34
5. वही, पृष्ठ 35
6. वही, पृष्ठ 36
7. वही, पृष्ठ 37
8. वही, पृष्ठ 38

- प्रो. पूनम कुमारी
(आचार्य)

हिंदी विभाग, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली

मुक्तिबोध की कहानियों की पात्र-प्रविधि

शोध-सार

कथा-साहित्य की समस्त विधाओं में 'कहानी' अपनी संक्षिप्तता और प्रभावशीलता के कारण सर्वाधिक लोकप्रिय है। किसी भी कहानी की जीवंतता और उसकी कालजयी प्रकृति उसके पात्रों की बुनावट पर टिकी होती है। पात्र केवल कथा को आगे बढ़ाने वाले माध्यम नहीं होते बल्कि वे अपने समय, परिवेश और सामाजिक वर्ग के जीवंत प्रतिनिधि होते हैं। एक कुशल कहानीकार अपने पात्रों के माध्यम से समाज के सूक्ष्म अंतर्विरोधों को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है। प्रेमचंद के साहित्य में 'हल्कू' जैसा पात्र भारतीय ग्रामीण समाज की विवशता, संघर्ष और मिटते किसान जीवन का सशक्त प्रतिनिधित्व करता है। वहीं भीष्म साहनी की कालजयी कहानी 'चीफ की दावत' का पात्र 'शंभुनाथ' शहरी मध्यवर्गीय समाज के खोखलेपन, प्रदर्शनप्रियता और रिश्तों के बीच आती यांत्रिकता को उजागर करता है।

बीज शब्द

बौद्धिक मध्यवर्ग, शहरी मध्यवर्गीय समाज, कथा साहित्य, सामाजिक क्षेत्र आदि।

मूल आलेख

इसी विकास-परंपरा में गजानन माधव 'मुक्तिबोध' की कहानियाँ एक नया वैचारिक धरातल तैयार करती हैं। उनके पात्र केवल सामाजिक श्रेणी का प्रतिनिधित्व ही नहीं करते बल्कि वे 'बौद्धिक मध्यवर्ग' के भीतर चल रहे मानसिक द्वंद्व, आत्म-निर्वासन और नैतिक संकट के प्रतीक भी हैं। मुक्तिबोध के पात्र पूंजीवादी दबाव, सत्ता का भय और वैचारिक जड़ता जैसे जटिल कारकों को अभिव्यक्त करते हैं जो आधुनिक मनुष्य के विवेक को भी प्रभावित करते हैं। इस प्रकार कहानी विधा अपने पात्रों के माध्यम से यथार्थ के विभिन्न धरातलों ग्रामीण संवेदना से लेकर बौद्धिक छटपटाहट आदि तक को सफलतापूर्वक समेटती है।

मुक्तिबोध की कहानियों के पात्रों की प्रासंगिकता आज के समय में और भी बढ़ गई है। मुक्तिबोध और अन्य कहानीकारों में मुख्य अंतर यह है कि वह अपने पात्रों के साथ पूरा न्याय करते हैं। मुक्तिबोध अपने निजी विचारों को पात्रों के ऊपर आरोपित नहीं करते हैं बल्कि मुक्तिबोध के पात्र स्वतंत्र रूप में अपने विचारों, सिद्धान्तों का निर्माण खुद करते हैं। 'ब्रह्मराक्षस का शिष्य' मुक्तिबोध की

बहुचर्चित कहानी है। 'ब्रह्मराक्षस का शिष्य' कहानी का केन्द्रीय पात्र है- 'ब्रह्मराक्षस' जो कि अकर्मक बौद्धिक वर्ग का प्रतीक है। यह ब्रह्मराक्षस मुक्तिबोध के समय में भी मौजूद था और कहानी लिखे जाने के 60 वर्ष बाद आज भी हमारे समाज में मौजूद है। 'ब्रह्मराक्षस' पात्र के बहाने मुक्तिबोध ने कुंठित बौद्धिक वर्ग की जड़ मानसिकता पर गहरा व्यंग्य किया है। बौद्धिक की सबसे बड़ी समस्या यह होती है कि उसके पास ज्ञान का तो भण्डार रहता है किन्तु ज्ञान ग्रहण करने के साथ-साथ बौद्धिक के मन में अहं भी घर कर लेता है फलतः वह समाज से कट जाता है। मुक्तिबोध इसी समस्या को अपने पात्र 'ब्रह्मराक्षस' के माध्यम से पाठकों के समक्ष रखते हैं।

ब्रह्मराक्षस रूपी निष्क्रिय बौद्धिक अपने अर्जित ज्ञान के आलोक में इस कदर डूबा है कि वह अपने विचार रूपी भवन के सातवें तल में ही रहना पसन्द करता है। ज्ञान के धरातल से व्यवहारिक स्तर पर आकर बात करना उसे अपमानजनक महसूस होता है। ज्ञान का घमण्ड व्यक्ति को समाज से काट देता है। ज्ञानार्जन के इच्छुक बालक से ब्रह्मराक्षस कहता है- "ब्राह्मण ने कठोर होकर कहा, "तुमने यहां आने का कैसे साहस किया? यहां कैसे आये? "लड़का आंतकित हो गया। मुंह से कोई बात नहीं निकली। ब्राह्मण गरजा, "कैसे आये? क्यों आये? ब्राह्मण कुछ हंसा। उसकी आवाज धीमी हो गयी किन्तु दृढ़ता वही रही।"।" ब्रह्मराक्षस के बहाने मुक्तिबोध बौद्धिक समाज की बहुत बड़ी समस्या को उठा रहे होते हैं। ज्ञान के साथ-साथ विनम्रता एवं सहजता की धारा भी साथ-साथ बहती है। फिर बौद्धिक के साथ आखिरकार ऐसा क्या हो जाता है कि वह दम्भी बन बैठता है। वह ज्ञान के अहं में समाज से बिलगाव कर बैठता है और अपनी ही दुनिया में खोया रहता है। ब्रह्मराक्षस की ध्यानस्थ मुद्रा से उसकी गम्भीरता का पता चलता है- "एक ओर योजना विस्तार दृश्य देखती, खिड़की के पास देव-पूजा में संलग्न-मन मुंदी आंखेवाले ऋषि-मनीषि कश्मीर की कीमती शाल ओढ़े ध्यानस्थ बैठे।"²

मनुष्य की मुक्ति तभी संभव है जब वह अपने अर्जित ज्ञान को समाजोपयोगी बनाये और स्वयं को भी वह समाज का एक अंग समझे। अन्यथा ब्रह्मराक्षस की भांति वह भी अशान्त एवं बेचैन रहा करेगा। ऐसा नहीं है कि बौद्धिक को संसार से कुछ लेना देना नहीं है और वह ज्ञान को सिर्फ खुद तक ही सीमित रखना चाहता है। बौद्धिक वर्ग की अकर्मण्यता और अहं उसके आड़े आ जाती है। बारह वर्ष के

अनन्तर शिक्षा सम्पूर्ण हो जाने पर ब्रह्मराक्षस अपने शिष्य से कहता है- "मैं प्रवृत्तिवादी हूँ, साधु नहीं"³ अर्थात् ब्रह्मराक्षस रूपी बौद्धिक समाज से कटकर नहीं रहना चाहता है। समाज में उसे सम्मान मिले लेकिन इसके लिए जरूरी इच्छाशक्ति का उसके पास अभाव है।

अगर ज्ञान सिर्फ व्यक्ति तक ही सीमित रहे, समाज में उसका प्रसार न हो तो ऐसा ज्ञान निरर्थक है। अकर्मक बौद्धिक को मानसिक शान्ति तभी मिल सकती है। जब वह अपने ज्ञान का पिटारा सभी के लिए खोल दे। ब्रह्मराक्षस की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह अन्य गुरुजनों (बौद्धिकों) जैसा नहीं है जिसे ईश्वरतुल्य दर्जा दिया जाता है बल्कि वह एक सामान्य मनुष्य है जो यह मानता है कि मनुष्य को आत्मिक सुकून तभी मिल सकता है जब वह ज्ञान के स्वयं मात्र तक सीमित न रखकर उसे जन-जन तक पहुंचाए।

ब्रह्मराक्षस अपने शिष्य से कहता है- "मैंने अज्ञान से तुम्हारी मुक्ति की। तुमने मेरा ज्ञान प्राप्त कर मेरी आत्मा को मुक्ति दिला दी। जब तक मेरा दिया हुआ तुम किसी और को न दोगे तब तक तुम्हारी मुक्ति नहीं।"⁴

ब्रह्मराक्षस की सबसे बड़ी समस्या मुक्ति की है और यह मुक्ति तभी संभव है जब बौद्धिक अपने अहंकार एवं अकर्मण्यता को त्यागकर समाज से अपना सम्बन्ध बनाये रखे।

क्लाड ईथरली : क्लाड ईथरली मुक्तिबोध की सबसे प्रसिद्ध कहानी है। कहानी का प्रमुख पात्र क्लाड ईथरली संवेदनशील बौद्धिक का प्रतीक है जिसकी अन्तरात्मा अन्याय का खुलकर विरोध न कर पाने के कारण उसे हमेशा कचोटती रहती है। आज जब सत्ता वर्ग निरंकुश होता जा रहा है, ऐसे समय में क्लाड ईथरली सरीखे बौद्धिक अपने सबसे मुश्किल समय से गुजर रहा है। ऐसा नहीं है कि सत्ता पर काबिज पुराने लोग अपने खिलाफ बोलने वालों के विरुद्ध दमनात्मक हल नहीं अपनाते थे। प्राचीन समय में शासन कर रही तत्कालीन सत्ता संवेदनशील बुद्धिजीवियों को या तो सूली पर चढ़ा देती थी या देश निकाला कर देती थी लेकिन आज का शासन वर्ग और भी चालाक हो गया है। अब वह बौद्धिक को फांसी पर नहीं चढ़ाता है क्योंकि इससे आम जनता के विद्रोह करने का खतरा बना रहता है। आज की सत्ता सरकार की गलत नीतियों का विरोध कर रहे लोगों को उपेक्षित, तिरस्कृत कर देती है जिसकी वजह से आम जनता के ऊपर बौद्धिक वर्ग का प्रभाव नगण्य हो जाता है। स्थिति नियंत्रण से बाहर होता देख सरकार क्लाड ईथरली रूपी बौद्धिक जन को पागल घोषित कर जेल में ठूस देती है।

संवेदनशील बौद्धिक वर्ग देशकाल की सीमा में बांधकर मानवता की बात नहीं करता है अपितु उसके मन में विश्व बन्धुत्व की भावना

विद्यमान रहती है। यह कारण है कि ऐसे वर्ग पर देशद्रोही होने का ठप्पा आसानी से लगा दिया जाता है। बौद्धिक की इसी मनःस्थिति के सन्दर्भ में क्लाड ईथरली कहानी का पात्र सी.आई.डी. कहता है- "उसने कहा, "क्यों नहीं। देश के प्रति ईमानदारी रखने वाले लोगों के मन में, व्यापक पापाचारों के प्रति कोई व्यक्तिगत भावना नहीं रहती क्या?"⁵

क्लाड ईथरली के मन में हमेशा यह भाव रहता है कि उसने हिरोशिमा और नागासाकी पर अणु बम गिराकर जघन्य अपराध किया है और उसे इसकी सजा मिलनी चाहिए लेकिन अमेरिकी सरकार क्लाड ईथरली को महान देशभक्त मानती थी। अपराधबोध की भावना से ग्रसित क्लाड ईथरली सजा पाने के लिए अनेक अपराध करता है लेकिन अमेरिका सरकार उसे छोड़ देती है और अंत में उसे पागलखाने में डाल देती है। पूंजीवादी व्यवस्था में पागल कौन है। को पात्र सी.आई.डी. परिभाषित करता है-

"लेकिन जो आदमी आत्मा की आवाज जरूरत से ज्यादा सुन करके हमेशा बैचैन रहा करता है और उस बेचैनी में भीतर के हुक्म का पालन करता है, वह निहायत पागल है। पुराने जमाने में संत हो सकता था। आजकल उसे पागलखाने में डाल दिया जाता है।"⁶

जो व्यक्ति शासन वर्ग की सही और गलत नीतियों में विभेद नहीं कर सकता है उसके ऊपर देश प्रेम की चाशनी आसानी से चढ़ाई जा सकती है। लेकिन बौद्धिक को देश प्रेम का हवाला देकर मानवता के खिलाफ नहीं खड़ा किया जा सकता है। यही कारण है कि सत्ता बुद्धिजीवियों के विरुद्ध दुष्प्रचार करती रहती है। ऐसा नहीं है कि बौद्धिक वर्ग सरकार की गलत नीतियों के खिलाफ खड़ा ही रहता है। सत्य को जानते हुए भी वह अपनी आत्मा की आवाज को दबा देता है। ऐसा करने के पीछे बौद्धिक की सामाजिक, आर्थिक मजबूरियां हो सकती हैं और व्यक्तिगत स्वार्थ भी। मुक्तिबोध लिखते हैं-

"हमारे अपने मन हृदय मस्तिष्क में ऐसा ही एक पागलखाना है जहां हम उन उच्च, पवित्र और विद्रोही विचारों और भावों को फेंक देते हैं।"⁷

मौजूदा समय में क्लाड ईथरली सरीखे संवेदनशील व्यक्ति के पास दो ही विकल्प हैं पहला यह कि वह स्वयं भी शोषित वर्ग का हिस्सा बन जाए, दूसरा वह समाज में व्यापक पापाचारों को लेकर अपराध बोध की भावना से ग्रस्त रहे। क्लाड ईथरली दूसरी प्रवृत्ति का बौद्धिक है। सी.आई.डी. कहता है- "यह कि उस व्यापक अन्याय का अनुभव करने वाले किन्तु उसका विरोध न करने वाले लोगों के अंतःकरण में व्यक्तिगत पाप-भावना रहती ही है, रहनी ही चाहिए।"⁸

ऐसे अनेक क्लाड ईथरली देश में मिल जायेंगे जो चाहकर भी सरकार की गलत नीतियों का विरोध न कर पाने के कारण आध्यात्मिक अशान्ति और आध्यात्मिक उद्ध्विगता के शिकार हैं।

प्रेमी/सांप्रदायिक शक्तियों से गठजोड़ करने पर बौद्धिक वर्ग की क्या नियति होती है, पक्षी और दीमक कहानी में मुक्तिबोध ने दिखाया है। कहानी का केन्द्रीय पात्र है— प्रेमी जो मध्यवर्गीय बौद्धिक वर्ग का प्रतीक है। मुक्तिबोध आने वाले समय में साम्प्रदायिक ताकतों के उभार के कारण निर्जीव पड़े बौद्धिक वर्ग की अक्षमता को देख रहे होते हैं। यह जानकर आश्चर्य होता है कि भगवा खट्खट कुरते वाले के कारण अपंग हो चुके बौद्धिक वर्ग की लाचार स्थिति का वर्णन मुक्तिबोध आज से 60 वर्ष पूर्व ही कर देते हैं।

समाज को उचित दिशा दिखाने का काम मध्यवर्गीय बौद्धिक ही करता है लेकिन वह परिस्थितिवश सांप्रदायिक ताकतों के आगे बेबस हो जाता है। आर्थिक एवं सामाजिक मजबूरियों के चलते उसे सत्ता वर्ग की हां में हां मिलाना पड़ता है, भले ही इस बात के लिए उसकी आत्मा विद्रोह करे। ऐसी विषम स्थिति में बौद्धिक व्यक्तित्वहीनता का शिकार हो जाता है। आत्मा की आवाज को दबाकर चाहे हुए भी न बोल पाने के कारण बुद्धिजीवी अपने आप को तुच्छ, हीन समझने लगता है। भगवा खट्खट कुरते वाले की कार के शीशे में अपना चेहरा देखकर प्रेमी को अपने वास्तविक रूप का आभास होता है— और पाता हूँ कि मोटर के उस काले चमकदार आइने में, मेरे गाल, टुड्डी, नाक, कान सब चौड़े हो गए हैं, एकदम चौड़े। लम्बाई लगभग नदारद।"⁹

सत्य को जानबूझकर अनसुना कर देने पर सत्य असत्य नहीं हो जाता है बल्कि उसकी प्रामाणिकता और भी मजबूत होती जाती है। हम मुश्किल से बचने के लिए सत्य को अवचेतन मन में डाल देते हैं लेकिन हमारे मन में आत्मग्लानि का भाव बना रहता है। ऐसा नहीं है कि संवेदनशील बौद्धिक भ्रष्टाचार के खिलाफ खड़ा नहीं होता है लेकिन सत्ता वर्ग के द्वारा उसे सामाजिक रूप से अपंग बना दिया जाता है। अपनी असहायता का बोध बौद्धिक को मानसिक रूप से अर्द्धविक्षिप्त बना देता है। समाज का जागरूक बौद्धिक हताश एवं दुःखी हैं क्योंकि सत्ताधारी वर्ग ने समाज के अच्छे लोगों को क्षत-विक्षत कर रखा है। साम्प्रदायिक शक्तियों ने बौद्धिक वर्ग के समूह एवं उनकी सोच को छिन्न-भिन्न कर दिया है। क्योंकि मेरा यह अच्छाई का पेड़, छाया प्रेमी अपनी सहायता बोध के कारण निराश होकर स्वयं से कहता है— "क्योंकि... प्रदान नहीं कर सकता, आश्रय प्रदान नहीं कर सकता, क्योंकि वह जगह-जगह काटा गया है।"¹⁰

सत्ता इस बात को भली-भांति समझती है कि अगर उसे जनता पर शासन करना है तो उसे मध्यवर्गीय बौद्धिक समाज की आवाज को चुप रखना होगा। संवेदनशील समाज को अपने पक्ष में बनाये रखने के लिए सत्ता तरह-तरह के हथकंडे अपनाती है। नौकरी का प्रलोभन देकर, पुरस्कृत करके, भ्रष्टाचार का सहारा लेकर शोषित वर्ग बौद्धिक समाज को निष्क्रिय एवं अपंग बना देता है। मध्यवर्गीय

समाज के संघर्ष रूपी 'पंख' को सत्ता वर्ग 'दीमक' रूपी विलासितापूर्ण जीवन देकर हासिल कर लेता है और जब तक बौद्धिक इस नकली चकाचौंध से बाहर आने की कोशिश करता है, तब तक बहुत देर हो चुकी होती है। बौद्धिक वर्ग का प्रतीक 'पक्षी' सत्ता के प्रतीक 'गाड़ीवान' से कहता है— "ये मेरी दीमकें ले लो, और मेरे पंख मुझे वापस कर दो, पक्षी ने जबाब दिया। गाड़ीवाला ठठाकर हंस पड़ा। उसने कहा "बेवकूफ में दीमक के बदले पंख लेता हूँ, पंख के बदले दीमक नहीं।"¹¹

प्रेमी के बहाने मुक्तिबोध बौद्धिक वर्ग की भी खबर लेते हैं जो सिर्फ अपने लेखों और वक्तव्यों में सामाजिक एकता को तोड़ने वाली शक्तियों की आलोचना करके समाज के प्रति अपने कर्तव्य को पूरा समझते हैं। भ्रष्टाचार से मुक्ति एवं सांप्रदायिक सद्भावना को बनाये रखने के लिए बौद्धिक वर्ग को अपने आरामदायक कमरों से निकलकर चिलचिलाती धूप (विपरीत परिस्थितियों) में फांसीवादी ताकतों के खिलाफ सड़कों पर उतरना होगा। जब परिस्थितियाँ विषम हों ऐसे में बुद्धिजीवी वर्ग का परेशान होना स्वाभाविक है लेकिन इन कठिन परिस्थितियों में प्रेमी (बौद्धिक वर्ग) को प्रेमिका (जनता) से उम्मीद लगी रहती है कि वह अन्याय के विरुद्ध हर कदम पर मेरे साथ रहेगी।

मुक्तिबोध की कहानियों के पात्र मध्यवर्गीय बौद्धिक समाज के विभिन्न पक्षों का प्रतिनिधित्व करते हैं। मुक्तिबोध के पात्रों की विशेषता यह है कि वे समय और देशकाल की सीमा से परे जाकर अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हैं। एक कहानीकार के रूप में यह लेखक की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. मुक्तिबोध रचनावली (तृतीय खंड), 117
2. मुक्तिबोध रचनावली (तृतीय खंड), 117
3. मुक्तिबोध रचनावली (तृतीय खंड), 119-120
4. मुक्तिबोध रचनावली (तृतीय खंड), 120
5. मुक्तिबोध रचनावली (तृतीय खंड), 160-161
6. मुक्तिबोध रचनावली (तृतीय खंड), 155
7. मुक्तिबोध रचनावली (तृतीय खंड), 160
8. मुक्तिबोध रचनावली (तृतीय खंड), 161
9. मुक्तिबोध रचनावली (तृतीय खंड), 145
10. मुक्तिबोध रचनावली (तृतीय खंड), 147
11. मुक्तिबोध रचनावली (तृतीय खंड), 150

—डॉ. अरविंद तिवारी

(अतिथि प्रवक्ता)

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

नारी का आधुनिक रूप

सारांश

जब भी एक चिंतन की बात करते हैं तो स्त्री चिंतन एक ऐसा विषय है जो सदा प्रश्नों के घेरे में रहता है। वर्तमान समय में स्त्रियों से लगातार प्रश्न किया जा रहे हैं; पुरुषों पर हो रहे अत्याचार के लिए, एक तरफ उन्हें कटघरों में खड़ा किया जा रहा है तो दूसरी भद्र समाज से गुहार लगाई जा रही है कि वो पुरुष बचाव आयोग लाए और नाना प्रकार के प्रयोजन किए जाएं। जब समाज में इतना कुछ चल रहा है तो ऐसे समय में समाज का दर्पण कहे जाने वाले साहित्य की जड़ों में जब इस समस्या को झांक कर देखते हैं तो कैसा प्रतिबिंब प्रतिबिम्बित होता है उसी को उकेरना का प्रयास इस पेपर में किया गया है।

मूल शब्द

स्त्री, स्त्री चिंतन, स्त्री विमर्श, अत्याचार

अबला जीवन हाथ तुम्हारी यही कहानी।

आंचल में है दूध और आंखों में पानी ॥

मैथिलीशरण गुप्त उपर्युक्त पंक्ति जिस समय रच रहे थे वह समय समाज महिलाओं के लिए अत्यंत दयनीय था एक सामान्य रूप से जीवन यापन करने के लिए मौलिक अधिकार जो संविधान में तो रचे गए थे पर स्त्रियों के लिए धरातल में नदारद थे; और इन अधिकारों की अनुपस्थिति सैकड़ों वर्षों से थी। प्राचीन काल में स्त्रियां कैसी थी वैदिक काल में इतनी सशक्त पर उसके आगामी कालों में काल दर काल इतनी आसक्त क्यों हो गई यह अत्यंत विस्तृत चर्चा का विषय है जिस पर काफी चर्चा भी की गई है। प्रश्न यह है कि क्या वर्तमान समय में भी स्त्री अबला है या उसे पुरुष वर्ग के समान संबल मिल चुका है और ये पुरुषों पर अत्याचार करने में सशक्त है?

जिस समाज में स्त्री के विकसित होने की बात खुलकर होने लगी हो तो मान लेना चाहिए कि वह एक विकासशील देश का समाज है। कुछ हाल ऐसा ही भारत देश का भी है लगभग 20% भारतवासी यह मान चुके हैं कि स्त्री शिक्षा स्त्री सशक्तिकरण भी हमें सामाजिक पायदान पर सशक्त बनाने की सीढ़ी का काम करेगा; वही आज भी बाकी लोग यही मानते हैं कि स्त्री का जन्म यदि हुआ है तो घर की

चार दीवारों को संवारने के लिए ही हुआ है व इसे लांघने के लिए उसे आज भी अनुमति की आवश्यकता है।

महान आलोचक **एरिका जोंग** लिखती है- "स्त्रियों का इतिहास एक मात्र ऐसा शोषित समुदाय है जो अशक्त के रूप में आदर्श बना दी गई है। उसे हजारों वर्षों से दर्दनाक यात्रा करनी पड़ी 19 वीं शदी से ही उसके भीतरी घुटन को शब्द मिलने लगे।"

जब वर्तमान सशक्त स्त्री की बात करते हैं तो **रोहिणी अग्रवाल** को पढ़ना लाजमी हो जाता है हिंदवी पर पड़ा उनका एक साक्षात्कार *क्यों हताश कर रही है स्त्री आलोचक?* में जब वह उस स्त्री की बात करती हैं जिसने खुद पर अधिकार पा लिया है वह जब ब्लाईंड डेट पर जा रही है तो मिर्ची पाउडर साथ लेकर जा रही है अर्थात् अपने जीवन पर अधिकार तो पा ही लिया है साथ आने वाली मुसीबत लड़ने को भी तत्पर है। पर सवाल यह है कि इस ब्लाईंड डेट पर जा रही, अपनी सुरक्षा स्वयं कर रही स्त्री का प्रतिशत क्या है? अगर काल्पनिक चशमे हटाकर देखें तो ना के बराबर। आज भी सुरक्षा के नाम पर अधिकांश स्त्री यही मुनासिब समझती है कि समाज को देखते हुए जैसे ही अंधेरा हो उससे पहले वह अपने घर की दहलीज पर पहुंच जाएं क्योंकि लड़ने के लिए उनके पास कोई एक या दो व्यक्ति नहीं बल्कि अपनी बड़ी-बड़ी आंखें फाड़े आधे से ज्यादा अर्धनग्न समाज हैं; किस-किस से लड़ेगी वो।

जब हम **मन्नू भंडारी** का स्त्री सशक्तिकरण सम्मत दृष्टिकोण देखते हैं, तो वह अपने नाटकों उपन्यासों में स्त्री के उस रूप को प्रदर्शित करने का प्रयास करती है जिसकी स्वयं की एक आवाज है जो मुक्ति की चाह रखती है। चाहे वह आपका बंटी की सकून हो जो अजय से तालमेल न बिठा पाने पर उस रिश्ते में बंध कर नहीं रहती। पहले अपना स्वतंत्र जीवन शुरू करती है अपने पुत्र के साथ फिर बहुत सी सकुचाहटों के बाद डॉक्टर जोशी के साथ विवाह भी करती है और जो ये सकुचाहटे हैं ये एक औरत होने के नाते सकुन ही महसूस करती है अजय को तो समय भी नहीं लगता दूसरा विवाह करने में पर इन तमाम ऊहापोह के बाद भी उपन्यास के अंत में ना चाहते हुए भी बंटी के साथ अन्याय हो ही जाता है। मन्नू भंडारी का स्त्री चिंतन मुक्ति की मांग का है, उनकी नायिका जागरूक है पर वह

अपने परिवार के निर्माण के लिए एक नायक से बढ़कर खुद का होम करना भी जानती है, जैसे हम इनकी क्षय कहानी की नायिका कुंती को देखते हैं जो अपने परिवार के लिए अपने व्यक्तिगत जीवन को दाव पर लगा देती है जहां वह कई बार उकता भी जाती है पर वह अपना सर्वस्व देकर अपने परिवार को खड़ा किए हुए है।

वही जब हम **नासिरा शर्मा** के साहित्य पर दृष्टि डालते हैं तो इनका स्त्री चिंतन स्पष्ट वादी है। आज के समय में एक अंग्रेजी की पंक्ति अत्यंत चर्चित है *"we are the woman of man's world"* इनके साहित्य की महिला पात्र इसे साबित भी कर रही होती है जहां शात्मली उपन्यास में शात्मली जो की एक सरकारी अफसर एक सशक्त पात्र है पर पति के बार-बार आधुनिक कही जाने पर उसे इस आधुनिक शब्द से घृणा हो जाती है पर वह ये सब सुनकर टूटती नहीं है पारिवारिक हर चुनौतियों से जुझती हुई एक सशक्त पात्र के रूप में अंत तक रहती है। ठीकरे की मंगनी उपन्यास में भी नायिका अंत तक समाज व परंपरा से टकराकर स्वयं के लिए स्वतंत्रता के द्वार खोलती है जो उसे बिना संघर्ष किया मिलना चाहिए।

प्रभा खेतान की स्त्री चेतना उनकी *'उपनिवेश में स्त्री'* में स्पष्ट रूप से दृश्यमान होती है— "इस पुस्तक में मैंने दार्शनिक विचारधाराओं की चर्चा की है जिनका मुझ पर प्रभाव पड़ा। इन विचारधाराओं को पढ़ाते हुए मुझे यही लगा कि पुरुष होने की प्रक्रिया और स्त्री होने की प्रक्रिया में मौलिक अंतर है। पुरुष को पूर्व अनुमानित रूप से व्यक्ति मान लिया जाता है पर स्त्री को यह स्वीकृति नहीं मिलती। देकार्त ने जब ऐलान किया था कि मैं सोचता हूं इसलिए मेरा अस्तित्व है तो देकार्त का मैं पहले तो उनका मैं रहा और फिर उसमें अन्य पुरुषों का मैं समता गया। देकार्त की चिंतनशीलता में मैं का दायरा फैलता चला गया। पर क्या देकार्त के इस बृहदकार में मैं स्त्री शामिल थी? आखिर उसमें स्त्री क्यों शामिल नहीं होनी चाहिए थी? आखिर आदमी / इंसान / व्यक्ति में स्त्री पुरुष दोनों ही निहित है। अतः देकार्त के अनुसार स्त्री भी कह सकती है कि मैं सोचती हूं इसलिए मेरा अस्तित्व है।"

साठोत्तरी महिला साहित्यकार **मेहरूननिशा परवेज़** के साहित्य में जब स्त्री चेतना की तलाश करते हैं तो उसमें स्पष्ट रूप से रुढ़ियों से लड़कर उनका विद्रोह करने का झंकार आ रहा है। इन्होंने मुख्यतः मुस्लिम परिवेश की स्त्रियों के दुख दर्द की पीड़ा को उकेरा है। इनका अत्यंत प्रमुख उपन्यास कोरजा पर जब दृष्टि डालते हैं तो वह इस तरह के स्त्री पात्रों से भरा पड़ा है जिन पर समाज ने जुल्म की हर सीमा तोड़ दी है पर वह फिर भी अपनों के लिए उससे जूझ रही है साजो का चरित्र इसका प्रमाण है, पति उस्मान की मृत्यु के बाद अपने तीन बच्चों का पेट पालने व अपने सर की छत छिन जाने के बाद उसकी मजबूरियाँ उसे जुम्न में बिस्तर पर ला देती है पर इन

सब परिस्थितियों का सामना करके अपने तीनों बच्चों की परवरिश करती है।

उषा प्रियंवदा की स्त्री को देखें तो वह आधुनिक है वह समाज के दुराग्रहों से लड़ती है जूझती है पर टूटती नहीं है वह शिक्षित है। इनके पचपन खंबे लाल दीवारों की नायिका सुषमा का हाल अगर देखें तो वह सुशिक्षित नौकरी पेशे वाली स्त्री है जो अपने परिवार के प्रति अपने दायित्वों को पूरा करते-करते कब वृद्ध हो जाती है उसे पता ही नहीं चलता। नील जो उसके जीवन में एक सुकून की तरह है उसे भी वह अपने जीवन से यह कहकर दूर कर देती है कि मेरी बहुत जिम्मेदारियाँ हैं। तुमसे तो कुछ छिपा नहीं है। इनका रुकेगी नहीं राधिका उपन्यास की राधिका बिल्कुल अलग तरह की स्त्री पात्र है जो की अत्यधिक आधुनिक है। अपने निज को बरकरार रखने के लिए कसाव लगने वाले बंदों को तोड़ने में उसे झिझक नहीं होती। राधिका एक संपन्न परिवार की पुत्री है परंतु माता की मृत्यु के पश्चात पिता का स्वयं से 20 वर्ष छोटी लड़की से विवाह करने से उसका मन अत्यंत आहत हो जाता है। अस्थाई रूप से वह अमेरिका में जाकर कार्य करती है वह पुनः वापस आती है तो खुद को यहां की सोच में पूरा ढाल पाने में असमर्थ हो जाती है।

उपर्युक्त पंक्तियों में हमने कुछ स्त्री चिंतकों के भाव जाने की वह कैसा सोचती हैं इस चिंतन के बारे में उनके उपन्यासों कहानियों में उन्होंने कैसे स्त्री पात्रों को उकेरा है वह स्त्री के लिए क्या मांग रखती हैं क्या वह ऐसा सोचती हैं कि पुरुषों पर अत्याचार करके ही स्त्रियों को उनके बराबरी का हक मिल सकता है अथवा स्त्री चिंतन कोई बदले की भावना का चिंतन है तो इसका स्पष्ट उत्तर है कि नहीं स्त्री चिंतन तो बराबरी के हक की मांग है, यह किसी और का अधिकार नहीं छीनना चाहती यह तो खुद अपने अधिकारों के लिए आज भी कुछ जगहों पर लड़ रही हैं। इन्हें किसी के अधिकार छीनकर क्या मिलेगा और यदि कुछ स्त्रियाँ ऐसी हैं जो पुरुषों के साथ अन्याय वा अत्याचार कर रही हैं तो वह अपराधी हैं पीड़िता नहीं ऐसे में सब स्त्रियों को कटघरे में खड़ा कर देना निंदनीय है।

वर्तमान समय में जब हमारा देश एक विकसित देश बनने की दौड़ में है हम चांद तक पहुंचने वाले गिने-चुने देशों में आ चुके हैं, ऐसे में एक ऐसा वर्ग भी है जो आज भी खुद को विकसित करने के लिए अपने ही देश में अपनों से संघर्ष कर रहा है। वर्तमान समाज में स्त्री के विकास उसकी स्वयं की पहचान के लिए जहां समाज का कुछ पुरुष वर्ग यह चाहता भी है कि वह आगे बढ़े अपनी पहचान अपना मुकाम बनाएं वही एक बार के लिए कुछ ऐसा भी कहते हैं कि हमें पसंद है अपने हक की लड़ाई लड़ती हुई स्त्रियाँ पर तब

तक कि जब तक वह अपनी इस लड़ाई को जाने से पहले घर का चौका बर्तन करके जाएं।

जब भी हम स्त्री विमर्श की बात करते हैं तो हमें सदैव स्त्री चेतना के उसे कंटक पूर्ण मार्ग से होकर गुजरना होगा जो विमर्श रूपी मंजिल की पगडंडी बना हुआ है। स्त्री है जगत जननी वह सशक्त है पर इन सबसे इतर वह एक इंसान भी है ऐसी इंसान जिसका हृदय कोमलकांत ममतामयी भावों से भरा हुआ है। अतः जब-जब उन पर उनके रचित साहित्य पर यह आरोप लगाते हैं कि यह साहित्य कला प्रधान न होकर भाव प्रधान है, यह भाव प्रधान होने की टिप्पणी को एक बार को तो हम स्वीकार कर भी ले परंतु कला पक्ष की अनुपस्थिति मानना सदैव असहनीय रहेगा।

स्त्री चिंतन अथवा स्त्री विमर्श को समझने के लिए यह समझना अत्यंत आवश्यक है कि इस विमर्श की मांग अन्य वर्ग को दबाना या लिंग के आधार पर भेदभाव करना ना होकर सिर्फ अपने बराबरी के हक की मांग करना वह अपने स्वत्व के अधिकार, रुढ़ीगत परंपराओं से अपने आप को मुक्त करने की मांग है। तथा उर्पयुक्त स्त्री चिंतकों के विचारों को समझने के बाद यह समझना अत्यंत आवश्यक है कि कोई भी स्त्री जो समझदार है वह स्त्री की हक के लिए उसकी सिर्फ मुक्ति व बराबरी की हक की मांग करती है तो साथ साथ वर्तमान में स्त्री द्वारा किए जा रहे कुछ जगहों पर अत्याचारों की घोर निंदा भी करती है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. गुप्त मैथिलीशरण, मैथिली शरण गुप्त साहित्य, यशोधरा, साहित्य सदन चिरगांव, झांसी, जनवरी 01, 2008
2. राजे सुमन, हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, वाणी प्रकाशन ग्रुप, दिल्ली 2024
3. राजे सुमन, इतिहास में स्त्री, वाणी प्रकाशन ग्रुप, दिल्ली, 2024
4. देशपांडे अंजलि, क्यों हताश कर रही है स्त्री आलोचक? हिंदवी बेला, 27 नवम्बर 2024
5. पासी धर्मेन्द्र कुमार, मन्नू भंडारी की कहानियों में नारी विमर्श, international journal of Hindi research, 15-06-2021
6. कुमार राहुल, नासिर शर्मा और स्त्री विमर्श, international journal of applied research, 07-03-2021
7. खेतान प्रभा, उपनिवेश में स्त्री (मुक्ति कामना की दश वार्ताएं) pustak org. प्राक्कथन
8. परवेज मेहरुन्निसा, कोरजा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली पृष्ठ संख्या 72,74 ,78,108
9. प्रियंवदा उषा, मेरी कहानियां, वाणी प्रकाशन दिल्ली, 2000
10. प्रियंवदा उषा, पचपन खंबे लाल दीवार, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1961

- शुभ्रा त्रिवेदी

हिंदी विषय शोधार्थी,
बुंदेलखंड विश्वविद्यालय

मनोज दास के साहित्य में बाल विज्ञान

मनोज दास ओड़िया और अंग्रेजी साहित्य के एक ऐसे विलक्षण साधक थे, जिन्होंने भारतीय कथा-परंपरा को आधुनिक रूप देकर विश्व पटल पर स्थापित किया। उनका लेखन केवल वयस्क पाठकों तक सीमित नहीं था, बल्कि उन्होंने बाल मन की गहराइयों को छूते हुए बाल और किशोर साहित्य के क्षेत्र में भी एक अमूल्य और अविस्मरणीय धरोहर छोड़ी है। उनका मानना था कि बच्चों के लिए लिखना किसी भी अन्य विधा से अधिक कठिन है, क्योंकि इसके लिए लेखक को अपनी प्रौढ़ता को पीछे छोड़कर बच्चे की निश्छल और मासूम दृष्टि को अपनाना पड़ता है।

मनोज दास जी के बाल साहित्य का सबसे सुंदर पक्ष उनका पारंपरिक भारतीय लोककथाओं, पंचतंत्र, जातक कथाओं और उपनिषदों के रहस्यों को बेहद सरल और सुबोध शैली में ढालना था। उनकी कृतियां जैसे— स्टोरीज़ ऑफ़ लाइट एंड डिलाइट और तुलसीदास बच्चों को न केवल आनंदित करती हैं, बल्कि उनमें नैतिक मूल्यों और मानवीय संवेदनाओं का बीजारोपण भी करती हैं। वे केवल कोरी कल्पना या जादुई कहानियों के पक्षधर नहीं थे, बल्कि उनकी बाल कहानियों में एक गहरा जीवन-दर्शन और सांस्कृतिक चेतना छिपी होती थी, जो बच्चों को अनजाने ही जीवन की बड़ी सीख दे जाती थी। बच्चों की प्रसिद्ध पत्रिका 'चंदामामा' और सांस्कृतिक पत्रिका 'द हेरिटेज' के संपादन के माध्यम से उन्होंने देश भर के करोड़ों बच्चों के मानस को आकार देने और उनके भीतर पढ़ने की संस्कृति विकसित करने में ऐतिहासिक भूमिका निभाई।

अगर उनके समग्र साहित्य का अवलोकन किया जाए, तो मनोज दास जी आधुनिक युग के एक महान कथा-शिल्पी दिखाई देते हैं जिनकी तुलना अक्सर मार्क ट्वेन या विष्णु शर्मा से की जाती है। वे मूल रूप से ओड़िया के लेखक थे, लेकिन अंग्रेजी भाषा पर भी उनका वैसा ही जादुई और असाधारण नियंत्रण था। वे अपनी ओड़िया रचनाओं का अंग्रेजी अनुवाद स्वयं करते थे, जिससे उनकी मूल आत्मा कभी नष्ट नहीं होती थी। उनके जीवन की यात्रा भी बेहद दिलचस्प रही; युवावस्था में मार्क्सवादी विचारधारा और छात्र राजनीति से जुड़े होने के कारण उन्हें जेल की यात्रा भी करनी पड़ी, लेकिन बाद में वे महर्षि अरविंद और माताजी के दर्शन से गहरे प्रभावित हुए। जीवन का उत्तरार्ध उन्होंने पुदुचेरी के श्री अरविंद आश्रम में एक

समर्पित साधक और प्राध्यापक के रूप में व्यतीत किया, जिसका गहरा प्रभाव उनके उपन्यासों, जैसे— अमृत फल और प्रभंजन तथा उनकी अनगिनत कहानियों में आध्यात्मिकता और रहस्यवाद के रूप में दिखाई देता है।

मनोज दास जी की लेखन शैली की सबसे बड़ी विशेषता थी उनका सूक्ष्म व्यंग्य और इंसानी कमजोरियों के प्रति अगाध करुणा। वे समाज के पाखंड और व्यवस्था की कमियों पर तीखा प्रहार तो करते थे, लेकिन उनकी भाषा में कभी कड़वाहट या आक्रोश नहीं होता था, बल्कि एक शालीन और मर्मस्पर्शी मुस्कान होती थी। उनके इसी अद्वितीय योगदान के कारण उन्हें पद्म भूषण, पद्म श्री, सरस्वती सम्मान और साहित्य अकादेमी फेलोशिप जैसे देश के सर्वोच्च नागरिक और साहित्यिक अलंकरणों से सम्मानित किया गया। मनोज दास जी भले ही आज हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन उनका रचा हुआ साहित्य, विशेषकर उनका बाल साहित्य, आने वाली कई पीढ़ियों को जीवन के प्रति संवेदनशील और भीतर से एक बेहतर इंसान बनाने का मार्ग दिखाता रहेगा। मनोज दास का बाल साहित्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं है, बल्कि यह वह रचनात्मक धरातल है जहां एक अबोध शिशु का मानस सामाजिक, नैतिक और संज्ञानात्मक रूप से आकार लेता है। बाल साहित्य की रचना करना प्रौढ़ साहित्य के सृजन से कहीं अधिक जटिल और संवेदनशील कार्य है, क्योंकि इसके लिए लेखक को अपनी परिपक्वता का परित्याग कर पूरी तरह से एक बच्चे के दृष्टिकोण को अपनाना पड़ता है। आधुनिक भारतीय साहित्य के शीर्षस्थ रचनाकारों में से एक, मनोज दास, इस कला के अप्रतिम पारखी थे। ओड़िया और अंग्रेजी साहित्य के मूर्धन्य हस्ताक्षर होने के साथ-साथ, उन्होंने बाल मनोविज्ञान को केंद्र में रखकर व्यापक बाल साहित्य का सृजन किया। उनका मानना था कि बच्चों का मन एक कोरी स्लेट नहीं, बल्कि एक जीवंत और अत्यंत संवेदनशील संवेदक होता है, जो अपने आसपास के वातावरण, मानवीय व्यवहारों और प्राकृतिक तत्वों से निरंतर प्रभावित होता रहता है। यही कारण है कि उनकी कहानियों का ताना-बाना बुनते समय बच्चों की तात्कालिक मानसिक अवस्था और उनकी ग्रहणशीलता का विशेष ध्यान रखा गया है, ताकि साहित्य उनके मानसिक बोझ को बढ़ाए बिना उनके संवेगात्मक विकास का मार्ग प्रशस्त कर सके। उनके बाल साहित्य

में केवल परियों की कहानियां या पशु-पक्षियों के काल्पनिक किस्से नहीं हैं, बल्कि उन किस्सों के भीतर गहरे मनोवैज्ञानिक सत्य, बच्चों के आंतरिक द्वंद्व, उनके भय, कौतुक, जिज्ञासा और आनंद की अनुभूतियां छिपी हुई हैं। यह मनोज दास के बाल साहित्य को आधार बनाकर बाल मनोविज्ञान के विभिन्न आयामों जैसे संज्ञानात्मक विकास, संवेगात्मक अभिव्यक्ति, कल्पनाशीलता, और सामाजिक-नैतिक अनुकूलन का एक विस्तृत और गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

बाल मनोविज्ञान मुख्य रूप से इस बात का अध्ययन करता है कि एक बच्चा अपनी प्रारंभिक अवस्था से लेकर किशोरावस्था तक किस प्रकार सोचता है, महसूस करता है और व्यवहार करता है। प्रसिद्ध स्विस मनोवैज्ञानिक जीन पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत के अनुसार, बच्चे दुनिया को वयस्कों की तरह नहीं देखते, बल्कि उनके सोचने का तरीका गुणात्मक रूप से भिन्न होता है।¹ मनोज दास की कहानियां पियाजे के इस सिद्धांत की व्यावहारिक पुष्टि करती हैं। मनोज दास जी ने अपने बाल साहित्य में तीन प्रमुख मनोवैज्ञानिक तत्वों को आधार बनाया है जिसमें अतीन्द्रिय और जादुई यथार्थवाद, सहानुभूति और तादात्म्य, तथा भय का शमन और सुरक्षा की भावना शामिल हैं। बच्चे तार्किक और अमूर्त विचारों की तुलना में जादुई या काल्पनिक दुनिया के माध्यम से यथार्थ को जल्दी स्वीकार करते हैं और कहानी के पात्रों के साथ स्वयं को जोड़कर देखते हैं। बच्चों के भीतर अज्ञात के प्रति एक स्वाभाविक भय होता है और दास जी की कहानियां उस भय को कौतुक में बदलकर बच्चों को मानसिक सुरक्षा प्रदान करती हैं। लेखक ने यहां यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि बच्चों के लिए किसी भी वस्तु का दार्शनिक या आर्थिक मूल्य नहीं होता, बल्कि उनका पूरा ध्यान उस वस्तु के कौतुक और उससे मिलने वाले तात्कालिक मानसिक संतोष पर केंद्रित रहता है। उन्होंने लोककथाओं, पंचतंत्र और जातक कथाओं के पारंपरिक ढांचे को समकालीन बाल मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं के अनुरूप ढाला है। उनका मानना था कि बच्चों को उपदेश देना उनके मानसिक विकास को अवरुद्ध करना है इसके विपरीत, उन्हें कहानी के प्रवाह में बहने देना और खुद निष्कर्ष निकालने के लिए प्रेरित करना ही सच्ची शिक्षा है।²

शिशु के विकास में जिज्ञासा सबसे पहली और सबसे महत्वपूर्ण संवेगात्मक प्रेरणा है। जीन पियाजे ने बच्चों को छोटे वैज्ञानिक कहा है जो प्रयोगों के माध्यम से ज्ञान का निर्माण करते हैं। मनोज दास की कहानियां बच्चों के इसी कौतुक को तुष्ट करती हैं। उनकी प्रसिद्ध ओडिया बाल कहानी शृंखलाओं और अंग्रेजी पुस्तकों जैसे— Stories of Light and Delight तथा The Magic Tree में जो पात्र हैं, वे हर वस्तु के पीछे छिपे क्यों और कैसे की तलाश करते हैं।

उदाहरण के लिए, जब उनके किसी पात्र को कोई चमत्कारी वस्तु मिलती है, तो वह उसके भौतिक लाभ के बारे में सोचने के बजाय, उसके कार्य करने के तरीके और उसके रहस्य को जानने के लिए उत्सुक रहता है। लेखक ने यहां यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि बच्चों के लिए किसी भी वस्तु का दार्शनिक या आर्थिक मूल्य नहीं होता, बल्कि उनका पूरा ध्यान उस वस्तु के कौतुक और उससे मिलने वाले तात्कालिक मानसिक संतोष पर केंद्रित रहता है। मनोज दास बच्चों के इस संज्ञानात्मक विकास को मूर्त संक्रियात्मक स्तर और अमूर्त नैतिक मन के स्तर पर विभाजित करके देखते हैं। यह विभाजन दर्शाता है कि बच्चा पहले भौतिक संसार की वस्तुओं से सीखता है और धीरे-धीरे अमूर्त नैतिक मूल्यों को आत्मसात करने लगता है।

बच्चों के संवेग अत्यंत तीव्र और क्षणभंगुर होते हैं। वे जितनी जल्दी क्रोधित या भयभीत होते हैं, उतनी ही जल्दी सहज भी हो जाते हैं। मनोवैज्ञानिक एरिक एरिकसन के मनोसामाजिक विकास के सिद्धांत के अनुसार, बचपन की प्रारंभिक अवस्थाओं में विश्वास बनाम अविश्वास और स्वायत्तता बनाम शर्म का द्वंद्व चलता रहता है।³ मनोज दास की कहानियों में बच्चों के इन गुप्त संवेगों का अत्यंत सूक्ष्म चित्रण मिलता है। उनकी कहानियों में सौतेले व्यवहार, अकेलेपन, या सहपाठियों के बीच होने वाली ईर्ष्या को नजरअंदाज नहीं किया गया है, बल्कि उन्हें एक स्वाभाविक मानवीय भावना के रूप में प्रस्तुत किया गया है। जब एक बच्चा कहानी में किसी जटिल समस्या को एक नन्ही गिलहरी की चतुराई से सुलझते हुए देखता है, तो उसके भीतर यह मनोवैज्ञानिक विश्वास जागृत होता है कि आकार में छोटा होने के बावजूद वह भी अपने स्तर पर बड़ी समस्याओं का सामना कर सकता है। बच्चों में अंधेरे, अपरिचित चेहरों या राक्षसों का भय स्वाभाविक होता है। दास जी अपनी कहानियों में राक्षसों या भूतों को डरावने रूप में प्रस्तुत करने के बजाय अक्सर उन्हें थोड़ा मूर्ख, मजाकिया या दयालु दिखा देते हैं। इससे बच्चों का अवचेतन भय समाप्त हो जाता है और वे मानसिक रूप से सुदृढ़ बनते हैं। इसी तरह जब कहानी का कोई नायक किसी घायल पक्षी या असहाय वृद्ध की सहायता करता है, तो पढ़ने वाले बच्चे के भीतर मनोवैज्ञानिक रूप से सामाजिक-हितैषी व्यवहार का विकास होता है।

रूसी मनोवैज्ञानिक लेव वायगोत्स्की का मानना था कि बच्चों की कल्पनाशीलता उनके सामाजिक और संज्ञानात्मक विकास का एक अनिवार्य उपकरण है। खेल और फंतासी के माध्यम से बच्चे उन सामाजिक भूमिकाओं का अभ्यास करते हैं, जिन्हें वे वास्तविक जीवन में अभी जीने के योग्य नहीं हुए हैं।⁴ मनोज दास फंतासी के पारखी हैं। उनके बाल साहित्य में पेड़ बोलते हैं, नदियां बात करती हैं, और गिलहारियां राजा की सलाहकार बनती हैं। यह निर्जीव

वस्तुओं में जीवन देखना, जो कि पियाजे के अनुसार पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था के बच्चों की मुख्य विशेषता है, मनोज दास की कहानियों का मुख्य आधार है। बोलते हुए पशु-पक्षी बच्चों में जंतु जगत के प्रति संवेदनशीलता और क्रूरता का निषेध करते हैं। उड़ने वाले कालीन या जादुई पेड़ बच्चों में अमूर्त चिंतन, रचनात्मकता और समस्या-समाधान की क्षमता विकसित करते हैं। जब एक बच्चा कहानी में किसी जटिल समस्या को एक नन्ही गिलहरी की चतुराई से सुलझते हुए देखता है, तो उसके भीतर यह मनोवैज्ञानिक विश्वास जागृत होता है कि आकार में छोटा होने के बावजूद वह भी अपने स्तर पर बड़ी समस्याओं का सामना कर सकता है। राजा-रानी और परियों के माध्यम से बच्चे सामाजिक व्यवस्था, न्याय और अन्याय के बीच अंतर करने की प्रारंभिक समझ पाते हैं। दास जी की फंतासी कभी भी पलायनवादी नहीं होती। यदि कोई पात्र हवा में उड़ता है, तो वह अंततः धरती पर किसी पीड़ित की मदद करने के लिए ही उतरता है। यहां कल्पनाशीलता यथार्थ से कटती नहीं, बल्कि यथार्थ को अधिक सुंदर और जीने योग्य बनाती है।

उनकी कहानी 'द मिरेकल' में एक छोटे बच्चे के दृष्टिकोण से एक सामान्य घटना को महा-चमत्कार के रूप में देखा गया है। पियाजे के अनुसार, छोटे बच्चे अहंकारवादी होते हैं, जिसका अर्थ यह नहीं है कि वे स्वार्थी होते हैं, बल्कि यह है कि वे पूरी दुनिया को केवल अपने दृष्टिकोण से देखते हैं। वे सोचते हैं कि जो वे महसूस कर रहे हैं, वही पूरी दुनिया महसूस कर रही है। मनोज दास इस कहानी में दिखाते हैं कि कैसे एक बच्चा एक छोटी सी चिड़िया के घोंसले को बचाने के लिए पूरे घर की व्यवस्था को बदलने की जिद करता है। वयस्कों के लिए वह घोंसला और चिड़िया महत्वहीन हो सकते हैं, लेकिन बच्चे के लिए वह ब्रह्मांड की सबसे बड़ी घटना है। लेखक ने इस बारीक मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि के माध्यम से वयस्कों को यह चेतावनी दी है कि वे बच्चों की भावनाओं को तुच्छ समझकर खारिज न करें, क्योंकि बच्चों की दुनिया उनके अपने संवेगात्मक पैमानों से चलती है। लेखक ने यहां वयस्कों की संवेदनहीनता और बच्चों की संवेगात्मक शुद्धता के बीच के मनोवैज्ञानिक अंतर को बहुत खूबसूरती से उभारा है।

उनकी एक और प्रसिद्ध कहानी 'द मिस्ट्री ऑफ द मिसिंग कैप' वयस्कों के लिए भी उतनी ही प्रासंगिक है, लेकिन इसका एक गहरा बाल मनोवैज्ञानिक पहलू है। कहानी में एक प्रतिष्ठित नेता की टोपी गायब हो जाती है, जिससे पूरे गांव के राजनीतिक और सामाजिक ताने-बाने में हड़कंप मच जाता है। अंत में पता चलता है कि टोपी को एक बंदर उठा ले गया था। बच्चों के संदर्भ में, यह कहानी उनके भीतर विसंगति और हास्य की समझ विकसित करती

है। बाल मनोवैज्ञानिकों के अनुसार, हास्य बच्चों को तनाव से मुक्ति दिलाने और सामाजिक विसंगतियों को समझने में मदद करता है।¹⁶ बच्चे इस कहानी को पढ़कर यह सीखते हैं कि वयस्क जिन चीजों को बहुत गंभीर और प्रतिष्ठा का प्रश्न मानते हैं, वे प्रकृति और अबोध जीवों के सामने कितनी हास्यास्पद हो सकती हैं। यह कहानी बच्चों को सामाजिक आडंबरों के प्रति सचेत करती है और उनके भीतर एक स्वस्थ आलोचनात्मक दृष्टिकोण का बीजारोपण करती है। इसी तरह उन्होंने कई ऐसी कहानियों का सृजन किया जहां पशु पात्र इंसानों से अधिक बुद्धिमान और संवेदनशील नजर आते हैं। "किस्सा एक गधे का" नामक कहानी में एक गधे के प्रति समाज के क्रूर और उपेक्षापूर्ण रवैये को दिखाया गया है और एक बच्चा उस गधे के दर्द को समझता है। यह कहानी अल्बर्ट बांडुरा के सामाजिक अधिगम सिद्धांत को पुष्ट करती है, जिसके अनुसार बच्चे अपने परिवेश में दूसरों के प्रति किए जाने वाले व्यवहार को देखकर सीखते हैं।¹⁷ जब कहानी का बच्चा गधे के प्रति सहानुभूति दिखाता है, तो यह पाठकों में भी पशु-क्रूरता के खिलाफ एक मनोवैज्ञानिक प्रतिरोध खड़ा करता है।

लॉरेंस कोहलबर्ग ने नैतिक विकास के चरणों का प्रतिपादन किया है। कोहलबर्ग के अनुसार, बच्चे शुरुआत में दंड के भय से या पुरस्कार के लालच में नियमों का पालन करते हैं, लेकिन धीरे-धीरे वे अंतरात्मा और सार्वभौमिक नैतिक सिद्धांतों की ओर बढ़ते हैं।¹⁸ मनोज दास का बाल साहित्य बच्चों को भय और लालच के स्तर से ऊपर उठाकर अंतरात्मा की आवाज सुनने के स्तर पर ले जाता है। उनकी कहानियों में नैतिक मूल्य किसी बाहरी अनुशासन की तरह थोपे नहीं जाते, बल्कि वे पात्रों के आत्म-बोध से उपजते हैं। नैतिक विकास के विभिन्न चरण जैसे आज्ञाकारिता और दंड विन्यास, पारस्परिक सुसंगति, और सार्वभौमिक नैतिक सिद्धांत उनकी कहानियों में स्पष्ट दिखते हैं। दास जी इस बात को भली-भांति जानते थे कि उपदेशात्मक कहानियां बच्चों में अरुचि पैदा करती हैं, इसलिए उन्होंने नैतिक द्वंद्वों को कहानी के मोड़ के रूप में इस्तेमाल किया ताकि बच्चा स्वयं सही और गलत का चुनाव कर सके। उनकी कहानियों में सत्य, करुणा, और अहिंसा जैसे अमूर्त शब्दों का प्रयोग किए बिना, इन मूल्यों को क्रियाकलापों के माध्यम से बच्चों के अवचेतन में स्थापित कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए, जब कोई पात्र झूठ बोलता है, तो उसे कोई राजा या माता-पिता दंडित नहीं करते, बल्कि उसके अपने भीतर का अपराधबोध ही उसका सबसे बड़ा दंड बन जाता है, जो बाल मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से चरित्र-निर्माण का सबसे प्रभावी तरीका है।¹⁹

बाल साहित्य की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उसकी भाषा बच्चे के आंतरिक वाक के कितनी करीब है। वायगोत्स्की

के अनुसार, बच्चे भाषा का उपयोग केवल सामाजिक संवाद के लिए नहीं करते, बल्कि अपने व्यवहार को नियंत्रित और निर्देशित करने के लिए भी करते हैं।^१ मनोज दास की लेखन शैली की अनूठी मनोवैज्ञानिक विशेषता यह है कि वे लयबद्धता और दृश्यता का प्रयोग करते हैं जिससे कहानी पढ़ते समय बच्चे के मस्तिष्क में दृश्य तेजी से बदलते हैं। वे ऐसी शब्दावली का उपयोग करते हैं जो बच्चों की पाँचों ज्ञानेंद्रियों को सक्रिय करती है। जब वे किसी घने जंगल या चमकीले झरने का वर्णन करते हैं, तो बच्चा केवल शब्दों को पढ़ता नहीं है, बल्कि मानसिक रूप से उस वातावरण को जीता है, जो उसकी दृश्य-श्रव्य स्मृति को सुदृढ़ करता है। वे जटिल और संयुक्त वाक्यों के बजाय छोटे, प्रभावी और संवादात्मक वाक्यों का प्रयोग करते हैं, जिससे बच्चों का ध्यान भटकता नहीं है। इसके अतिरिक्त दास जी की कहानियाँ चाहे जितने भी द्वंद्व या संकट से गुजरें, उनका अंत हमेशा एक सकारात्मक और आशावादी नोट पर होता है। बाल मनोविज्ञान के अनुसार, निराशाजनक या अत्यंत दुःखद अंत बच्चों के कोमल मन में असुरक्षा और अवसाद की भावना पैदा कर सकते हैं। इसलिए, आशावाद बाल साहित्य की पहली शर्त है, जिसका दास जी ने कड़ाई से पालन किया है।

मनोज दास का बाल साहित्य केवल बच्चों को सुलाने या उनका समय बिताने के लिए लिखी गई कहानियों का संग्रह नहीं है, बल्कि वह बालमन की गहराइयों में उतरने का एक वैज्ञानिक और कलात्मक मार्ग है। उन्होंने बच्चों की मानसिक क्षमताओं, उनकी सीमाओं, उनके संवेगात्मक उतार-चढ़ाव और उनकी असीम कल्पनाशीलता को गहराई से समझा और उसी के अनुरूप अपने साहित्य का ताना-बाना बुना। पियाजे, वायगोत्स्की, एरिक्सन और कोहलबर्ग जैसे महान मनोवैज्ञानिकों ने बाल विकास के जिन सिद्धांतों को अकादमिक शोधों के माध्यम से सिद्ध किया, मनोज दास ने उन सिद्धांतों को अपनी कहानियों के माध्यम से जीवंत कर दिया। उनका रचनात्मक योगदान अकादमिक सिद्धांतों और व्यवहार जगत के बीच एक ऐसा सेतु है जो यह दर्शाता है कि एक महान साहित्यकार किस प्रकार मनोवैज्ञानिक रूप से सजग रहकर भावी पीढ़ी का निर्माण कर सकता है। उनका साहित्य बच्चों को एक ऐसा सुरक्षित स्थान प्रदान करता है जहाँ वे बिना डरे अपनी कल्पना की उड़ान भर सकते हैं,

अपनी गलतियों से सीख सकते हैं और एक संवेदनशील, करुणामय तथा नैतिक रूप से सुदृढ़ नागरिक के रूप में विकसित हो सकते हैं। आज के डिजिटल युग में, जहाँ बच्चों का ध्यान भटकाव की ओर है और वे स्क्रीन-लत के शिकार हो रहे हैं, मनोज दास के बाल साहित्य की मनोवैज्ञानिक प्रासंगिकता और अधिक बढ़ गई है, क्योंकि यह बच्चों को पुनः अपनी जड़ों, प्रकृति और शुद्ध मानवीय संवेदनाओं से जोड़ने का सामर्थ्य रखता है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. पियाजे, जे. द ओरिजिन्स ऑफ इंटेलिजेंस इन चिल्ड्रन, इंटरनेशनल यूनिवर्सिटीज प्रेस, 1952
2. दास, मनोज बाल साहित्य और हमारी चेतना, कटक : विद्यापुरी प्रकाशन, 2015
3. एरिक्सन, ई. एच. चाइल्डहुड एंड सोसाइटी, डब्लू. डब्लू. नॉर्टन एंड कंपनी, 1993
4. वायगोत्स्की, एल. एस. माइंड इन सोसाइटी : द डेवलपमेंट ऑफ हायर साइकोलॉजिकल प्रोसेसेज, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1978
5. मैकगी, पी. ई. ह्यूमर : इट्स ओरिजिन एंड डेवलपमेंट, डब्लू. एच. फ्रीमैन, 1979
6. बांडुरा, ए. सोशल लर्निंग थ्योरी, प्रेंटिस-हॉल, 1977
7. कोहलबर्ग, एल. द साइकोलॉजी ऑफ मोरल डेवलपमेंट : द नेचर एंड वैलिडिटी ऑफ मोरल स्टेजेस, हार्वर्ड एंड रो, 1984
8. सुब्रमण्यम, के. आधुनिक भारतीय बाल साहित्यकार और उनका अवदान, नयी दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट, 2018
9. वायगोत्स्की, एल. एस., माइंड इन सोसाइटी : द डेवलपमेंट ऑफ हायर साइकोलॉजिकल प्रोसेसेज, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1978
10. चॉल, जे. एस., स्टेजेस ऑफ रीडिंग डेवलपमेंट, मैकग्रा-हिल 1983

— डॉ. एनी राय

(सहायक आचार्य)

हिंदी विभाग, रामलाल आनंद महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

बाली की प्रदर्शन कलाएं : परंपरा, धर्म और समाज का जीवंत संगम

इंडोनेशिया के बाली द्वीप की प्रदर्शन कलाएं विश्वभर में अपनी विशिष्टता, सौंदर्य और आध्यात्मिक गहराई के लिए जानी जाती हैं। प्रसिद्ध इंडोनेशियाई विद्वान पद्मश्री आई वयान डिबिया से हुए एक साक्षात्कार के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि बाली की कलाएं केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि वहां के सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन का अभिन्न अंग हैं।

1. समृद्ध और बहुआयामी कला परंपरा

बाली की प्रदर्शन कलाएं अत्यंत समृद्ध, विस्तृत और जटिल हैं। इनमें संगीत, नृत्य, नाटक, छाया नाटक और कठपुतली नाटक जैसी विविध विधाएं शामिल हैं। इन कलाओं की उत्पत्ति पारंपरिक अनुष्ठानों और धार्मिक समारोहों में हुई, जहां इन्हें देवताओं और पूर्वजों के सम्मान में प्रस्तुत किया जाता था।

आज भी आधुनिक या समकालीन कला रूपों का गहरा संबंध अपने अतीत से बना हुआ है। बाली के नृत्य और रंगमंच अपनी भव्य वेशभूषा, लयबद्ध संगीत और कलाकारों की सूक्ष्म अभिव्यक्तियों विशेषकर नेत्रों की गतियों के लिए प्रसिद्ध हैं।

2. संगीत और रहस्य का अनूठा मेल

Gamelan संगीत बाली की पहचान है, जो निरंतर विकसित हो रहा है। वहीं, छाया कठपुतली नृत्य (Wayang) रहस्य और आध्यात्मिकता से परिपूर्ण होता है। मान्यता है कि इसके प्रदर्शन से पहले अनुष्ठानों के माध्यम से पूर्वजों का आह्वान किया जाता है, जिससे यह कला इहलोक और परलोक के बीच सेतु का कार्य करती है।

3. धर्म और कला का गहरा संबंध

बाली में धर्म और प्रदर्शन कलाओं का अटूट संबंध है। यहां पूर्वजों की पूजा को अत्यधिक महत्व दिया जाता है, जिस पर हिंदू और बौद्ध परंपराओं का प्रभाव है। पारंपरिक गांव, जिन्हें Desa Adat कहा जाता है, को ब्रह्मांड का केंद्र माना जाता है। प्रत्येक गांव में तीन प्रमुख मंदिर होते हैं, जहां त्योहारों और अनुष्ठानों के दौरान संगीत, नृत्य और नाटक अनिवार्य रूप से प्रस्तुत किए जाते हैं। यह माना जाता है कि इन प्रस्तुतियों के दौरान देवता और पूर्वज उपस्थित होकर इनका आनंद लेते हैं। कुछ स्थानों पर 'ट्रांस' की स्थिति के माध्यम से मृत व्यक्ति की इच्छाओं का पता लगाने की परंपरा भी प्रचलित है।

4. सांस्कृतिक मूल्यों की अभिव्यक्ति

बाली में 'कला' के लिए विशेष रूप से कोई स्थानीय शब्द नहीं है; 'Seni' शब्द इंडोनेशियाई भाषा से लिया गया है। यहां कलाकार को

'Tukang' और नर्तक या अभिनेता को 'Pragina' कहा जाता है, जिसका अर्थ है 'सुंदर व्यक्ति'।

चूंकि सभी कलाएं धार्मिक अनुष्ठानों से जुड़ी होती हैं, इसलिए कलाकार इनका प्रदर्शन भक्ति भाव से करते हैं। वे मंदिरों और उत्सवों में बिना किसी पारिश्रमिक के प्रस्तुति देते हैं, जो उनकी आस्था और समर्पण को दर्शाता है।

5. प्रदर्शन स्थल और दर्शक परंपराएं

बाली में प्रदर्शन के लिए पारंपरिक स्थान, जिन्हें 'Kalangan' कहा जाता है, खुले स्थानों में बनाए जाते हैं— जैसे किसी घर के सामने, गांव के चौक में या तीन ओर से खुले मंच पर। दर्शक जमीन या कुर्सियों पर बैठकर प्रदर्शन का आनंद लेते हैं।

अधिकांश प्रस्तुतियां रात 9 बजे के बाद शुरू होती हैं और कई घंटों तक चलती हैं। यहां टिकट या आरक्षित सीटों की परंपरा नहीं होती, बल्कि प्रदर्शन तब शुरू होता है जब पर्याप्त दर्शक एकत्र हो जाते हैं।

6. दर्शकों के लिए नियम और अनुशासन

मंदिरों और धार्मिक आयोजनों में होने वाले प्रदर्शनों के लिए दर्शकों को विशेष वेशभूषा— Pakaian adat धारण करनी होती है। साफ-सुथरे और शालीन कपड़े पहनना अनिवार्य माना जाता है।

अधिकांश स्थानों पर फोटोग्राफी की अनुमति होती है, लेकिन फ्लैश और वीडियो रिकॉर्डिंग पर प्रतिबंध रहता है, ताकि प्रदर्शन की पवित्रता और वातावरण बना रहे।

निष्कर्ष

बाली की प्रदर्शन कलाएं केवल कला नहीं, बल्कि जीवन जीने का तरीका है। ये धर्म, समाज और संस्कृति के बीच एक सेतु का कार्य करती हैं। इन कलाओं के माध्यम से न केवल पारंपरिक मूल्यों को संरक्षित किया जाता है, बल्कि सामाजिक परिवर्तन और नयी कहानियों को भी समाज में सहजता से स्वीकार किया जाता है। इस प्रकार, बाली की प्रदर्शन परंपरा हमें यह सिखाती है कि कला केवल अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं, बल्कि समाज की आत्मा होती है।

— डॉ. आशुतोष

(अतिथि सहायक आचार्य)

हिंदी विभाग, रामजस कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

फंदा नाच : रंगमंच पर फंतासी का मारक प्रयोग

पिछले दिनों दिल्ली शहर की सक्रिय रंगकर्मी प्रो. रमा यादव की निर्देशकीय परिकल्पना में वरिष्ठ रंगकर्मी-निर्देशक व नाटककार भानु भारती के नवीनतम नाटक 'फंदा नाच' की कई प्रस्तुतियां हुईं। शुरुआती प्रस्तुतियां 5 और 6 सितम्बर 2025 को दिल्ली के श्रीराम सेंटर में हुई जबकि एक अन्य प्रस्तुति 11 अप्रैल 2026 को दिल्ली में ही त्रिवेणी के ओपन सभागार में हुई।

'चिड़ियों ने फंदा काट डाला' की लोक-कथा से प्रेरित 'फंदा नाच' नाटक आधुनिक समय की विद्रूपताओं को उजागर करने में सफल रहा। एब्सर्ड नाट्य शैली का अनूठा प्रयोग, पक्षियों के मुखौटों का सृजनात्मक इस्तेमाल, कुशल नर्तन, युक्तियुक्त परिधान परिकल्पना, रिकार्डिंग ध्वनि-संगीत और रचनात्मक प्रकाश योजना के मिलान से 'फंदा नाच' की प्रस्तुतियां बहुत सशक्त और मारक बन पड़ी हैं। नाटक का कथ्य बहुआयामी है। यह नाटक मुखौटे धारण करके अपनी वास्तविकता को छिपाकर गलत कार्यों को अंजाम देने वाले आज के मानव की फितरत की ओर संकेत करता है। एक अन्य धरातल पर, दूसरों को खुश करने के चक्कर में अपनी पहचान ही खो देने वाले मनुष्य की विडंबना पर तंज कसता है। माया-मोह, लोभ-लालच, मेरा-तेरा, ईर्ष्या-द्वेष जैसे न जाने कितने ही जटिल फंदों में फंसा मनुष्य जीवन के 'सरल' और 'सहज' तत्त्व को ही भूल गया है। अपना 'बसाने' के लिए दूसरों का 'उजाड़' करने की दुष्प्रवृत्ति आधुनिक मानव में तेजी से बढ़ रही है – जिसका हासिल अन्ततः 'कुछ' भी नहीं है।

'फंदा नाच' नाटक भक्तिकाल के प्रखर कवि कबीर के फकीराने अंदाज में माया रूपी सांसारिक 'फंदों' की निरर्थकता को उजागर करते हुए, उनकी पेचीदगी को समझाते हुए 'सहजता' के जीवन-दर्शन की ओर इशारा करता है। 'सहज' होने के लिए 'फंदा जाल' की बनावट और उसमें फंसाए जाने के मकसद को समझना

जरूरी है— वो समझ में आते ही परिंदे जाल को ही ले उड़ते हैं। नाटककार भानु भारती ने आज की भाग-दौड़ से भरी, संघर्षों से घिरी, तमाम भौतिक सुविधाओं के बावजूद निरंतर तनावग्रस्त होती जा रही जिन्दगी के बीच 'जीने' के फलसफे को बड़ी ही सूझ-बूझ के साथ प्रेषित कर दिया है।

तेजी से बदलते दृश्यों के बीच कलाकारों के उम्दा अभिनय और चुस्त संवाद-योजना ने देश-विदेश की समकालीन परिस्थितियों की खूब पोल खोली। एब्सर्ड शैली का नाटक रंगकर्मियों से अतिरिक्त सजगता और सतर्कता की मांग करता है, तभी नाटक पर उनकी पकड़ बन पाती है। 'फंदा नाच' की प्रस्तुति ने नाटक में मौजूद सूक्ष्म किंतु धारदार व्यंग्य के माध्यम से बिना किसी का नाम लिये आपातकाल से लेकर लॉक-डाउन, नवउदारवाद और विदेशी निवेश, युद्धों में शर्मसार होती मानवीयता, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर के राजनेताओं की स्वार्थपरता, नैतिक पतन और दोगलेपन को आड़े हाथों लिया।

किसी नाट्य-प्रस्तुति को देखने के बाद दर्शक यदि मानसिक आलोड़न की स्थिति में पहुंचता है, चिंतन-मनन से होकर गुजरता है, कुछ सवालों से टकराता है और देखे गये नाटक के असर में कई दिन तक रहता है तो उसका श्रेय बेहतरीन रंगकर्म को दिया जाना चाहिए—यही सार्थक रंगकर्म की पहचान भी है। इस रूप में रमा यादव की निर्देशकीय परिकल्पना में 'फंदा नाच' की प्रस्तुति रंग-संभावनाओं की नयी उम्मीद जगाती दिखी। इस नाटक के कथ्य में मौजूद ताकत अनेकानेक सन्दर्भों से जुड़ पाने में सक्षम है। भविष्य में इस नाटक के जितने भी प्रदर्शन होंगे उतनी ही अर्थ की नयी परतें भी खुलेंगी।

— प्रो. आशा
(आचार्य)

हिंदी विभाग, अदिति महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

लापता लेडीज़

सन् 2023 में बनी फिल्म 'लापता लेडीज़' सामाजिक सरोकारों से सराबोर फिल्म है। फिल्म के प्रोड्यूसर आमिर खान, किरण राव व ज्योति देशपांडे हैं। निर्देशन किरण राव का है व कहानी बिप्लव गोस्वामी की है। संवाद स्नेहा देसाई ने लिखे हैं। यह फिल्म ऐसे प्रदेश की फिल्म है जहां पर स्त्री का अर्थ मनुष्य नहीं, केवल अनुगामिनी होता है। मुख्य रूप से यह फिल्म घूंघट प्रथा के दुष्परिणामों के इर्द-गिर्द घूमती है। घूंघट के कारण दुल्हन बदल जाती है। उनको ढूंढने के लिए उनके फोटो तक नहीं मिलते।

फिल्म का कथानक बहुत साधारण है। किंतु समाज के उन उपेक्षित हिस्सों को समाज के सामने लेकर आता है जिनको कोई महत्व नहीं दिया जाता। फिल्म का नायक दीपक अपनी नव विवाहिता पत्नी के साथ गांव वापस आता है किंतु रास्ते में घूंघट के कारण दुल्हन बदल जाती है। दीपक जिसको साथ लेकर आता है वह अपना नाम पुष्पा बताती है और दीपक की दुल्हन फूल पतीला स्टेशन पर ही रह जाती है। दरअसल पुष्पा का असली नाम जया है। वह कृषि विज्ञान में अपनी पढ़ाई पूरा करना चाहती थी किंतु उसके माता-पिता उसकी शादी जबरदस्ती प्रदीप से कर देते हैं। जब उसे भागने का अवसर दिखाई दिया तो वह अनजान बनकर दीपक के साथ चली जाती है और वहां जाकर अपना नाम पुष्पा बताती है। पुष्पा वहां की स्थिति को अच्छे से समझ लेती है। दीपक का भाई श्रवण कुमार दूसरी जगह काम करता है और उसकी पत्नी पूनम चित्रकला में माहिर है। पुष्पा उसकी प्रतिभा को चमकाती है और उससे फूल का चित्र बनवाती है। वह घर की सभी औरतों में आत्मविश्वास जगाने का प्रयास करती है। दूसरी ओर फूल पतीला स्टेशन पर मंजू माई के टी स्टॉल पर काम करने लगती है। उसे वहां मंजू माई से बहुत कुछ सीखने को मिलता है। चार ही दिनों में वह एक आत्मनिर्भर स्त्री के रूप में नजर आती है। दूसरी ओर पुष्पा का व्यवहार संदेहास्पद है। पुष्पा पढ़ी लिखी है वह कृषि विज्ञान जानती है। पुलिस अधीक्षक को उसे पर शक हो जाता है और वह खोजबीन करके नए तथ्यों को निकाल कर पुष्पा को जेल में बंद कर देता है। उस पर गहनों की चोरी वह फूल के अपहरण का इल्जाम लग जाता है। किंतु बाद में पता चलता है कि वह तो फूल को ढूंढने के लिए स्वयं बहुत प्रयास कर चुकी है। फूल का चित्र बनवाकर उसने स्टेशन पर जगह-जगह पर लगवाया है। अंततः फूल मिल जाती है। कहानी का अंत सुखद है।

फिल्म के सभी पात्र बहुत सहज और स्वाभाविक हैं। मुख्य भूमिका में दीपक और फूल हैं। इसके अलावा पुलिस अधीक्षक श्याम मनोहर ने कमाल का अभिनय किया है। फूल के चेहरे की मासूमियत बालिका वधू की छवि को चरित्रार्थ करती है। दीपक एक ऐसे अबोध नायक के रूप में दिखाया गया है जो कम पढ़ा लिखा है और समाज की रूढ़ियों को ज्यों का त्यों अपने सिर पर ओढ़े हुए हैं। फिल्म में मंजू माई का किरदार बहुत कुछ कहता है। मंजू माई की हिम्मत एक सामान्य प्रताड़ित औरत की हिम्मत है जिसने अकेले जीना सीख लिया है और फूल के सामने वह ज्यादा आधुनिक नजर आती है। डांट डपककर वह फूल को अपने पति का नाम लेना सिखाती है। वह फूल को टी स्टाल में अपने साथ काम करवाती है। छोटू और मंजू माई आत्मनिर्भर बनने की प्रेरणा देती है। फिल्म के अन्य पात्र पुष्पा रानी, पंकज, दुबे जी, प्रदीप, श्रवण कुमार, पूनम व बेला भी अपने अपने अभिनय से अलग छाप छोड़ते हैं। फिल्म में छोटे-छोटे और बारीक दृश्य हैं। अभिनय सभी पात्रों का बहुत सशक्त है पुलिस अधीक्षक श्याम मनोहर जितना कठोर दिखाई देता है अंत में अपने रोल को इतना खूबसूरत बना देता है कि जया भाव विभोर हो जाती है। छोटू की चुटकियां, मंजू माई की डांट-डपट, चटनी लेने वाले आदमी को बार-बार डांटना, मुंह मीठा करना, दुबे जी का भोलापन, बेला का हाथीनुमा आकार, पूनम की भोली भाली सूरत, श्रवण कुमार के लिए उसकी आंखों में दिखता प्रेम, फूल का अपने पति का नाम न लेना, पुष्पा के माध्यम से स्त्रियों को उनके अधिकारों के लिए जागरूक करना कुछ ऐसे दृश्य हैं जो दर्शक के मन में घर कर जाते हैं। कहानी में जब साधारण परिवार की स्त्रियां बैठती हैं और वह यह बातें करती हैं कि उन्होंने केवल पुरुषों के लिए ही जीवन दिया है अपने लिए तो वह कब से जीना छोड़ चुकी हैं, हैरान कर देने वाला है। फिल्म के संवाद सटीक और असरदार हैं। शादी के समय एक पड़ोसन कहती है “एक बार घूंघट ले लिया तो आगे नहीं, नीचे देखना सीखो।” यहीं से एक लड़की को रूढ़िवादी ढांचे में डालने की शुरुआत हो जाती है। फूल को ऐसी ही भोली लड़की के रूप में दिखाया गया है जो अपने जीवन में आने वाले संघर्षों से अनभिज्ञ है और माता-पिता ने उसे अपने परिवेश के अनुसार जो सिखाया वही उसके लिए सत्य वचन है। वह मंजू माई से एक स्थान पर कहती हैं। “भले घर की बेटियां बिना पति के घर नहीं जाती।” इस कहानी

में मंजू माई का किरदार पुरानी रूढ़ियों को तोड़ने के लिए ही रचा गया है। वह कहती है— “औरत अनाज उगा भी सकती है और पका भी सकती है। देखा जाए तो औरतों को पुरुषों की कोई खास जरूरत नहीं है इस बात का पता औरत को न चले उसके लिए ही यह सारा खेल रचा जा रहा है।” एक अन्य स्थान पर वह कहती है— “कैसे लोग हो गुमनामी से ज्यादा बदनामी का डर”। वह फूल की हर बात का तर्कसंगत जवाब देती है। “तुम्हें अच्छा नहीं बनाया है बुड़बक बनाया है”। फूल को तो अपने घर का पता ही ज्ञात नहीं है और सात साल का छोटू अपने घर का पता जानता है जहां उसे जाना ही नहीं। मंजू माई कदम कदम पर यह एहसास दिलाती है कि एक लड़की को अपने अंदर की प्रतिभा को निखारना चाहिए और यदि आवश्यकता पड़े तो उसको अपना प्रोफेशन बना लेना चाहिए। दूसरे शब्दों में, इस फिल्म में ‘स्टार्टअप’ को बढ़ावा दिया गया है। फिल्म के कुछ हिस्से भ्रष्ट राजनीति को भी दिखाते हैं जब नेता मंच पर आता है तो दीपक यह उम्मीद लगाता है कि वह फूल को ढूंढने की बात अवश्य माइक से कहेंगे किंतु नेताजी नाम सुने बिना ही कहते हैं— “दीपक की ज्योति ढूँढ कर रहेंगे”। फिल्म के संवाद ऐसे हैं कि दर्शक अवाक रह जाता है और सोचने पर मजबूर हो जाता है। घूंघट प्रथा को फिल्म में खूब लताड़ा गया है। “फेस ढक देना मतलब पहचान ढक देना”।

“यह घूंघट हमारी जान ले लेगा”। फिल्म में इसी तरह के प्रभावशाली संवाद हैं।

लापता लेडीज सामाजिक सरोकारों की फिल्म है जिसमें कुछ प्रदेशों की हूबहू सच्चाई दिखाई गई है। भारत के कुछ प्रदेश आज भी ऐसे हैं जहां पर लड़कियां आज भी फूल जैसा जीवन गुजर कर रही हैं। वहां पर आज भी बाल विवाह, शिक्षा, नशाखोरी, अज्ञानता व स्त्री प्रताड़ना देखी जाती है। यह फिल्म वास्तविक सच्चाई को दिखाती है जिसकी कल्पना करना भी महानगरीय जीवन में दूभर है।

लापता लेडीज फिल्म में घर की औरतें आपस में बात करती हैं कि “घर की औरतें देवरानी-जेठानी सास सब बन जाती हैं, बस सहेलियां नहीं बन पाती। अम्मा आप और हम सहेली बन सकते हैं क्या”। यह जीवन की कटु सच्चाई है स्त्रियां एक दूसरे का मनोबल गिराने में लगी रहती हैं। यदि वह एक दूसरे का साथ दें तो इन्हीं में मंजू माई जितना साहस भी है और पुष्पा जैसी बहादुर भी।

फिल्म का निर्देशन उत्तम है। दृश्य बहुत स्वाभाविक हैं। पिछड़ा हुआ गांव, मूर्ति स्टेशन, पतीला स्टेशन सब सहज रूप से दिखाए गए हैं। फिल्म में प्रादेशिक संस्कृति नजर आती है। पुलिस स्टेशन का दृश्य बहुत रोचक है। पुलिस अधीक्षक पीड़ित का कुर्ता देखकर

उसकी आर्थिक स्थिति का अंदाजा लगाते हैं। और एक स्त्री से गाना सुनकर उसकी रिश्तत से ₹10000 कम कर देते हैं। फिल्म में प्रदीप जैसा भी एक पात्र चित्रित किया गया है जो अपनी पहली पत्नी को दहेज न लाने के जुर्म में मार चुका है, दूसरी बीवी गुम हो गई है और उसी रात वह नाचने वाली के पास जाने की बात करता है। वह दहेज की फटफटिया को पाकर बहुत खुश है। इस प्रकार के भ्रष्ट चरित्र भी पिछड़े इलाकों में पाए जाते हैं। ऐसे लोग स्त्री का सम्मान करना नहीं जानते बल्कि केवल उनका इस्तेमाल करना जानते हैं। फिल्म में दीपक और फूल का भोलापन देखने लायक है। एक अदृश्य प्रेम उन दोनों के बीच नजर आता है। फिल्म में यह भी दिखाया गया है कि पिछड़े इलाकों में शिक्षा की संभावनाएं बहुत कम होती हैं और विशेष रूप से लड़कियों के लिए। जया जैसी ही कुछ लड़कियां अपनी बहादुरी से इतनी हिम्मत कर पाती हैं कि लीक से हटकर कुछ कर सकें। फूल का अपने ससुराल का नाम भूल जाना एक रोचक स्थिति को चित्रित करता है। जब उसे बार-बार अलग-अलग फूलों के नाम लेकर उसके गांव का नाम याद दिलाया जाता है किंतु उसे सूरजमुखी नाम याद नहीं आता। अब्दुल भीख मांगने के लिए लंगड़ा बना हुआ है और वहां पर एक संवाद कहा जाता है — “यह दुनिया बहुत अजीब है यहां जो जैसा दिखता है वैसा होता नहीं है और जैसा होता है वैसा दिखता नहीं”। फिल्म में जब घर की स्त्रियां आपस में बात करती हैं तब पता चलता है कि आज भी भारत के कुछ प्रदेश ऐसे हैं जहां पर स्त्रियां अपनी पसंद का जीवन जीती ही नहीं हैं उन्हें याद नहीं कि उन्हें क्या खाना पसंद और क्या पहनना पसंद है वे केवल पति और घर वालों की पसंद का जीवन जीती हैं।

घर के बुजुर्ग का रात-भर ‘जागते रहो’ कहना सांकेतिक रूप से सामाजिक उत्थान को दिखाता है। अभिनय की दृष्टि से भी फिल्म सफल है सभी पात्रों ने बहुत सहज और स्वाभाविक अभिनय किया है। पात्रों की वेशभूषा व संवाद सब पात्रानुकूल हैं। फिल्म में छिटपुट कॉमेडी भी है। फिल्म के कुछ गाने बहुत खूबसूरत हैं। “सजनी रे” गाना रोमांस से भरा हुआ है। एक गाना फिल्म के अंत में बजाया जाता है। “धीरे-धीरे चले पुरवड़ा” यह गाना पूरी फिल्म का निचोड़ है और गाने में क्षेत्रीय अज्ञानता और रूढ़िवादिता के धीरे-धीरे बदलने के संकेत सुनाई देते हैं।

— डॉ. मीनू कुमारी

(सहायक आचार्य)

हिंदी विभाग, मैत्रेयी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

साहित्योत्सव 2026 : साहित्यिक विविधता का भव्य उत्सव

साहित्य अकादेमी द्वारा आयोजित साहित्योत्सव (फेस्टिवल ऑफ लेटर्स) 2026 ने भारतीय भाषाओं, साहित्यिक परंपराओं और सांस्कृतिक विविधता के अद्भुत संगम को एक बार फिर साकार किया। 30 मार्च से 4 अप्रैल 2026 तक नयी दिल्ली स्थित रवीन्द्र भवन परिसर में आयोजित इस छः दिवसीय महोत्सव में देश के विभिन्न भाषाई क्षेत्रों से आए साहित्यकारों, कवियों, कथाकारों, आलोचकों, रंगकर्मियों और साहित्य-प्रेमियों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया।

महोत्सव का शुभारंभ 30 मार्च को हुआ। उद्घाटन दिवस की विशेषता बहुभाषी कविता-पाठ और कहानी-पाठ के विविध आयोजन रहे, जिनमें असमिया, गुजराती, हिंदी, कश्मीरी, संथाली, संस्कृत, तमिल, तेलुगु, उर्दू समेत अन्य भारतीय भाषाओं के रचनाकारों ने अपनी सृजनात्मक अभिव्यक्तियां प्रस्तुत कीं। इन सत्रों ने भारत की भाषाई बहुलता और साहित्यिक समृद्धि का प्रभावशाली परिचय दिया।

पहले दिन आयोजित विभिन्न परिचर्चाओं ने समकालीन साहित्यिक विमर्श को नयी दिशा प्रदान की। “रूपांतरण, प्रेरणाएं और अन्वेषण : रंगमंच में परंपराओं का सम्मिश्रण : लोक से आधुनिक” विषयक चर्चा विशेष रूप से उल्लेखनीय रही। इसमें विभिन्न भाषाओं के रंगकर्मियों और विद्वानों ने लोकनाट्य परंपराओं तथा आधुनिक रंगमंच के संबंधों पर अपने विचार व्यक्त किए। इसके अतिरिक्त “शब्द जो संस्कारित करते हैं— साहित्य भी है चिकित्सा का एक विधान”, “ताड़ पत्र से पन्नों तक : भारत में प्रकाशन का बदलता परिदृश्य” जैसे विषयों पर भी सार्थक संवाद हुए।

दूसरे दिन का केंद्र समकालीन चुनौतियां और भविष्य की संभावनाएं रहीं। “आज की कलन विधियां और कल का समाज : मशीनों के बीच जीवन पर पैनल चर्चा” विषयक परिचर्चा में कृत्रिम बुद्धिमत्ता, तकनीक और मानवीय संवेदनाओं के संबंध पर गंभीर विचार-विमर्श हुआ। वहीं “मां की कोख से जन्मा : मातृभाषा पर पैनल चर्चा” विषय पर आयोजित कार्यक्रम ने भाषा और सांस्कृतिक अस्मिता के गहरे संबंध को रेखांकित किया। भारतीय महाकाव्यों, दार्शनिक साहित्य, कविता की लोकप्रियता, कूटनीतिक लेखन तथा मानवता के भविष्य जैसे विषयों पर भी विचारेत्तेजक सत्र आयोजित किए गए। विशेष आकर्षण आदिवासी साहित्य से जुड़े कार्यक्रम रहे, जिनमें विभिन्न जनजातीय भाषाओं के कवियों और कथाकारों ने अपनी रचनाएं प्रस्तुत कीं। इन सत्रों ने आदिवासी जीवन-दृष्टि, प्रकृति-चेतना और मौखिक परंपराओं को व्यापक साहित्यिक विमर्श के केंद्र में स्थापित किया।

31 मार्च की संध्या को कमानी सभागार में आयोजित साहित्य अकादेमी पुरस्कार अर्पण 2025 समारोह महोत्सव का महत्वपूर्ण आयोजन

रहा। इस अवसर पर 24 भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों को उनके उत्कृष्ट साहित्यिक योगदान के लिए सम्मानित किया गया। समारोह में साहित्य अकादेमी के पदाधिकारियों तथा विशिष्ट साहित्यकारों की भी उपस्थिति रही। इसके पश्चात उत्तर-पूर्व क्षेत्र सांस्कृतिक केंद्र द्वारा प्रस्तुत वाद्य-यंत्र समूह की सांस्कृतिक प्रस्तुति ने दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर दिया।

महोत्सव के अगले दिन विभिन्न विषयों पर गंभीर साहित्यिक विमर्श जारी रहे। “21वीं सदी में दलित साहित्य”, “आगामी कल के सच-विज्ञान कथा : असंभव की कल्पना पर पैनल चर्चा”, “साहित्यिक पत्रिकाओं की चुनौतियां एवं संभावनाएं”, “भारतीय सृजनात्मक साहित्य में मानवीय मूल्य” तथा “बोलियां : भाषाओं का अन्य पक्ष” जैसी चर्चाओं ने साहित्य और समाज के बदलते संबंधों को नए दृष्टिकोण से देखने का अवसर प्रदान किया। विशेष रूप से दलित साहित्य पर आयोजित परिचर्चा ने समकालीन भारतीय समाज में समानता, प्रतिनिधित्व और प्रतिरोध के प्रश्नों को प्रमुखता से उठाया। वहीं विज्ञान-कथा संबंधी चर्चा ने यह बताया कि साहित्य भविष्य की कल्पनाओं और वैज्ञानिक संभावनाओं को किस प्रकार रचनात्मक रूप देता है। बोलियों पर केंद्रित सत्र ने भाषाई विविधता के संरक्षण की आवश्यकता पर बल दिया।

लेखक सम्मेलन में साहित्य अकादेमी पुरस्कार 2025 से सम्मानित लेखकों ने अपने रचनात्मक अनुभव साझा किए। उनकी आत्मकथात्मक टिप्पणियां और साहित्यिक यात्राएं युवा लेखकों एवं शोधार्थियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनीं। साथ ही महिला कवयित्रियों तथा दिव्यांग लेखकों के विशेष सत्रों ने महोत्सव की समावेशी भावना को सशक्त रूप से अभिव्यक्त किया। पांचवें दिन मेघदूत मुक्ताकाशी रंगशाला में सांस्कृतिक कार्यक्रम के अंतर्गत बिहू और मणिपुरी नृत्य का मधुर आयोजन किया गया।

साहित्योत्सव 2026 केवल साहित्यिक आयोजन नहीं था, बल्कि भारतीय भाषाओं, संस्कृतियों और विचारों के संवाद का एक विराट मंच था। कविता, कहानी, विमर्श और सांस्कृतिक प्रस्तुतियों के माध्यम से इस महोत्सव ने यह सिद्ध किया कि साहित्य आज भी समाज को जोड़ने, संवेदनशील बनाने और मानवीय मूल्यों को सशक्त करने की सबसे प्रभावी शक्ति है। यह आयोजन भारतीय साहित्य की जीवंतता, विविधता और निरंतर विकसित होती रचनात्मक चेतना का उत्सव-सा था।

— चंदन चौधरी

(शोधार्थी)

हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

उद्गीत कॉन्क्लेव 2026 : एक रचनात्मक प्रयोग

उद्गीत संस्था द्वारा आयोजित ‘उद्गीत कॉन्क्लेव 2026’ साहित्यिक जगत में एक नया प्रयोग है।

उद्गीत संस्था एवं शिवाजी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्वाधान में 5 जनवरी 2026 को शिवाजी कॉलेज के जीजाबाई सभागार में एकदिवसीय ‘उद्गीत कॉन्क्लेव 2026’ का चार सत्रों में आयोजन किया गया। ‘उद्गीत कॉन्क्लेव 2026’ ने मंचीय कार्यक्रमों में होने वाले एकरेखीय संवाद की परंपरा में व्यापक परिवर्तन करते हुए उसे वैचारिक विमर्श की नयी परंपरा से जोड़ा। ‘उद्गीत कॉन्क्लेव 2026’ इस रूप में भी महत्वपूर्ण है कि प्रत्येक सत्र में सभी विद्वानजनों के साथ बातचीत करने के लिए एक विषय विशेषज्ञ भी मंच पर उपस्थित रहे जिन्होंने कार्यक्रम के प्रवाह को निरंतर बनाए रखा। ‘उद्गीत कॉन्क्लेव 2026’ का प्रत्येक सत्र वैचारिक मंथन की दृष्टि से सार्थक और ज्ञानवर्धक रहा।

‘उद्गीत कॉन्क्लेव 2026’ का उद्घाटन या प्रथम सत्र ‘भारतीय ज्ञान परंपरा और वर्तमान सन्दर्भ’ नामक विषय पर केंद्रित था। कार्यक्रम की शुरुआत दीप प्रज्वलन और सरस्वती वंदना से हुई। प्रथम सत्र की प्रस्तावना भगिनी निवेदिता कॉलेज की पूर्व प्राचार्य प्रो. राज भारद्वाज द्वारा की गई। प्रथम सत्र में विषय विशेषज्ञ के रूप में अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के राष्ट्रीय संगठन सचिव श्रीमान् बाल मुकुंद पाण्डेय जी और मैत्रेयी कॉलेज की उपप्राचार्य एवं शिक्षाविद् डॉ. यामिनी गौतम जी उपस्थित रही। ‘उद्गीत कॉन्क्लेव 2026’ एक विशिष्ट संरचना से युक्त कार्यक्रम रहा, जिसमें व्याख्यान की प्रक्रिया की अंतर्निहिता के साथ-साथ प्रश्नमाला को भी सन्निहित किया गया। प्रथम सत्र के संयोजन का कार्य शिवाजी कॉलेज के प्राचार्य प्रो. वीरेंद्र भारद्वाज जी ने किया और धन्यवाद ज्ञापन डॉ. मेघराज मीणा द्वारा किया गया।

प्रथम सत्र का संचालन करते हुए शिवाजी कॉलेज के प्राचार्य एवं उद्गीत संस्था के संस्थापक प्रो. वीरेंद्र भारद्वाज ने आर्ष ग्रंथों की अवधारणा और उनकी प्रासंगिकता से संबंध जिज्ञासाओं को श्री बालमुकुंद पाण्डेय जी के समक्ष रखा। श्रीमान पाण्डेय जी ने वेदों को मात्र एक रचना न कहकर उन्हें ऋषियों की साधना के फलीभूत मंत्रोंच्चारण से उत्पन्न ऊर्जा बताया। उपनिषद् चिंतन मनीषी डॉ. यामिनी गौतम ने उद्गीत की पावन व्याख्या करते हुए बताया कि

उपनिषद् चिंतन के परिणाम स्वरूप जो आंतरिक उन्नयन होता है वही वास्तव में उद्गीत है। ऋषि परंपरा को ऋतंभरा प्रज्ञा अर्थात् अमृत से भरी हुई प्रज्ञा कहा जाता है। यह हमें केवल जानकारी नहीं अपितु जानना सिखाती है। समग्र रूप से प्रथम सत्र ज्ञान की धारा से दर्शकों को आप्लावित करने वाला रहा, जिसके अंतर्गत सभी शंकाओं रूपी प्रश्नों का शमन दोनों विद्वानों द्वारा किया गया।

‘उद्गीत कॉन्क्लेव 2026’ का दूसरा सत्र ‘थिएटर और सिनेमा’ नामक विषय पर केंद्रित रहा। इस सत्र की प्रस्तावना मिरांडा हाउस कॉलेज की प्रो. रमा यादव ने रखी। थिएटर और सिनेमा के विषय विशेषज्ञ के रूप में श्री निलॉय राय (प्रसिद्ध रंगकर्मी), डॉ. रामजी बाली (नाट्य विशेषज्ञ), श्री कमलेश के. मिश्रा (नेशनल फिल्म अवार्डी, निर्देशक और अभिनेता), श्री जेपी सिंह ‘जयवर्धन’ (लेखक, निर्देशक और अभिनेता) उपस्थित रहे। इस सत्र में ऐसी हस्तियों को आमंत्रित किया गया, जिन्होंने अपनी काबिलियत के बल पर खुद को स्थापित किया है। इस सत्र का संचालन अदिति महाविद्यालय की प्रो. आशा जी ने किया और धन्यवाद ज्ञापन डॉ. इति ने किया। श्री राम जी बाली, जिनका कार्य क्षेत्र क्लासिकल थिएटर से लेकर हिंदी रंगमंच, सिनेमा और वेब सीरीज तक फैला हुआ है, उन्होंने संस्कृत के नाटक को ‘अभिज्ञान शाकुंतलम्’, ‘चारुदत्तम्’ इत्यादि नाटकों को मंच पर उतारा। उन्होंने दर्शक वर्ग के समक्ष अपने उस दृष्टिकोण को भी व्यक्त किया जिसके कारण आधुनिक समय में प्राचीन नाटकों को प्रस्तुत किया गया और उसके प्रति युवा पीढ़ी के रुझान को भी बताया। प्रसिद्ध नाटककार श्री जयवर्धन जी ने रंगमंच के लिए लेखन और दूरदर्शन तथा आकाशवाणी के लिए अभिनय व निर्देशन के भेद एवं साम्य को स्पष्ट किया। इस अवसर पर प्रिंट मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के विशेषज्ञ श्री कमलेश के. मिश्रा जी ने अपने पत्रकारिता के सफ़र से सबको अवगत कराया। श्री निलॉय राय ने भी रंगमंच की बारीकियों को दर्शकों के समक्ष रखा।

‘उद्गीत कॉन्क्लेव 2026’ का तीसरा सत्र ‘महिलाओं के बढ़ते कदम’ नामक विषय पर केंद्रित था। इस सत्र की प्रस्तावना रामलाल आनंद कॉलेज की प्रो. अर्चना गौड़ ने रखी। इस सत्र में बातचीत करने के लिए अपने कार्यक्षेत्रों में मुकाम हासिल कर रही महिलाओं को आमंत्रित किया गया। तीसरे सत्र में सुश्री विमला मेहरा (पूर्व स्पेशल

कमिश्नर, दिल्ली पुलिस), एसडीएम इति अग्रवाल (राजौरी गार्डन, पश्चिम दिल्ली), सुश्री गुनीत सेठी (नेशनल अवार्डी) ने अपने विचार साझा किया। इस सत्र का संचालन प्रो. राज भारद्वाज भगिनी निवेदिता कॉलेज ने किया और सत्र के अंत में धन्यवाद ज्ञापन प्रो. किरण चौधरी ने किया। सुश्री विमला मेहरा ने कई जीवनानुभव साझा किया जिसमें उनके द्वारा शुरू की गई 'हेल्पलाइन 1091' प्रमुख है। तिहाड़ जेल में रहते हुए उन्होंने कई एनजीओ के माध्यम से कैदियों को आत्मनिर्भर बनाने का काम किया। सुश्री मेहरा ने बताया कि उनकी इस मेहनत से जेल में कैदियों के द्वारा तैयार वस्तुओं का व्यापार एक वर्ष में चौदह-पंद्रह करोड़ से बढ़कर इकतीस करोड़ हो गया। आपके प्रयासों से एफएम रेडियो की शुरुआत तिहाड़ जेल में हुई। पूरे विश्व में यह अनोखी शुरुआत थी। जेल में कुछ लोग कविताएं लिखते थे जिसे सुश्री मेहरा ने संकलित कराया जो 'तिनका-तिनका तिहाड़' नाम से प्रकाशित हुई। सुश्री इति अग्रवाल ने परिवार और सर्विस में सामंजस्य कैसे स्थापित किया जाए इसपर व्यापक चर्चा की। तकनीकी बढ़ोतरी और प्रौद्योगिकी पर भी छात्रों का ज्ञानवर्धक किया। कार्यक्रम की आकर्षण सुश्री गुनीत सेठी ने जीवन जीने की कला पर अपने विचार साझा किया। उन्होंने बताया कि वे अपनी जिद और मनोबल से यहां तक पहुंची हैं। सुश्री सेठी ने कहा कि हम अपनी ऊर्जा का 5% भी उपयोग नहीं करते। आपने बताया कि कैसे आंखों की रोशनी जाते ही लोगों ने बेचारी बना दिया परंतु आपने अपनी क्षमता को पहचानकर बिना आंखों के बहुत सारे कार्य किया। आपके कार्यों की बदौलत आपको नेशनल अवार्ड से सम्मानित किया गया।

'उद्गीत कॉन्क्लेव 2026' कार्यक्रम का चौथा सत्र 'विज्ञान व प्रकृति' नामक विषय पर केंद्रित था। इस सत्र की प्रस्तावना शिवाजी कॉलेज की प्रो. दीपिका यादव ने रखी। कार्यक्रम में विषय विशेषज्ञ के रूप में प्रो. विंध्यवासिनी पाण्डेय (निदेशक, हिमालय अध्ययन केंद्र, दिल्ली विश्वविद्यालय), प्रो. अजय अरोड़ा (प्राचार्य, रामजस कॉलेज), प्रो. उमेश कुलश्रेष्ठ (पर्यावरण अध्ययन संकाय, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय) उपस्थित रहे। चौथे सत्र का संचालन प्रो. सुरभि मदान (शिवाजी कॉलेज) ने किया। कार्यक्रम के अंत में धन्यवाद ज्ञापन प्रो. तेजवीर सिंह राणा (उप प्राचार्य, शिवाजी कॉलेज) ने किया। यह सत्र वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अत्यंत प्रासंगिक तथ्यों को अपने में समेटे हुए था। प्रो. पांडेय ने विकास के सततीय होने पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि यदि मनुष्य ने प्रकृति से संतुलन स्थापित नहीं किया तो प्रकृति स्वयं संतुलन बना लेगी। प्रो. अरोड़ा ने बताया कि विकास की दौड़ में हम पीछे भी नहीं रुक सकते हैं इसलिए आवश्यक है कि हम प्रौद्योगिकी के विकास में योगदान दें जिससे कम से कम प्रकृति को नुकसान पहुंचे। प्रो. कुलश्रेष्ठ ने भी पर्यावरण को ध्यान में रखकर विकास करने की बात कही। इस सत्र में विज्ञान व प्रकृति के अंतर्संबंध को जानने का अवसर मिला।

- प्रो. राज भारद्वाज
(पूर्व प्राचार्य)

भगिनी निवेदिता महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

कोलकाता के हिंदी रंगकर्म पर दिल्ली विश्वविद्यालय में संगोष्ठी

दिल्ली विश्वविद्यालय के 'प्रतिष्ठित संस्थान' (IoE) एवं हिंदी विभाग के संयुक्त तत्वावधान में 'कोलकाता का हिंदी रंगमंच' विषय पर एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का शुभारंभ उत्तरी परिसर के टैगोर हॉल में दीप प्रज्ज्वलन से हुआ। 'संकाय शोध कार्यक्रम' (FRP) के अंतर्गत आयोजित इस संगोष्ठी की शुरुआत वक्ताओं के परिचय एवं उनके औपचारिक स्वागत से हुई। कार्यक्रम की विस्तृत रूपरेखा हिंदी विभाग के सहायक आचार्य एवं इस परियोजना के मुख्य सर्वेक्षक डॉ. धर्मेन्द्र प्रताप सिंह ने प्रस्तुत की। उन्होंने बताया कि हिंदी रंगमंच के अखिल भारतीय स्वरूप के निर्माण में गैर हिंदी भाषी क्षेत्रों, विशेषकर कोलकाता और मुंबई के रंगकर्म की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

कार्यक्रम के बीज वक्ता के तौर पर महेश वशिष्ठ जी अपनी बात रखते हुए अभिनय और रंगमंच की बारिकियों पर केंद्रित रहे। उन्होंने अभिनय की शुरुआत प्रागैतिहासिक काल से मानते हुए कहा कि अभिनय 'काल्पनिक परिस्थिति में सच्चा व्यवहार' है। उन्होंने बताया कि एक अभिनेता को अपनी समस्त ऐंद्रियों से सजग होना पड़ता है। उनका मानना था कि दुनिया का कोई भी नाटक बिना अवरोध या द्वंद्व के मुमकिन नहीं हो सकता है। एक अभिनेता के कुछ अपेक्षित गुण होते हैं। मसलन एक अभिनेता को प्रतिक्रियावादी नहीं होना चाहिए, उसे जजमेंटल नहीं होना चाहिए, उसे अनुशासित होना चाहिए और उसे बहुपठित भी होना चाहिए। वाचन करते हुए वाक्य के किस हिस्से पर जोर दिया जाएगा, उससे क्या अर्थ निकलता है। उन्होंने समझाया।

दूसरे वक्ता के रूप में अदिति महाविद्यालय के हिंदी विभाग की आचार्य प्रो. आशा ने सुचिंतित व्याख्यान दिया। उन्होंने 'कोलकाता हिंदी रंगमंच की महिला रंग-श्रद्धासयत' विषय पर अपनी बात रखी। उन्होंने कहा कि कोलकाता हिंदी रंगमंच की दृष्टि से भारत के अन्य शहरों की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध रहा है। उन्होंने कोलकाता में 20वीं शताब्दी के आरंभ से लेकर समकालीन रंगमंच की यात्रा पर विस्तार से प्रकाश डाला। साथ ही कोलकाता में हिंदी रंगमंच के विकास में अवदान देनी वाली हिंदी रंग-संस्थाओं जैसे – रंग समिति, हिंदी नाट्य परिषद, अनामिका, लिटिल थोस्पिएन इत्यादि के उल्लेखनीय योगदान को रेखांकित किया। प्रतिभा अग्रवाल और उषा

गांगुली पर उन्होंने विशेष रूप से बात करते हुए प्रतिभा अग्रवाल के 'नाट्य शोध संस्थान' व उषा गांगुली के 'रंगकर्मी' नाट्य समूह की चर्चा की। साथ ही उन्होंने उषा गांगुली के निर्देशन-शैली के संदर्भ में कहा कि उनकी कोई एक निश्चित शैली नहीं थी। आखिर में उन्होंने उषा गांगुली को हिंदी और बंगाली नाटकों के बीच सेतु का काम करने वाली महिला के रूप में याद किया।

कोलकाता स्थित 'लिटिल थोस्पिएन' रंग-समूह की कर्ताधर्ता उमा झुनझुनवाला ने नाटक एवं रंगमंच के व्यवहारिक पक्ष को केंद्र में रखकर विषय पर बेहद सटीक ढंग से अपनी बात रखी। उन्होंने नए नाटककारों की अस्वीकार्यता की समस्या को उठाते हुए संकेत किया कि आधुनिक नाटक मोहन राकेश पर रुका हुआ है। रंगकर्मियों की समस्याओं की ओर ध्यान दिलाने के बाद उन्होंने रंगमंच को अधिक प्रासंगिक बनाए रखने के लिए अनेक सुझाव दिए। साथ ही रंगमंच के व्यवसायीकरण के महत्व और अखबारों में उनकी समीक्षा को स्थान देने की आवश्यकता पर भी बात की। इसके अतिरिक्त, उन्होंने प्रेम कपूर को कोलकाता में इकलौता थिएटर रिव्यूवर कहते हुए अधिक रंग-समीक्षकों की उपस्थिति की जरूरत पर बल दिया और कोलकाता हिंदी रंगकर्म के सुनहरे भविष्य की ओर संकेत किया।

दिल्ली विश्वविद्यालय के अंतरराष्ट्रीय संबंध के डीन प्रो. अनिल राय मुख्य अतिथि की भूमिका में थे। उन्होंने सर्वप्रथम हिंदी रंगमंच के ऐतिहासिक महत्त्व पर प्रकाश डाला। इसके साथ गैर हिंदी भाषी रंगमंच ने किस तरह हिंदी रंगमंच पर प्रभाव डाला है, उसकी अपेक्षित चर्चा की। उन्होंने बताया कि रंगमंच पर पहली बार स्त्री पात्रों को स्त्री द्वारा निभाया जाने का श्रेय कोलकाता के रंगमंच को जाता है। भारत में रंगमंच की एक सुदीर्घ परंपरा रही है। वर्तमान में रंगकर्म की स्थिति को सुधारने हेतु समाज तथा विश्वविद्यालयों को मदद करने की अति आवश्यकता पर उन्होंने बल दिया। उन्होंने रंगमंच से जुड़ी पत्रिकाओं को विश्वविद्यालयों/ महाविद्यालयों के पुस्तकालय में लगाए जाने की आवश्यकता को भी रेखांकित किया, जिससे एक बेहतर समाज का निर्माण किया जा सके।

हिंदी विभाग की अध्यक्ष एवं वरिष्ठ आचार्य प्रो. सुधा सिंह इस कार्यक्रम में अपना अध्यक्षीय संबोधन प्रस्तुत किया। कलकत्ते का जिक्र आते ही प्रो. सुधा सिंह ने कलकत्ता विश्वविद्यालय की अपनी

स्मृतियों को याद किया, जिसे वे 'अहले-वतन' कहती हैं। उन्होंने कहा कि कलकत्ता के हिंदी लेखकों के सामने ये संकट रहा कि वे बंगाली भाषी लोगों के सामने खुद को कैसे खड़ा करें। उन्होंने हिंदी भाषी जनता के भीतर की 'संस्कृति विहीनता' को प्रश्नांकित किया। उन्होंने कहा कि आप हिंदी भाषी जनता से प्रेमचंद और निराला के बारे में पूछें तो उन्हें नहीं मालूम होगा, लेकिन पॉपुलर कल्चर की जानकारी उन्हें होगी। उन्होंने सवाल किया कि क्या रंगमंच को बाज़ार के हवाले छोड़ दिया जाय? फिर तो मुकाबला सीधे तौर पर मास कल्चर से होगा और 'सर्वाइवल ऑफ़ द फिटेस्ट' के सिद्धांत के चलते पॉप कल्चर ही बचेगा। उन्होंने सवाल किया कि ऐसा क्यों है कि स्त्रियां कम नाटक लिखती हैं? निर्देशन में उनकी भागीदारी क्यों कम दिखलाई पड़ती है? ये कुछ सवाल थे, जो कार्यक्रम खत्म होने के साथ हमारे जहन में रह गए हैं।

परियोजना में शोध सहायक प्रभाकर सिंह ने अभी तक हुए शोधकार्य की एक रिपोर्ट प्रस्तुत की और आगामी शोध-योजना पर प्रकाश डाला। कार्यक्रम के अंत में माता सुंदरी कॉलेज के हिंदी विभाग की आचार्य एवं परियोजना की सहायक अन्वेक्षक प्रो. इंदू कुमारी ने सभी वक्ताओं, अतिथियों एवं सभागार में भारी संख्या में मौजूद रहे दिल्ली विश्वविद्यालय के विभिन्न कॉलेजों के प्राध्यापकों एवं कार्यक्रम को सफल बनाने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण रूप से उपस्थित एवं सक्रिय रहे विद्यार्थियों एवं शोधार्थियों के प्रति भी अपना आभार प्रकट किया।

- प्रभाकर सिंह
पीएचडी शोधार्थी
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

भारतीय ज्ञान परंपरा में सप्तऋषि

शोध-सार

भारतीय ज्ञान परंपरा विश्व की प्राचीनतम ज्ञान आधारित परंपराओं में से एक है। इसका आधार दर्शन, चिकित्सा, विज्ञान, शिक्षा, धार्मिक एवं आध्यात्मिक चिन्तन भी है। वेद, उपनिषद्, पुराण, रामायण, महाभारत, गीता, दर्शन ग्रंथ, स्मृति ग्रंथ भारतीय ज्ञान परंपरा के सन्दर्भ में सांस्कृतिक जीवन मूल्यों को स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इस ज्ञान परंपरा के संरक्षण एवं नव-निर्माण में सप्तऋषियों का अत्यंत विशिष्ट स्थान है। कश्यप, अत्रि, भारद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और वसिष्ठ सप्तऋषियों ने वेदों के संरक्षण के साथ-साथ न्याय, धर्म, दर्शन, तपस्या, त्याग, संयम, गुरु-शिष्य परंपरा आदि से संबंधित सांस्कृतिक आदर्श स्थापित किये। इन्होंने ज्ञान परंपरा की शाश्वत चेतना के रूप में लोकहितकारी सामाजिक मूल्यों की स्थापना की आधुनिक संदर्भों में इनकी शिक्षाएं आज भी प्रासंगिक हैं। ये सात ऋषि भारतीय ज्ञान परंपरा के ऐसे शाश्वत प्रतीक हैं जो चिरकाल से मानव समाज के लिए प्रेरणा स्रोत बने हुए हैं।

बीज शब्द

भारतीय ज्ञान परंपरा, सप्तऋषि, नैतिक मूल्य, सामाजिक समरसता, अध्यात्म, चेतना।

मूल आलेख

भारतीय ज्ञान परंपरा केवल धार्मिक चिंतन या ज्ञान तक सीमित नहीं है। यह जीवन के विविध क्षेत्रों को आपस में जोड़ते हुए वैदिक साहित्य, दर्शन, गुरु-शिष्य परंपरा, योग, आध्यात्मिक साधना, आयुर्वेद, चिकित्सा शास्त्र, गणित, खगोल विज्ञान, भाषा, व्याकरण, समाज व्यवस्था, शासन, कला, संगीत, पर्यावरण आदि से सम्बन्धित सभी चिन्तनों को अपने में समाहित किये हुए है। भारत में ऋषियों एवं गुरुओं का स्थान सर्वोपरि रहा है। भारतीय ज्ञान परंपरा में सप्तऋषियों की अत्यंत प्राचीन एवं गौरवशाली परंपरा रही है। इन्होंने केवल धर्मोपदेश नहीं दिए अपितु शिक्षाविद्, दार्शनिक, वैज्ञानिक, समाज-सुधारक के रूप में आने वाली पीढ़ियों के लिए मार्ग प्रशस्त किया। ऋषि 'ऋष' धातु से बना है, जिसका अर्थ है— प्राप्त करना, देखना या जानना। हमारी वैदिक परंपरा में मंत्रदृष्टाओं को ऋषि कहा गया

है। ऋषि उन्हें भी कहा जाता है जिन्होंने सत्य का साक्षात्कार किया हो। इस आधार पर कहा जा सकता है कि ऋषि वह हैं जिन्होंने अपनी साधना, तप और ज्ञान द्वारा सत्य को जानकार अपने ज्ञान का लोकहित में प्रचार-प्रसार किया हो। भारतीय वाङ्मय में मिथक की परंपरा का सूत्रपात ऋग्वेद से आरम्भ होता है। मिथक किसी भी जाति की सांस्कृतिक धरोहर है। इनके माध्यम से सामूहिक लोक विश्वास और भावनाओं का प्रकटीकरण होता है। भारतीय संस्कृति किसी भी अन्य देश की तुलना में मिथकीय साहित्य की दृष्टि से विशेष समृद्ध रही है। वैदिक साहित्य, रामायण और महाभारत का मिथकीय समृद्धि की दृष्टि से विश्व के किसी भी साहित्य में कोई जोड़ नहीं है। अपौरुषेय माने जाने वाले वेदों के मंत्रों का साक्षात्कार करते हुए भारतीय ऋषि ज्ञान परंपरा के संवाहक बने। इन्होंने मानव जीवन के केवल आध्यात्मिक पक्ष को न देखते हुए इसके विभिन्न पक्षों पर गम्भीरता से विचार किया। वैचारिक मंथन की इस प्रक्रिया में सप्तऋषि भारतीय ज्ञान परंपरा के सर्वोच्च प्रतिनिधि के रूप में सभी की स्मृति में दर्ज हैं। सप्तऋषियों ने विश्व कल्याण की भावना से महत्वपूर्ण योगदान दिया। प्रो.रमेश गौतम भी मिथक के विषय में लिखते हैं, 'मिथक आदिम मनोवृत्तियों का पुंजीभूत रूप है जो संवेदना और रागात्मक घरातल पर मनुष्य से मनुष्य की पहचान कराता है। परंपरा बोध, आस्था के धरातल पर जातीय संस्कारों, धार्मिक विश्वासों और सभ्यता के (आदि से अद्यतन) क्रमिक विकास से उपलब्ध मान्यताओं को यह अपने अन्दर समाविष्ट किये रहता है'।

'सप्तर्षि यानी सात ऋषि हमारे मन मस्तिष्क पर अमिट रूप से अंकित हैं। हमारे हृदय में इनके प्रति आदर का भाव है। डॉ.सूर्यकान्त बाली जी 'भारतगाथा' पुस्तक में महाभारत में वर्णित सप्तर्षियों की दो नामावलियों का वर्णन करते हुए बताते हैं कि एक नामावली में कश्यप, अत्रि, भारद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और वसिष्ठ के नाम हैं तो दूसरी नामावली में कश्यप, वसिष्ठ, मरीचि, अंगिरस, पुलस्त्य, पुलह, कृतु के नाम हैं। ऋग्वेद के दो से सात मंडल में छह ऋषिकुलों के ऋषियों के मंत्र हैं 12 इस शोधालेख में सप्तऋषि कश्यप, अत्रि, भारद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और वसिष्ठ के विषय में बताया जा रहा है। सभी ऋषियों ने आध्यात्मिक चेतना का विस्तार किया। अनेक ऐसे अनसुलझे प्रश्नों का समाधान इन्होंने

अपनी रचनाओं और मंत्रों में किया-व्यक्ति कौन है? मनुष्य और प्रकृति का सम्बन्ध, सत्य, धर्म और नैतिकता का अर्थ, सुख-शांति का स्रोत, जीवन का उद्देश्य क्या है? आदि। ऋषियों ने गुरु रूप में बताया कि इन सभी प्रश्नों का समाधान तभी संभव है जब मनुष्य अच्छे से स्वयं के अनुभवों, विचारों, भावों साथ-साथ अपने आस-पास के जीव-जगत को भी पहचान पाता है। भारतीय दर्शन में चेतना को आत्मा का मूल गुण माना गया है।

सृष्टि विस्तार का आधार माने जाने वाले पहले सप्तऋषि महर्षि कश्यप को देवताओं, गन्धर्वों, पशु-पक्षियों एवं मानव जाति का आदि पुरुष कहा जाता है। इन्होंने मनुष्य और प्रकृति के बीच संतुलन स्थापित करने का अत्यंत महत्वपूर्ण संदेश दिया। मनुष्य के जन्म लेने के बाद प्रकृति और प्राकृतिक उपादान उसके पालन-पोषण एवं जीवन का मूलाधार होते हैं। महर्षि कश्यप द्वारा रचित 'कश्यप संहिता' आयुर्वेद की अत्यंत प्राचीन संहिता है। इसमें गर्भवती स्त्री, स्त्री रोग, शिशु चिकित्सा से सम्बन्धित रोगों के विषय में जानकारी के साथ उनके उपचार के विषय में भी बताया गया है। यह संहिता आठ भागों में विभाजित है। इसमें बच्चे के जन्म से पहले और बाद में, स्त्री गर्भावस्था, प्रसव, स्तनपान जैसे महत्वपूर्ण विषयों को आधार बनाया गया है। गर्भवती महिला के आहार से संबंधित जीवन शैली के विषय में भी बताया गया है ताकि स्त्री शारीरिक एवं मानसिक रूप से पूर्णतः स्वस्थ रहे। हजारों वर्ष पूर्व इस तरह से स्त्री और शिशु के स्वास्थ्य के संबंध में चिंतन-मनन करना बेहद कश्यप ऋषि की दूरदृष्टि को दर्शाता है। आज के युग में भी कितने अजन्मे बच्चे गर्भ में स्वास्थ्य के आभाव में दम तोड़ देते हैं, कितनी स्त्रियां आज भी गांवों में साधनों के आभाव में प्रसव के दौरान मृत्यु को प्राप्त होती हैं। हजारों वर्ष पहले जिन विषयों पर इस ऋषि ने ग्रंथ लिखा आज उन्हीं पर समाज को इतने वर्षों बाद जागरूक किया जा रहा है। इन्होंने विभिन्न जीव प्रजातियों की विविधता के संरक्षण पर बल दिया। इन्होंने प्रकृति और मानव के सह-अस्तित्व की भावना के साथ दोनों में संतुलन बनाये रखने का संदेश दिया। आज विभिन्न लुप्त होती प्रजातियों के कारण जैव विविधता के संरक्षण पर खूब चर्चा होती है। आज विलुप्त होती विभिन्न प्रजातियों के कारण जैव-विविधता उद्यान (बायोडायवर्सिटी पार्क) की आवश्यकता महसूस करते हुए उनका निर्माण किया जा रहा है। कश्यप ऋषि ने इन सभी जीवों के अस्तित्व को अत्यंत महत्वपूर्ण माना था। डॉ.राजीव रंजन तिवारी पर्यावरण चेतना के विषय में लिखते हैं— 'वैदिक सनातन धर्म में धरती, वन, पर्वत, वनस्पति आदि पर्यावरण के अंगों का सही सामंजस्य स्थापित किया गया है यह कहना अधिक समुचित होगा कि सनातन धर्म की गौरवशाली संस्कृति सभ्यता ने पर्यावरण को आधार मानकर ही

अपनी नींव स्थापित की थी। ऋग्वेद के पृथ्वी सूक्त में इसी परंपरा को विभिन्न रूपों में आख्यायित कर मानव एवं पृथ्वी को एक सूत्र में बांधने का प्रयास किया है'³

ऋग्वेद का पंचम मंडल 'अत्रि मंडल' कहलाता है। इसमें सप्तऋषि महर्षि अत्रि द्वारा रचित अनेक सूक्त संकलित हैं। मानस पुत्र कहे जाने वाले महर्षि अत्रि ने उदात्त एवं लोक भावना के साथ कल्याण सूक्त, स्वस्ति सूक्त की रचना की। ऋषि अत्रि ने इसमें वसुधैव कुटुंबकम् की भावना से प्रेरित होकर सभी प्राकृतिक तत्वों की की भलाई की प्रार्थना की। विभिन्न मांगलिक एवं शुभ कार्यों में इनका पाठ किया जाता है। इन्होंने खगोल शास्त्र के विभिन्न रहस्यों को खोजा। पृथ्वी को उपजाऊ बनाने में इनका महत्वपूर्ण योगदान है। कर्दम की पुत्री अनुसूया से इन्होंने विवाह किया था। माता अनुसूया पतिव्रता स्त्री थी। आयुर्वेद और प्राचीन चिकित्सा क्षेत्र में ऋषि अत्रि का महत्वपूर्ण योगदान है। 'अत्रि संहिता' और 'अत्रि स्मृति' ग्रंथ इनके द्वारा रचित हैं। तप, संयम, आत्मानुशासन से युक्त जीवन को अपनाकर इन्होंने मनुष्य के आध्यत्मिक और बौद्धिक विकास को महत्व दिया। आज के समय में यही तप, संयम, आत्मानुशासन ध्यान रूप में (मेडिटेशन) तनाव को दूर करने का उपाय है।

महर्षि भारद्वाज ऋग्वेद के छठे मंडल के दृष्टा माने जाते हैं। अथर्ववेद में भी इनके कुछ मंत्र मिलते हैं। इन्हें आयुर्वेद और चिकित्सा विज्ञान, यांत्रिकी के प्रमुख आचार्यों में से एक माना जाता है। इन्होंने धनुर्वेद से सम्बन्धित युद्ध नीति, सैन्य प्रबन्धन, अस्त्र-शस्त्र निर्माण एवं उनके उपयोग पर जानकारी दी। उनका आश्रम प्राचीन भारतीय इतिहास प्रमुख शिक्षा केन्द्रों में से एक माना जाता है। इन्होंने शिक्षा एवं ज्ञान को समाजोपयोगी बनाने और अनुसन्धान की परंपरा को निरंतर विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारद्वाज राजा भरत के उत्तराधिकारी बने। गुण व्यक्ति को कहां से कहां पहुंचा देते हैं इसका उदाहरण ऋषि भारद्वाज के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत हुआ है। ब्राह्मण ऋषि होने के बावजूद इन्हें युवराज बनाया गया। अपनी प्रतिमा के बल पर ही इन्हें राज्याधिकार मिला। व्यक्ति का आचरण उसका ज्ञान ही किसी को अपनी तरफ आकर्षित करने के लिए प्रेरित करता है। इनसे एक नयी परंपरा का सूत्रपात भी हुआ वह यह कि राज्य केवल वंश के आधार पर किसी राजा के पुत्रों का नहीं होता बल्कि राज्य का शासक वहीं होता है जो उसे सुचारू से चला सके चाहे वह ऋषि ही क्यों न हो।

ऋग्वेद के तृतीय मंडल के 62वें सूक्त का दसवां मंत्र 'गायत्री-मंत्र' है। इसके रचयिता महर्षि विश्वामित्र हैं— ॐ भूर्भुवः स्वः / तत्सवितुर्वरेण्यं / भर्गो देवस्य धीमहि । / धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ अर्थात् हम उस प्राण स्वरूप दुख विनाशक सुख स्वरूप श्रेष्ठ तेजस्वी

और प्रेरक देव स्वरूप परमात्मा को अंतरात्मा में धारण करे और वह हमारी बुद्धि को शुभकार्यों में लगावे। इस मंत्र की प्रासंगिकता यही है कि वह वैदिक युग से आज तक लोगों की जुबान पर है और रहेगा। विज्ञान के विकास के साथ-साथ मनुष्य का भगवान पर विश्वास डगमगाने लगा है वह सब चीजों का स्वामी बन बैठा है इसमें भगवान सूर्य से बुद्धि की तीव्रता के लिए प्रार्थना की गई है। आज यांत्रिक युग में मानव हृदय की संवेदनायें लुप्त होती जा रही हैं। अच्छे-बुरे की परवाह किए बगैर मनुष्य अपने अधिकारों का प्रयोग करते हुए अपने कर्तव्यों से विमुख होता जा रहा है। बुद्धि से बुद्धि टकराने लगी है। जिससे अहं का जन्म हुआ है जो आज के युग में सब दुर्गुणों का मूल है। इसलिए ईश्वर से ऐसी बुद्धि की प्रार्थना की है जो हमारे मन को शुभ कार्यों में लगा सके।

‘विश्वामित्र’ जिन्होंने गायत्री मंत्र की रचना की थी। ये अभूतपूर्व तपस्वी थे एक दिन अचानक मेनका अप्सरा के मोह में फंसकर कामलीन हो गए और शकुन्तला का जन्म हुआ जिसका विवाह पुरुवंशी राजा दुष्यन्त से हुआ जिनके पुत्र भरत थे। एक संघर्ष विश्वामित्र ने देवराज वसिष्ठ से ब्राह्मणत्व पाने के लिए किया था जिसमें वसिष्ठ ने विश्वामित्र को ब्राह्मण मानने से इंकार कर दिया? परन्तु विश्वामित्र ने गायत्री मंत्र की रचना कर ऐसा अद्भुत कर्म किया जिससे पूरे देश में वे ब्राह्मण स्वीकार कर लिए गए और अन्ततः वसिष्ठ को भी उन्हें ब्राह्मण स्वीकार करना पड़ा। इनका गायत्री मंत्र ऋग्वेद के तीसरे मंडल में संकलित है। वाल्मीकी रामायण में भी विश्वामित्र के विषय में लिखा मिलता है। लेखक ने विश्वामित्र की प्रसिद्धि का मूल कारण उनके द्वारा लिखे गए गायत्री मंत्र को माना है। यह सत्य भी है। गायत्री मंत्र में गायत्री देवी वास्तव में मनुष्य की दिव्य ज्ञान चेतना एवं ज्ञान शक्ति का प्रतीक है जो उसे अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाते हुए उसके अज्ञान को ज्ञान में परिवर्तित करती है। गायत्री देवी को वेदमाता की संज्ञा भी दी जाती है।

महर्षि गौतम ने आध्यत्मिक साधना, तपस्या और वैदिक ज्ञान का प्रचार-प्रसार किया। इन्होंने दार्शनिक ग्रंथ ‘न्याय दर्शन’ की रचना की। इसके माध्यम से प्रमाण, तर्क और युक्ति के माध्यम से सत्य की खोज करना सिखाया। तार्किक चिंतन और विवेक को बढ़ावा देते हुए इन्होंने इन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान (प्रत्यक्ष), तर्क द्वारा प्राप्त ज्ञान (अनुमान), तुलना द्वारा प्राप्त ज्ञान (उपमान), विश्वसनीय व्यक्ति या शास्त्र द्वारा प्राप्त ज्ञान (शब्द) को ज्ञान प्राप्ति के प्रमुख चार प्रमाणों के रूप में स्थापित किया। ऋषि गौतम की पत्नी अहल्या थी। ऐसा कहा जाता है कि एक बार भगवान इंद्र गौतम की पत्नी अहल्या पर मोहित हो गए। इंद्र ने अहल्या के पास जाने का प्रयास किया। जब इंद्र भागने लगे, तो ऋषि गौतम ने उन्हें पकड़ लिया, जो उस समय

अपने आश्रम लौट आए थे। गौतम ने अहल्या और इंद्र को उनके इस कृत्य के लिए श्राप दिया। अहल्या पत्थर में परिवर्तित हो गई, जबकि इंद्र को एक हजार स्त्री जननांगों का श्राप मिला (सहस्रयोनी)। बाद में, गौतम ने दोनों श्रापों को निरस्त कर दिया। गौतम ने अहल्या को वरदान दिया कि भगवान राम के चरण कमलों के स्पर्श से वह श्राप से मुक्त हो जाएंगी और ऐसा हुआ भी। भयानक श्राप देने के परिणामस्वरूप, ऋषि गौतम ने वर्षों की तपस्या से प्राप्त अपनी असाधारण शक्ति खो दी। अपनी शक्ति वापस पाने के लिए, उन्होंने अपना आश्रम छोड़ दिया और हिमालय चले गए। गौतम ऋषि ने मानव जाति की सहायता के उद्देश्य से विश्वभर में यात्रा की। कुरुक्षेत्र के युद्ध के दौरान उन्होंने स्वयं युद्धक्षेत्र में आकर द्रौणाचार्य से हत्याएं बंद करने के लिए शस्त्र त्याग की बात कही। ‘नारद पुराण’ में बारह वर्षों के अकाल की कथा वर्णित है। इसमें कहा जाता है ऋषि गौतम ने उस दौरान अनेक ऋषियों को भोजन कराकर उनकी जान बचाई। उनका व्यक्तित्व आधुनिक संदर्भों में अत्यंत प्रासंगिक है। उन्होंने परपीड़ा को अनुभूत कर उसे दूर करने का प्रयास किया। भोजन से बढ़कर दान और क्या हो सकता है?

महर्षि जमदग्नि प्राचीन भारतीय ऋषियों में से एक थे। जमदग्नि ऋषि का जन्म भृगुवंशी ऋचीक के पुत्र के रूप में हुआ था। इनका विवाह रेणुका के साथ हुआ था। ये भगवान परशुराम के पिता थे। वैदिक ज्ञान और तपस्या के क्षेत्र में इनका महत्वपूर्ण योगदान था। इनके पास इच्छापूर्ति कामधेनु गाय थी। इस दिव्य गाय के लिए कार्तवीर्य अर्जुन और जमदग्नि के बीच में संघर्ष हुआ था। जमदग्नि का वध कर दिया जाता है। परशुराम अपने पिता की हत्या का बदला लेते हैं और कामधेनु गाय को आश्रम में वापिस लेकर आते हैं। पौराणिक कथाओं के अनुसार एक समय पृथ्वी पर क्षत्रिय राजाओं के अत्याचार और आतंक बहुत अधिक बढ़ गए थे। इन राजाओं से तंग आकर सभी महर्षि जमदग्नि के पास मदद मांगने आये। तब महर्षि जमदग्नि ने पुत्रेष्टि यज्ञ किया, जिससे प्रसन्न होकर भगवान विष्णु वरदान स्वरूप उन्हें पुत्र प्राप्ति का वरदान दिया। उनके पांच पुत्र हुए जिनमें से एक परशुराम स्वयं भगवान् विष्णु के अवतार कहे जाते हैं। जिन्होंने कई बार पृथ्वी को क्षत्रिय विहीन किया। महर्षि जमदग्नि ने अपनी रचनाओं में गौ वंश की रक्षा, पालन-पोषण के विषय में विस्तार से बताया। ऋग्वेद के 16 मंत्रों में उन्होंने गौ वंश की रक्षा के विषय में बताया है। सामाजिक समरसता और स्थिरता को बनाये रखने के लिए उन्होंने नैतिकता, अनुशासन, तप और सत्यनिष्ठा को अनिवार्य माना। आज के अत्याधुनिक युग में इन जीवन-मूल्यों का निरंतर हास होता दिखाई दे रहा है। जमदग्नि के जीवन से जुड़ी शिक्षा आज के युग में अत्यंत प्रासंगिक है।

महर्षि वसिष्ठ भारतीय ज्ञान परंपरा के सबसे प्रभावी ऋषियों में से एक हैं। ऋग्वेद के सप्तम मंडल 'वसिष्ठ मंडल' की रचना की। राजा दशरथ के राजगुरु एवं श्री राम के गुरु के रूप में उनकी प्रसिद्धि चारों ओर थी। इन्होंने आध्यात्मिकता, धर्म, राजनीति के समन्वय का आदर्श प्रस्तुत किया। वसिष्ठ ने धर्म और न्याय को राजा से ऊपर स्वीकार किया। वसिष्ठ ने राजदंड के ऊपर ब्रह्मदंड को स्थापित किया। राजा के ऊपर भी एक शक्ति को कायम किया। राजा जनता पर अपना अधिकार रखता है और नियमों को तोड़ने वालों को दण्डित करता है वसिष्ठ ने राजसत्ता के ऊपर ब्रह्मसत्ता को कायम किया ताकि न्याय सही तरीके से हो सके। आज भी यही बात लागू है। वसिष्ठ की समाज को दी गई यह देन सराहनीय है। आज भी शासक के ऊपर एक शक्ति कार्य करती है। शासक सर्वोपरि नहीं है। इन्होंने राजसत्ता से ऊपर नैतिक और आध्यात्मिक सत्ता को महत्वपूर्ण माना। भारतीय दर्शन का महत्वपूर्ण ग्रंथ 'योगवशिष्ठ' है। इस ग्रंथ में आत्मज्ञान, मोक्ष और वैराग्य का विस्तृत विवेचन मिलता है।

सप्तर्षियों का व्यक्तित्व हमें बताता है कि मनुष्य अपने कर्म से बड़ा बनता है। अपने द्वारा किये गये महान कार्यों के कारण ये सभी के दिलोदिमाग पर छाए हैं। इन्होंने हमारी सभ्यता को कुछ न कुछ दिया ही है जनमानस में इनके प्रति आज भी ये धारणा है कि ये दूर आकाश में तारों के रूप में चमकते हैं। अपने कार्यों के कारण ये आज भी अस्तित्व है। ये हमें प्रेरित करते हैं कि मनुष्य को सदैव सामाजिक हित के लिए कार्य करना चाहिए ताकि वे इतिहास में अमर रहे। सप्तऋषियों का सबसे बड़ा योगदान वेदों और वैदिक ज्ञान का संरक्षण है। प्राचीन भारत में ज्ञान का प्रसार मौखिक परंपरा द्वारा होता था। ऋषियों ने श्रवण, मनन और निदिध्यासन की प्रक्रिया के माध्यम से वेदों को सुरक्षित रखा। गुरुकुलों के माध्यम से शिक्षा केवल बौद्धिक विकास का साधन नहीं थी, बल्कि चरित्र निर्माण और जीवन-निर्माण का माध्यम भी थी। ऋषियों के आश्रम अनुसंधान, शिक्षा और साधना के केंद्र थे। उन्होंने ज्ञान को लोककल्याणकारी और व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया। इन ऋषियों ने वैश्विक स्तर पर सांस्कृतिक

और नैतिक आधार प्रदान किया। गुरुकुल केवल शिक्षा एवं साधना के केंद्र नहीं थे बल्कि वे अनुसंधान, जीवन-निर्माण, चरित्र-निर्माण के सशक्त माध्यम भी थे। विभिन्न जीवन मूल्यों का विकास इन ऋषियों की वृहद परंपरा द्वारा हुआ। गुरु-शिष्य परंपरा के मध्य जीवन से संबंधित अनेक शिक्षाएं सेतु का कार्य करती थी। सप्तऋषियों ने केवल धार्मिक स्तर पर ही नहीं बल्कि बौद्धिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, नैतिक दृष्टि से भी समृद्ध किया। ये सप्तऋषि भारतीय ज्ञान परंपरा की अमूल्य धरोहर हैं। भारतीय सभ्यता के निर्माण और सांस्कृतिक चेतना के विकास में वर्तमान और भविष्य के बीच इनकी शिक्षाएं आगामी पीढ़ी के लिए मार्गदर्शक हैं। आधुनिक युग में मानसिक तनाव, नैतिक एवं पारिवारिक मूल्यों का विघटन, पर्यावरण संबंधी संकट जैसी अनेक समस्याएं सुरसा की भांति मानव जीवन का अभिन्न अंग बनती जा रही हैं। ऐसे में इन सप्तऋषियों का सामूहिक योगदान सामाजिक समरसता, सतत विकास एवं जीवन के विविध क्षेत्रों में एक सशक्त आधारशिला के रूप में कार्य करता है। योग, आयुर्वेद, पर्यावरण संरक्षण, अनुसंधान, आत्मविकास, नेतृत्व क्षमता, दर्शन, शिक्षा, गुरु-शिष्य परंपरा, सृष्टि-विज्ञान, कर्तव्यनिष्ठा एवं सामाजिक उत्तरदायित्व आदि विविध विषयों से संबंधित भारतीय संस्कृति को ऋषियों की अमूल्य देन है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. डॉ. रमेश गौतम, मिथकीय अवधारणा और यथार्थ, संस्करण 1997, पृष्ठ संख्या 12
2. डॉ. सूर्यकांत बाली, भारतगाथा, संस्करण 1999, पृष्ठ संख्या 51
3. डॉ. राजीव रंजन तिवारी, तुलसी-साहित्य और पर्यावरण चेतना, संस्करण 2009, पृष्ठ संख्या 44

- डॉ. कुसुम लता
(सहायक आचार्य)

हिंदी विभाग, दौलतराम महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

युद्ध में शर्मसार मानवता

इतिहास गवाह है युद्ध में हार-जीत किसी भी पक्ष की हो लेकिन हारती हमेशा इंसानियत ही है युद्ध का शिकार हुए इंसान के दिलों में युद्ध के आतंक रूपी घाव नासूर बन कर रह जाते हैं, चाहे वह प्रथम व द्वितीय विश्व युद्ध हो या किसी दो देशों के एक दूसरे पर आधिपत्य के लिए लड़ा गया युद्ध, उसमें हमेशा मानवता ही शर्मसार होती है। आज रूस और यूक्रेन के युद्ध का इतने दिन हो गए हैं लेकिन यह खत्म होने का नाम ही नहीं ले रहा इस युद्ध की वजह जो भी हो उससे निपटने के लिए युद्ध के अलावा और भी विकल्प हो सकते थे इस अस्तित्व की लड़ाई में भीषण बर्बरता और नरसंहार करना क्या इंसानियत को शर्मसार करना नहीं है? युद्ध के आतंक की छाप वहां के लोगों के मस्तिष्क पर खासकर बच्चों पर अनंत काल तक जीवित रहेगी, उनके दिल और दिमाग से युद्ध का खौफ निकालना लगभग नामुमकिन हो जाएगा। एक न्यूज़ में आया कि एक औरत अपने बच्चों के साथ कई दिनों से एक बंकर में छुपी हुई है आसमान और सूरज देखे हुए उन्हें बहुत दिन हो गए बच्चों को सपने में भी बम और गोलियों की आवाज सुनाई पड़ रही है, इस तरह से बच्चों को कैसी-कैसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ रहा है, उनका आने वाला कल कैसा होगा हम सोच भी नहीं सकते ऐसी परिस्थिति को देखते हुए दिनकर कुमार (एक युवा कवि) की एक कविता याद आ गई -

“अनाथ बच्चों के हृदय में
युद्ध समा जाते हैं
फिर देखो पत्थर बनने में
अधिक समय नहीं लगता”¹

इस तरह से यूक्रेन की नयी पीढ़ी वर्तमान परिस्थिति के कारण उन्हें कितने साल पीछे कर देगी जिसके बारे में लोगों ने सोचा भी नहीं होगा इन सब में सबसे ज्यादा खामियाजा बच्चों और औरतों को ही उठाने पड़ते हैं, औरतें अपने बच्चों के साथ घर परिवार खोने के बाद पड़ोसी देश में शरणार्थी बनने पर मजबूर हैं जहां उनकी मजबूरी का फायदा मानव तस्कर भरपूर तरीके से उठाने की कोशिश कर रहे हैं इस तरह की घटनाएं भी सुनने को आ रही हैं लाखों की तादाद में महिलाएं और बच्चे देश छोड़ने पर मजबूर हैं

यूएन की मानवीय राहत एजेंसी का कहना है की- ‘यूक्रेन में मौजूदा हालात की वजह से हर सेकंड में एक बच्चा शरणार्थी बनने के लिए मजबूर है..² (DW)18.3.2022

यूक्रेन की बर्बादी की दास्तान वहां की सड़कें इमारतें चीख चीख कर बता रही हैं वहां के लोगों की बनी बनाई जिंदगी इस युद्ध ने पल भर में उजाड़ डाला लोग अपने घर और बंकरो में बंद होकर मौत का इंतजार कर रहे हैं। बीबीसी न्यूज़ की एक रिपोर्टर ने वहां के कई गावों का जायजा लिया जो युद्ध की चपेट में आ गए थे वहां की महिलाएं अपने ऊपर हुए शोषण की दास्तान खुद सुनाती हैं एक महिला को एक सैनिक अपने साथ दूसरे घर में ले गया और उसका रेप किया फिर कुछ और सैनिक आ गए और उस सैनिक को अपने साथ ले गए उसके बाद उसकी पति की हत्या कर उसे घर को जला दिया ऐसे ही यूक्रेन के रोबिया जिले की 30 साल की महिला अनास्तासिया ने कहा है कि- ‘रूसी कब्जे वाले शहर इरपिन में हालात नरक की तरह है यह महिलाओं का बलात्कार करते हैं और मृतकों को बस में फेंक देते हैं’³

यूक्रेन की मानवाधिकार लोकपाल ‘रुक्मिला जोनिशोवा’ ‘जो बलात्कार जैसी घटनाओं को रिकॉर्ड कर रही है वह कहती हैं- “एक घर के बेसमेंट में 14 से 24 साल तक की लड़कियों और महिलाओं के साथ रूसी सैनिकों ने बलात्कार किया और कहा कि वे तब तक उनके साथ वैसा करेंगे जब तक वह किसी अन्य पुरुष के साथ संबंध बनाने पर खौफ न खाएं।”⁴

आज इस तरह की घटनाएं वर्षों पुराने इतिहास को फिर से दोहरा रही हैं चाहे वह द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जापानी सैनिक का कोरियाई स्त्रियों पर किए गए जुल्म की दर्दनाक दास्तान हो या फिर क्रोएशिया के स्त्रियों के साथ सर्बिया के सैनिकों की बर्बरता।

जेएनयू की प्रोफेसर गरिमा श्रीवास्तव अपनी डायरी ‘देह ही देश क्रोएशिया प्रवास डायरी’ के मुख्य पृष्ठ पर लिखा है- “उन हजारों औरतों के नाम जिनकी देह पर ही लड़े जाते हैं सारे युद्ध”⁵ यह डायरी उस समय की क्रोएशिया और बोस्निया की स्त्रियों के दर्द, चीख, कराह की दास्तान है किस तरह से उन्हें कुचला गया, रौंदा गया, मन के साथ उनके शरीर को भी नोचा गया उनमें से कुछ ने तो आत्महत्या कर ली और कुछ की मनःस्थिति इस दर्द और यातना को झेल नहीं पाई और वह पागल हो गई जो इन सब के बावजूद जो जीवन में आगे बढ़ गई वह इस काले सच को याद नहीं करना चाहती गरिमा श्रीवास्तव कहती हैं-

“ऐसा क्यों होता है युद्ध कहीं भी हो किसी के भी बीच, मारी तो जाती है औरतें ही”...।⁶

इससे भी भयानक बर्बरता उन कोरियाई और अन्य देश की स्त्रियों के साथ हुआ जिसे आज भी इंसाफ नहीं मिल पाया है जो “कंफर्ट वूमेन” के नाम से जानी जाती हैं इन स्त्रियों के साथ पशुओं से भी बदतर व्यवहार किया गया था द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जापानी सैनिक पड़ोसी देशों जैसे कोरिया, चीन, फिलीपींस ऐसे अनेक देशों की लड़कियों और स्त्रियों को जबरदस्ती पकड़ कर अपने कैपों में ले आते और उनका बलात्कार करते, उन्हें सालों तक वे बंदी बना कर रखा जाता था और उन्हें ही जापानी सैनिकों ने नाम दिया गया ‘कंफर्ट वूमेन’ यानी कि ‘आरामदायक महिलाएं’ कितनी शर्मनाक और अफसोस की बात है कि युद्ध में अपनी शक्ति प्रदर्शन का एक तरीका स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार यौन शोषण करने की सोच से भी जुड़ा हुआ है हजारों कोरियाई लड़कियां व महिलाएं एक साथ एक कमरे में बंद कर दिया जाता था, उनके शरीर पर कपड़े कम घाव के निशान ज्यादा होते थे उनका काम था जापानी सैनिक जब युद्ध से वापस आए तो उनके गुस्से या खुशी के लिए अपने शरीर को सौंपना उन्हें खुश रखना। एक लड़की को (यहां तक कि उसमें बच्चियां भी थी जिनकी उम्र मात्र 12, 13 या 14 साल की भी थी) एक रात में 10 से 20 सैनिकों के साथ संबंध बनाने पड़ते थे और उनकी हर रोज जांच भी कराई जाती थी ऐसे में अगर कोई भी लड़की यौन संक्रमित पाई जाती तो वह रातों-रात गायब कर दी जाती।

लल्लनटॉप के एक न्यूज़ में कंफर्ट जोन की त्रासदी झेली महिला का अनुभव जो अब 90 पार कर चुकी है उसका नाम ‘नर्सिसा क्लेवेरीया’ है उन्हें जापानी सैनिकों ने मात्र 12 साल की उम्र में किडनैप कर उठा लाए थे और कंफर्ट वूमेन का नाम दे दिया वह कहती हैं—

“अगर मैं सूर्य को अस्त होने से रोक सकती तो मैं वैसा जरूर करती क्योंकि जैसे ही रात ढलती वह मेरा रेप करना शुरू कर देते”⁶ जून 2022।⁷

ऐसी अनेकों हकीकत इतिहास की तहों में समाई हुई है जिसे अगर निकाला जाए तो इंसानियत नंगी हो जाएगी ‘कंफर्ट वूमेन’ वहशीपन का जीता जागता उदाहरण दुनिया के सामने पेश करती हैं ऐसे अतीत से उभरना मुश्किल ही नहीं नामुमकिन होता है यह युद्ध की मार झेल चुकी स्त्रियां ही बता सकती हैं उनके लिए स्त्री शरीर का धारण करना या स्त्री होना कितना बड़ा अभिशाप है। संयुक्त राष्ट्र के पूर्व पीस कमांडर मेजर जनरल पैट्रिक कैमर्ड ने कहा है— **“एक सैनिक की तुलना में एक महिला होना ज्यादा खतरनाक है।”⁸**

इस तरह से देखा जाए तो युद्ध की दोहरी मार स्त्रियां झेलती हैं, स्त्रियों पर ऐसे जुल्म बस इतना ही नहीं विश्व युद्ध की चपेट में आए अधिकतर देशों की स्त्रियों के साथ हुआ। उसके बाद भी यह बर्बरता कम नहीं न हुई। 1955 से 1975 तक यानी इस 20 सालों के युद्ध में अमेरिका ने वियतनामी महिलाओं के साथ बच्चों को भी नहीं बख्शा। युद्ध के आड़ में अमेरिकी सैनिकों का वियतनामी स्त्रियों पर किया गया यौन शोषण भयानक था मार्च 1968 में वियतनाम के एक गांव ‘सोर्न तिन्ह’ पर अमेरिकी सैनिकों का कहर बरपा, गांव पर अचानक यह हमला ‘माई लाई’ नरसंहार के रूप में विश्व विख्यात है जिसमें 500 से अधिक निहत्थे महिलाओं, बच्चों और वृद्धों पर अत्याचार कर मौत के घाट उतार दिया गया जिसमें अमेरिकी सैनिकों ने पहले महिलाओं और लड़कियों को अलग कर उनका यौन शोषण किया फिर सब को मार दिया इतना ही नहीं अमेरिकी सैनिक भी कंफर्ट वूमन की तरह वियतनामी औरतों को अपने साथ रखते और जो कम उम्र की लड़कियां होती उन्हें हार्मोन इंजेक्शन देकर बड़ा किया जाता, इस का एक विकराल रूप युद्ध खत्म होने पर दुनिया के सामने आया, अमेरिकी सेना के जाने के कुछ ही महीनों के भीतर वियतनाम में 50,000 से ज्यादा बच्चों ने जन्म लिया यह बच्चे वियतनामी अमेरिकी मूल के थे जिन्हें ‘बुई दोंय’ (Bui doi) कहा गया जिसका अर्थ होता है— ‘जीवन की गंदगी’ इन बच्चों को देखकर मां की ममता उमड़ती तो थी, लेकिन उन बलात्कारियों को याद करके उन बच्चों से उन्हें नफरत हो जाती, सैकड़ों बच्चों को तो सड़क पर फेंक दिया गया क्योंकि उनकी माताओं के साथ जो अत्याचार हुए थे वह बच्चे उसी शोषण और यातना की एवज में मिले उपहार स्वरूप थे, जो उनके जुल्म के दास्तान का एक चेहरा थे। ऐसे ही द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान रूस की रेड आर्मी ने 2000000 से भी ज्यादा जर्मन महिलाओं का बलात्कार किया था। उन औरतों और बच्चियों को जबरन उनके घरों से खींच खींच कर बाहर निकालते थे और दसियों सैनिक एक साथ एक स्त्री या लड़की पर टूट पड़ते, रेड आर्मी का एक ही मकसद था जर्मन पुरुषों के गर्व को तोड़ना उनका मानना था कि स्त्रियों पर शोषण अत्याचार और बलात्कार करके वह उनके पुरुषों का अभिमान तोड़ सकते हैं” इस तरीके की घटनाओं से भरी इतिहास को देखकर एक युवा कवि ने अपनी कविता में इस पीड़ा को दर्शाया है -

**“नोच रहे थे जिस्म मेरा, बेरहमी से हमें दबोच रहे थे
फाड़ रहे थे कपड़े मेरे, नाखूनों से हमें कुरेद रहे थे
मैं भाग रही थी वह खींच रहे थे
जमीन पर मुझे वह घसीट रहे थे
वस्त्रहीन मैं बेहोश पड़ी थी
वह नोच रहे थे बस नोच रहे थे।”⁸**

- अमित कुमार सागर

इस तरह रोंगटे खड़े कर देने वाली घटनाएं हमेशा से ही होती आ रही हैं कि इनका मानना था कि किसी भी देश की संस्कृति को नष्ट करना हो तो, सबसे पहले महिलाओं को टारगेट किया जाता है उनका रेप करके उनसे बच्चे पैदा करके उनकी नस्ल को खत्म करके अपनी नस्ल को बढ़ाना, इसीलिए वह महिलाओं को ज्यादा टारगेट करते थे यह तो हमेशा से ही होता आ रहा है युद्ध हो या विस्थापन इसमें सबसे ज्यादा कीमत महिलाएं ही चुकाती आई हैं इन सब में महिलाओं और बच्चों के दर्द की दास्तान सबसे ऊपर रहती है हाल ही में हुए अफगानिस्तान पर तालिबान का कब्जा अफगानिस्तानी महिलाओं को परंपरा और धर्म की बेड़ियों में जकड़ दिया, जो महिलाएं खुलेआम सड़कों पर आजादी के साथ घूमती थी पढ़ाई और नौकरी करती थी उनके लिए अब जीना भी मुश्किल हो गया है तालिबान उन पर तरह-तरह के नियम लागू कर रहा है जैसे— बुर्का पहनना अनिवार्य कर दिया, लड़कियों का स्कूल जाना बंद हो गया, ऊंची आवाज में बात करना उनके लिए मनाही है, कोई भी स्त्री अकेले बिना किसी पुरुष के यात्रा नहीं कर सकती पुरुष चाहे छोटा बच्चा ही क्यों न हो उनसे उनकी पूरी आजादी छीन ली गई, जो अधिकार अफगानिस्तान की औरतों ने लड़कर जीते थे उन पर बंदिशे लगाकर तालिबान उन्हें खत्म करने की कोशिश में लगा हुआ है। आजाद देश में आजाद और स्वतंत्र महिलाओं को अचानक पाबंदियों की बेड़ियों में बांधना कितना कष्टदायक हो सकता है”?...।

इस तरह से देखा जाए तो इतिहास के पन्ने युद्ध विस्थापन के दौरान स्त्रियों के दर्द की दास्तान से लबरेज हैं, उनकी खून से रंगे हैं साथ ही उस पन्नों में स्त्री की वो चीखें भी समाई हुई हैं जो उस समय की परिस्थितियों ने उन्हें दी। युद्ध शुरू तो पुरुष करते हैं खत्म स्त्रियों की देह पर ही होता है युद्ध उनसे उनका घर परिवार देश सब कुछ छीन लेता है, और उन्हें एक ऐसी ज़िंदगी जीने पर मजबूर कर देता है जो की मौत से भी बदतर होती है, औरतों को हमेशा से ही रोंदा, कुचला गया है जानवरों से भी बदतर दुर्व्यवहार किया जाता है कितनी अजीब बात है सदियों से मानवता को पोषित करने वाली स्त्री हमेशा अपमानित होती रही है आज यूक्रेन और रूस के युद्ध के बीच ऐसी घटनाएं सामने आ रही हैं जो इतिहास के खूनी पन्नों के तहों को खोल रही हैं, लाखों लोग बेघर होकर शरणार्थी बनने पर मजबूर हैं इनका पूरा फायदा देह व्यापारी और दास प्रथा के व्यापारी उठाने की कोशिश कर रहे हैं। आज यूक्रेनियाई औरतों पर हर तरफ से खतरा मंडरा रहा है जिस्मफरोशी के दलाल उनका फायदा उठाने की ताक में हैं। युद्ध के दौरान यौन हिंसा के साथ में वेश्यावृत्ति में दोगुना इजाफा हो जाता है, स्त्रियों का फायदा उठाकर उन्हें वेश्यावृत्ति के दलदल में धकेल दिया जाता है, एक दिन युद्ध खत्म हो जाएंगे दो

देशों के टकराव भी खत्म हो जाएंगे जो सड़कें, इमारतें, भवन युद्ध की बलि चढ़ते हैं सब ठीक हो जाएंगे लेकिन उन स्त्रियों का क्या? जिन्हें वेश्यावृत्ति रूपी दलदल में जबरदस्ती लाया जाता है उनकी ज़िंदगी वापस कभी पहले जैसी नहीं हो सकती। युद्ध विश्व शांति का सबसे बड़ा शत्रु है और स्त्रियों के लिए चौतरफा मारने वाला हथियार भी है, मानवता और इंसानियत की वृद्धि करने का सौभाग्य अगर स्त्रियों को प्राप्त है तो वह उसके तबाही का कारण भी वही है, स्त्री मानवता को पालती है और पुरुष उसका मर्दन करता है। आज भी कुछ नहीं बदला क्या कभी ऐसा भी दिन आएगा जिससे पूरा विश्व इतना आगे गया ज्ञान विज्ञान में इतना इजाफा हुआ वैसे स्त्रियों को लेकर लोगों की सोच में भी बदलाव आएगा मानव संस्कृति को बढ़ाने का जो वरदान उन्हें मिला है क्या उसकी कीमत पुरुष कभी समझ पाएंगे..?

आज सारे मानवता पर प्रश्नचिह्न लग रहा है विश्व शांति के लिए जो भी संगठन बने हैं उन सब पर सवाल उठ रहे हैं, आज का मनुष्य कितना भी आधुनिक क्यों न हो, विश्व शांति के लिए अनेक उपाय भले ही हुए हो, वह सब आज धराशाई होते नजर आ रहे हैं क्योंकि यह युद्ध गवाह है। आज यूक्रेन और रूस के युद्ध को देखते हुए ऐसा प्रतीत हो रहा है कि युद्ध शुरू करना आसान तो होता है लेकिन उसे नियंत्रित करना बहुत मुश्किल हो जाता है जिसकी भरपाई वहां की भोली-भाली जनता को करनी पड़ती है इस युद्ध के दौरान ही एक रूसी सैनिक का अपनी बेटी के लिए लिखी गई कविता सोशल मीडिया पर खूब वायरल हो रही है वह सैनिक चाहता है कि यह सब समाप्त हो जाए और उसकी ज़िंदगी वापस पहले जैसी हो जाए वह युद्ध के बारे में बात ही नहीं करना चाहता वह अपनी बेटी को लिखता है -

“मुझे युद्ध के बारे में मत लिखो बस

भाग-2 क्या पास में कोई बागीचा है

क्या चिड़ी के पेड़ों में पहले से ही फूल होते हैं

अगर कोई आपके पसंद का गुलदस्ता लाता है

उन्हीं भयानक मिसाइल हमले के बारे में न बताएं

इसके बजाय हमारे जीवन के बारे में और बात करें

कृपया उन सभी लोगों को आमंत्रित करें जिन्हें अपने पाया है

यूक्रेन की यात्रा के लिए जब यह युद्ध समाप्त हो गया हो

हम उन्हें जानने के लिए अपना आभार प्रकट करेंगे

हमारे बच्चे सुरक्षित और स्वस्थ थे - रूसी सैनिक”¹²

कितनी मार्मिकता है इस कविता में जो एक पिता ने अपनी बेटी के लिए लिखा आम इंसान शांति का जीवन जीना चाहता है वह अपने परिवार के साथ समय व्यतीत करना चाहता है युद्ध और तबाही

कोई नहीं चाहता चाहे वह कोई सैनिक ही क्यों न हो, आज यूक्रेन में चारों तरफ तबाही है विश्व शांति के मूल्य धरे के धरे रह गए, शशि शेखर ने अपने एक लेख में लिखा है कि- “दुनिया चलाने के लिए जिस विश्व दृष्टि की जरूरत है वह मौजूद वक्त में किसी राजनेता के पास नहीं”।

और आज ऐसे राजनेताओं की जरूरत हर देश को है जितने भी विश्व शांति संगठन बने हैं उसके सदस्यों को ऐसी विश्व दृष्टि की जरूरत है जिससे ऐसी युद्ध की वजह को पनपने से रोक सके और दुनिया में ऐसी भयानक तबाही को आने से पहले ही खत्म कर मानवता की रक्षा कर सकें।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. देह ही देश, क्रोएशिया की प्रवास डायरी, गरिमा श्रीवास्तव
2. स्त्रियों की पराधीनता, जॉन स्टुअर्ट मिल

3. स्त्री उपेक्षिता, प्रभा खेतान
4. वागर्थ (पत्रिका), जुलाई 2022
5. समाचार पत्र, दैनिक भास्कर, 21.08.2021
6. समाचार पत्र, दैनिक जागरण
7. समाचार पत्र, जनसत्ता
8. बी.बी.सी. न्यूज, यू ट्यूब
9. DW न्यूज, 18.03.2022
10. लल्लनटॉप, सोशल न्यूज, 06.01.2022

- रूबी

(शोधार्थी)

हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय





अक्षर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स

एल 9ए, गली नंबर 42, सादतपुर एक्सटेंशन, दिल्ली-110090

Email : aksharpub211@gmail.com | Mobile : 9711255121